परम श्रद्धेय श्रीमान् माननीय

बाबू भैरूँदानजी
हाकिम कोठारी

का

संक्षिप्त जीवन-परिचय

किसी विद्वान्ने ठीकही कहा है, कि —

परिवर्तिनि संसारे, मृतः कोवा न जायते ?
स जातो येन जातेन, याति जातिः समुन्नतिम् ॥

इस संसारमे, जिसके रंग नित्य पलटते रहते हैं, जिसमें मनुष्यका जीवन पानीके बुल बुलेकेही समान है। पैदा होना और मर जाना नित्यका खेलसा है। उसमें उसीका जन्म ग्रहण करना ठीक है, जिसके द्वारा अपनी जातिकी कुछ भलाई हो, अपने वंशका गौरव हो, अपने कुलका नाम ऊँचा हो, नहीं तो इस संसारमें रोजही हजारों लाखों पैदा होते और मरते रहते हैं। उनकी ओर कौन ध्यान देता है। और इन जातीके उपकार करने वालोंका नाम मर जानेपर भी इस संसारके परदेपर सदा विराजमान रहता है। उनके यश रूपी शरीर को नतो बुढापा आता है, न मृत्यु प्राप्त करती है।' वे अपनी कीर्त्ति के द्वारा अमर हो जाते हैं। ऐसे अमर कीर्ति सत्पुरुषोंका नाम सभी लोग बडी श्रद्धाके साथ लिया करते हैं।

ऐसेही विरले सज्जनोंमें कलकत्तेके सुप्रसिद्ध, व्यापारी ओसवाल कुल-भूषण श्रीमान् बाबू भैरोंदानजी कोठारी भी हैं। यद्यपि आप बीकानेरके रहने वाले हैं, तथापि—आपका जन्म संवत् १९३८ वैशाख कृष्णा २ शनिवार को गुजरातके समीप दाहोद नामक स्थानमें हुआ था। आपके पिता वहीं पर कपड़े आदिका कार-बार करते थे, उनका शुभ नाम श्रीमान् रावतमलजी था।

आपकी अवस्था जिस समय केवल छ वर्षकी थी, उसी समय आपकी माताजीका परलोकवास हो गया था। इसलिये आपके पालन-पोषणका सारा भार आपके पिताश्री पर ही आ पड़ा। आपके एक सुशीला बहिन भी हैं, जिनका शुभ नाम जुहार कूँवर है।

दाहोदमें ही आपकी शिक्षा हुई। उसके बाद आप व्यापारकी ओर झुके। संवत १९५५ की सालमें आप कलकत्ता पधारे। यहाँपर आपने पहले-पहल १० रूपये की नौकरी पर काम करना आरंभ किया। इसके बाद आपने विलायती कपड़ेका व्यापार करना शुरू किया ; पर इस काममें आप पूरी तरह सफल न हुए। फिर इसके बाद आपने सन् १९६४ की सालसे स्वदेशी कपड़ेकी दलालीका काम करना आरंभ किया। इस कार्यमें आपने उत्तरोत्तर उन्नति की और एक बड़े नामी-गरामी व्यापारीमें आपकी गणना हो गई।

इस बीचमें संवत् १९५६ के वर्षमें आपका शुभ विवाह हुआ आपकी धर्मपत्नी बड़ीही सुशीला, सुशिक्षिता, धर्मपरायणा, पतिव्रता और शान्तस्वभावा हैं। धार्मिक शिक्षाका ज्ञान भी यथेष्ट प्राप्त किया है और अपना प्रायः अधिक समय ज्ञान-ध्यान एवं धार्मिक क्रियामें ही व्यतीत करती हैं। उनके धर्म-कार्यमें आप सदैव साथ दिया करते हैं। अभी कुछ वर्षोंके पहलेकी बात है, आपकी धर्मपत्नीने नवपद ओलीका बड़ा तप किया था। उसकी समाप्तीके उपलक्षमें आपने एक बड़ा भारी उद्यापन (उजमणा) किया, जिसमें अतुल धन-व्यय कर आप अपूर्व पुण्यके भागी बने।

यद्यपि जैन समाजमें अनेक सज्जन उद्यापन करते रहते हैं। उसके लिये यथेष्ट धनभी खर्च करते हैं; पर उस में उपयोग न रखनेके कारण बहुधा त्रुटी रही जाती है। उद्यापन करनेका क्या उद्देश है? किस तरह विधि-पूर्वक करना चाहिये? इससे क्या लाभ होता है? इत्यादि बातोंको पहले श्रद्धा पूर्वक अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। जो सज्जन इन बातोंको न समझकर उद्यापन करते हैं, वे खूब खर्च करके भी उसका पूरी तरह लाभ नहीं ले सकते। अतएव उद्यापन करने वाले सज्जनोंको उपर्युक्त बातों की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

श्रीमान्ने उपर्युक्त बातोंके लिए पहलेसेही विद्वानोंसे परामर्श कर लिया था, अतएव उद्यापनके वास्तविक रहस्यको आप अच्छी तरह समझ गये थे। आपने उद्यापनके विधि-विधानका काम—श्रीमद् परम पूजनीय जंगम युगप्रधान व्याख्यान-वाचस्पती, भट्टारक श्री१००८ श्रीजिनचारित्र सूरीश्वरजीके आधिपत्यमें रखा था। इसलिये विधि-विधानके काममें किसी तरहकी त्रुटी रह जानेकी आशंका नहीं थीं। आप आचार्य महाराजके पूर्ण भक्त हैं, आचार्य महाराजकी आज्ञा शिरोधार्य रखते हैं। अतएव आचार्य माहाराज जिस तरह विधिके लिये विधान करवाते गये उसी तरह आप उत्साह पूर्वक करते गये।

उद्यापनका काम शास्त्रानुसार विधि-विधानके साथ करना और इस कार्यमें किसी तरहकी त्रुटी न रह जाये, इसलिये आपने एक सालके पहलेसे ही उद्योग करना आरंभ कर दिया था। उद्यापनके काममें लाये जाने वाली चीजे आप धीरे-धीरे बनवाते गये। आपने अपने शौक़से एक चाँदी सोनेका सिंहासन बनवाया उसके लिये धन खर्च करनेमें जराभी कमी न रखी। अन्दाजन उसके लिये आपने सात आठ हजार रुपया खर्च कर दिया। सिंहासन भी एक अतीव रमणीय आदर्श चीज बनी। इसके सिवा और भी अनेक चीजें बनवाई।

उद्यापनका मण्डप बीकानेरके बड़े उपाश्रयमें सजाया गया था। मण्डपकी सजावट अत्यन्त रमणीय एवं दर्शनीय थी। जो सज्जन सजावटकी ओर निहारता वही आश्चर्य-चकित हो जाता था। उसकी मनोभावना अत्यन्त निर्मल बन जाती थी, उसके विचार में विकास हो जाता था। जो सज्जन एक बार दर्शन कर लेता, वह प्रति-दिन आये बिना नहीं रहता था। इस तरहकी मण्डप-रचना बीकानेरमें शायद ही किसी समय हुई होगी। हम ऊपर लिख आये हैं कि, श्रीमान्‌ने अपने न्यायोपार्जित धनको ख़र्चकर नाना प्रकारकी सोने-चाँदीकी उत्तमोत्तम चीज़ें बनवायीं, वे सब चीज़ें इस परम रमणीय शोभायमान मण्डपमें स्थापित की गईं।

अट्ठाई महोत्सव आरंभ होनेके पहले आपने कलकत्ता एवं अनेक शहरोंके सज्जनोंको आमन्त्रण भेजा था। अतएव सब जगहके बड़े-बड़े धनी लोग इस सुअवसर पर पधारने लगे। उनके आतिथ्य-सत्कारके लिये आपने बड़ाही सुप्रबन्ध किया था। जितने सज्जन आये हुए थे उन सबकी सुश्रुषाकेलिये आप हरसमय उपस्थित रहा करते थे। "सेवा करना परम धर्म है" इस मन्त्रको आपने बालावस्थासेही सीख लिया था। आपने इस बातका भी ज्ञान कर लिया था कि, फिर ऐसा सु-अवसर स्वामी भाइयोंकी सेवा का कब मिलेगा? इसलिये आप अत्यन्त हर्षान्वित होकर तन मन और धनसे स्वामी भाइयोंकी सेवा करते थे। आपके इस असाधारण आतिथ्य-सत्कार को देखकर आये हुए सर्व सज्जनोंको अपार आनन्द होता था।

प्रिय पाठको! आतिथ्य-सत्कार महज़ मामूली काम नहीं। इस कामके करनेवाले विरलेही सज्जन होते हैं। लाखों करोड़ों रुपैया पासमें होने पर भी इस कामको करनेमें असमर्थ रहते हैं शास्त्रकारोंनें भी सर्व गुणोंमें इसी गुणको प्रधान बतलाया है। कहा भी है, कि "सर्वस्याभ्यागतो गुरुः" अर्थात् अतिथी-महिमान सब किसीको पूजनीय होता है। अतएव सौ काम छोड़कर भी अतिथीका

आदर—सत्कार करना चाहिये। जो मनुष्य सेवा-गुण जानकर उसका पूर्णरूपसे पालन करता है, वही मनुष्य इस संसारमें मनुष्य रूपेण समझा जाता है, जिसने सेवा धर्म नहीं सीखा है वह मनुष्य नहीं किन्तु पशू है। हम पहले ही कह आये हैं, कि श्रीमान्‌ने बाल्यावस्थासे ही इस मन्त्रकी शिक्षा प्राप्त करली थी। अतएव आप सुचारूरूपसे सेवा-भावका आशय जानते थे। इस गुणके वास्तविक तत्वको जानने वाले अपनी जैन समाजमें आप जैसे पुरुष विरले ही हैं।

अट्ठाई-महोत्सव श्रीचिंतामणजीके मन्दिरमें वडे समारोहके साथ आरंभ किया गया। क्रमशः आठोंदिन विविध प्रकार की पूजायें पढ़ाई गई। इस अवसरपर ओसियासे आई हुई जैन संगीत मण्डलीने वडोही अच्छी प्रभु-भक्ति की। यह मण्डली प्रतिदिन पुजा एव जागरणके समय उपस्थित रहा करती थी,और वडे उत्साह पूर्वक नृत्य-गान स्तूति करती रहती थी, श्रीमानने जिस तरह अत्यन्त प्रेमसे इस मण्डलीको आमंत्रित किया था। उसी तरह मण्डलीने भी पूरे प्रेमसे प्रभुभक्ति करके समाजके दर्शकोंको अत्यन्त प्रसन्न किया। इस तरह आनन्द मङ्गल पूर्वक आठों दिन बडी शान्तिसे व्यतीत हुये॥

इसके बाद जल यात्रा एव स्वामी-वत्सल करनेके लिये वडी भारी तैयारी की गई। चिंतामणिजीके मन्दिरसे सवारी निकलना आरम्भ हुई। सवारीकी सजावट अत्यन्त शोभायमान थी, मार्गके चारों ओर सवारीका ही दृश्य दिखता था। सवारीकी सजावट और मण्डलियों के नृत्य-गान स्तुति आदिसे सारे शहरमें अपूर्व आनन्द—मङ्गल छाया हुआ था। मार्गके चारों ओर बडे-बडे विशाल भवन—मकनोंके नीचे-ऊपर नर-नारियोंका अपूर्व झुंड जमा हुआ था। सब कोई सवारीकी ओर चातककी तरह टक-टकी लगाये हुए देख रहे थे। इस समय सब किसीके मुखसे यही शब्द सुनाई देता था। "आजतक अपने बीका-नेरमें इस तरहकी सजावटसे सुशोभित सवारी कभी नहीं निकली थी।" सब कोई सवारी की ओर बार-बार देखकर अत्यन्त प्रसन्न

होते थे। जिस सवारीके सजावटमें हजारों रुपैया खर्च किया गया हो वह सवारी भला कैसे दर्शनीय न होगी ?

इसके अतिरिक्त इस सुअवसर पर तीनों समुदायके सज्जनोंने सम्मिलित हो कर वड़ेही आनन्द मंगल पूर्वक जल यात्रा एवं स्वामीवत्सल का उत्सव मनाया।

आपने संसारमें अच्छा धन, मान और वैभव प्राप्त किया। वचपनसे ही आपके हृदयमें धार्मिक भावना, लोकोपकारी प्रवृत्ति और जाति हितकी लालसा वनी रहती थी। अवस्थाके साथ-ही-साथ आपके ये गुणभी वढ़ते गये। धार्मिकता, सच्चरित्रता, उदारता, और जाती हितैषिता ही आपके जीवनके प्रधान गुण हैं। इन्हीं गुणोंने आपके जीवनको अनुकरणीय वना दिया है।

आपके इन अलौकिक गुणोंकी ओर आकर्शित होकर व्यापारी समाज एवं जातीय सज्जन आपका वड़ाही आदर-सम्मान करते हैं। आप न्यायमार्गके पूर्ण पक्षपाती हैं। आपकी व्यवहार दक्षता एवं न्याय प्रियता अतीव प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। आप स्पष्टवक्ता एवं मिष्टभाषी हैं। अतएव जनतामें आपका वड़ाभारी प्रभाव पड़ता है।

आपका धर्म-प्रेम, जाती-प्रेम, समाज-प्रेम, और देश प्रेम परम प्रशंसनीय है। आपका सारा वैभव आपके अपने वाहुवलका उपार्जन किया हुआ है, इसलिये आप स्वनाम धन्य पुरुष हैं। आपके अध्यवसाय, साहस, धैर्य आदि गुण सवके अदर्श होने योग्य हैं। आपकी दान शीलताकी जहाँतक प्रशंसा की जाये कम है, आप योंतो सदैव गुप्तदान करते रहते हैं, और अनेक अनाथों, निराधार और निःसहायोंको सहायता पहुँचाते ही रहते हैं। तथापि आपके दान और औदार्यके वहुतसे ऐसे उज्वल उदाहरण भी हैं, जो आपकी कीर्तिको चिरस्थाई वनाये रहेंगे।

आपने निम्न लिखित संस्थाओंको आर्थिक सहायता प्रदान की है, और नियमित मासिक सहायता भी दिया करते हैं। बीकानेर जैन

पाठशालाको ५१०० रुपैया, कलकत्ता जैन श्वेताम्बर मित्र-मण्डल विद्यालयको ३१०० रुपैया। पूना भण्डारकर पुस्तकालयको १००० रुपैया और ओसियां जैन बोर्डिङ्ग विद्यालयको भी आप यथासमय सहायता दिया करते हैं। इस तरह आप अपने परिश्रमोपार्जित धनका सदा सदुपयोग भी खूब किया करते हैं।

आपने अभी कलकत्तामें दादाजीके मन्दिरमें मार्वल पत्थरकी रमणीय फरश भी बनवाई है जिसमें अन्दाजन डेढ़ हजार रुपैया लगाया है। इसके सिवा ज्ञान-प्रचार के काममें भी आप यथा समय धन व्यय कर पुस्तकें छपवाकर विस्तिर्ण किया करते हैं।

प्रायः देखा जाता है, कि लोग धन और वैभव पा कर अभिमानमें मत्त हो जाते हैं, अपने सामने दुसरेको तुच्छ समझते हैं, परन्तु आपमें अभिमान तो नाम मात्रको भी नहीं है। आप बड़े ही विनयी हैं, और धर्मका भाव आपके हृदयमें सोलह आने भरा रहता है। आजतक आपने अनेक धार्मिक कार्योंमें बडे उत्साहसे दान दिया है, और शिक्षा-प्रचारके लियेभी मुक्त हस्तसे दान करते रहते हैं। आपकी इस दान शीलतासे बहुतसे दीन दुःखियोंका उपकार हुआ है। और कितनोंको नीचेसे ऊपर चढाया है, शासन देव आपको दीर्घ जीवी करें और आपके चित्तमें सदैव धर्मकी प्रभावना उत्तरोत्तर बढती रहे, यही हमारी आन्तरीक अभिलाषा है।

श्रीमान्‌का सम्पूर्ण जीवन चरित्र बडा ही शिक्षाप्रद एवं आदर्श है। हमारी इच्छा थी कि इस पुस्तक में आपका सारा जीवन-चरित्र प्रकाशित कर दिया जाय, पर हमें आपके सम्पूर्ण जीवन-चरित्र की यथेष्ट सामग्री न मिली। इसके लिये श्रीमान् से हमने अनेक बार निवेदन किया; पर श्रीमानने जीवन चरित्र देना ही नापसन्द कर दिया अतएव हम निराश हो गये, किन्तु आरंभ से ही हमने निश्चय कर लिया था कि इस पुस्तक में आपका हो जीवन-चरित्र एवं चित्र देना चाहिये। अतएव हमने पुनः साहस कर श्रीमान् से साग्रह निवेदन

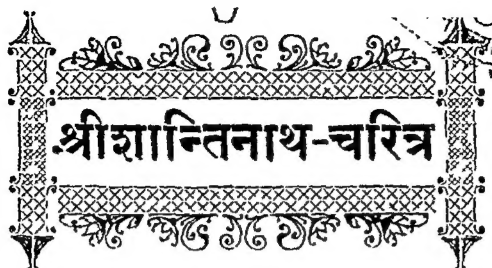
किया, इसपर आपने केवल चित्र देना ही स्वीकार किया और जीवन चरित्रके विषय में सर्वथा निषेध कर दिया।

चित्रके साथ-साथ आपके आदर्श जीवन-परिचयको भी दे देना अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ। अतएव हमने आपके जीवन घटनाओंका विवरण जाननेके लिये अपने दो चार मित्रोंसे कहा सुनी करी। एक दो मित्रोंने आपकी जीवनीका परिचय भी दिया, पर उससे हमें पूर्ण सन्तोष लाभ न हुआ। इसके बाद हमने अपने परम प्रिय मित्र बाबू अमरचंदजी दफ-तरीसे इसके लिये निवेदन कीया। उन्होंने कतिपय उल्लेखनीय बातें मालूम कीं। इस तरह हमने इधर उधरसे आपके जीवन घटनाओंका विवरण जानकर इस जीवन परिचयको लिखा है, इस लिये संभव है, कि इसके लिखने में त्रुटी रह गई हो। अतएव हमारी क्षमा याचना है।

शेषमें हम अपने प्रिय मित्र साहित्य प्रेमी बाबू अमरचंदजी दफ़-तरीको सहर्ष धन्यवाद देते हैं। जिन्होंने आपके जीवन-परिचयके सम्बन्धमें कुछ बातें मालूम कर हमें पूर्ण अनुग्रहीत कीया है।

२०१ हरिसन रोड,
कलकत्ता। }

आपका
काशीनाथ जैन



श्रीशान्तिनाथाय नमः

प्रथम प्रस्ताव

प्रणिपत्यार्हतः सर्वान्, वाग्देवीं सद्गुरूनपि।
गद्यबन्धेन वक्ष्यामि, श्रीशान्तिचरितं मुदा ॥१॥

"समस्त अरिहन्तों, सरस्वती देवी तथा सद्गुरुओं को प्रणाम कर, मैं बड़े हर्ष के साथ इस श्री शान्तिनाथ-चरित्र की पद्यात्मक रचना करता हूँ।

सारे संसार के जीव, अनन्तकाल से बारम्बार भव भ्रमण करते चले आते हैं; परन्तु जो प्राणी जिस समय क्षायिक समकित* प्राप्त करता है, उसको उसी समय भव की संख्या प्राप्त होती है। जैसे, श्री ऋषभदेव स्वामी ने धनसार्थ-वाह के भवमें श्रेष्ठ तप करने के कारण निर्मल शरीर वाले, पवित्र चारित्र पालन करने वाले, उत्तम पात्र रूपी मुनियों को बहुतसा घी दान किया था। उसी दान-पुण्य के प्रभाव से उस भव में तीर्थंकर नाम-कर्म उपार्जन कीया। (यह भव पश्चादनुपूर्वी गणना करने से तेरहवाँ ठहरता है।) इसी प्रकार अन्यान्य

---

* क्षयोपशम अथवा उपशम समकित प्राप्त होनेके बाद से भवकी गिनती होती है। इस जगह क्षायिक कहा हुआ है, सो विचारने योग्य है।

जिनेश्वरों को भी समकित प्राप्तिके समय से ही भवकी संख्या मानी जाती है। इस प्रकार श्री शान्तिनाथ जिनेश्वर के बारह भव हुए हैं। उनमें से पहले भव की कथा इस प्रकार है;—

इस जम्बूद्वीप के भरत-क्षेत्र में अनन्त रत्नों की खान के सदृश श्रीरत्नपुर नामका एक नगर था। उसमें श्रीषेण नामके एक राजा रहते थे। वे न्याय धर्म में निपुण, परोपकार करने में तत्पर, प्रजा का पालन करने में चतुर, शत्रु-रूपी वृक्षों को उखाड फेंकनेमें हस्ती के समान और औदार्य, धैर्य, गाम्भीर्य आदि गुणोंके आधार थे। उनके बाँये अंग की अधिकारिणी और शील रूपी अलंकार से भूषित दो स्त्रियाँ थीं। पहली का नाम अभिनन्दिता और दूसरी का नाम सिंहनन्दिता था। एक समय की बात है, कि पहली रानी ऋतु-स्नान कर, रात के समय अपनी सुख शय्या पर सो रही थी; इसी समय उसने सपना देखा कि, किरणों से शोभित सूर्य और चन्द्रमा, अन्धकार को दूर करते हुए, उसकी गोद में बैठे हुए हैं। यह देखते ही रानी की नींद टूट गयी उसने अपने मनमें बडा हर्ष माना। इसके बाद वह आप ही आप विचार करने लगी,—"शास्त्रकारों ने कहा है, कि शुभ स्वप्न देखकर किसी से कहना नहीं चाहिये और फिर सोना भी नहीं चाहिये।" इत्यादि। इस प्रकार सोच-विचार कर वह रात भर जगी ही रही। सवेरा होते ही उसने अपने इस स्वप्नकी बात अपने स्वामी से कही। यह सुन, राजा ने अपनी बुद्धि और शास्त्र की दृष्टिसे विचार कर इस स्वप्न का फल अपनी प्यारी पत्नी को इस प्रकार प्रसन्नता भरे वचनों में कह सुनाया। "हे देवी! इस स्वप्न के प्रभाव से तुम्हारे दो पुत्र होंगे जो पृथ्वी भरमें प्रसिद्ध और कुल का नाम ऊँचा करने वाले होंगे।" यह सुन रानी बड़ी हर्षित हुई। इसके बाद ही वह गर्भवती हुई और उसके मुखड़े पर शोभा बरसने लगी। गर्भका समय पूरा होने पर सुन्दर लग्न—नक्षत्र में उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। पिता ने दस दिनों तक बडी धूमधाम से महोत्सव मनाया। इसके बाद उन्होंने एक का नाम इन्दुषेण और दूसरे का बिन्दुषेण रक्खा। भलीभाँति लालित-पालित होते हुए वे दोनों राजकुमार बड़े होने लगे। क्रमशः वे आठ वर्ष के हुए। अब राजाने उन्हें कलाचार्य के पास शिक्षा निमित्त भेज दिया। वहाँ उन्होंने सब कलाओं की शिक्षा पायी। धीरे-धीरे वे युवा हो चले।

उन दिनों भरत-क्षेत्रके मगध नामक प्रदेशमें अचल नामका एक ग्राम था, जिसमें वेद और वेदांगोंमें निपुण 'धरणिजट' नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम यशोभद्रा था, जिसके गर्भमें उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए

थे। एकका नाम नन्दीभूति और दूसरेका नाम शिवभूति था। वे जब पाँच वर्ष के थे, तभीसे उनके पिताने बडे यत्न से उन्हें वेदशास्त्रोंकी शिक्षा देनी आरम्भ की। उस ब्राह्मणके कपिला नामकी एक दासी थी। उसके पुत्रका नाम कपिल था। वह लडका भी उसी ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न हुआ था, परन्तु जातिहीन होनेके कारण कहीं वह बडा बुद्धिमान न हो जाये, इसी लिये वह ब्राह्मण उसे पढाता लिखाता नहीं था। परन्तु कपिल केवल सुनते ही सुनते चौदहों विद्याओंमें निपुण हो गया। जातिहीन होनेके कारण जब उस गाँवमें उस बेचारेका मान नहीं हुआ, तब वह घर छोडकर बाहर चला गया और जनेऊ पहन अपनेको महा ब्रह्मण बतलाता हुआ वह ब्राह्मणों की सी क्रियायें करने में कुशल और वेद-वेदांगमें निपुण कपिल पृथ्वी-पर्यटन करता हुआ श्रीरत्नपुर नगरमें आ पहूँचा। उस नगर में सत्यकि नामक एक बडे भारी पण्डित रहते थे, जो अपनी पाठशालामें बहुतसे छात्रोंको वेदशास्त्रकी शिक्षा देते थे। कपिल वहीं आ पहूँचा। पण्डितको विद्यार्थीयोंको पढाते हुए देखकर उसने सोचा, कि बस अपनी योग्यता प्रगट करनेका यही सबसे अच्छा अवसर है। यही सोचकर उसने एक विद्यार्थीसे वेदके किसी पदका अर्थ पूछा। यह देख सत्यकिने अपने मनमें विचार किया—यह तो कोई बडा भारी पण्डित मालूम पडता है, क्योंकि इसने जो बात पूछी है, वह तो मुझे भी नहीं मालूम फिर मेरा विद्यार्थी कैसे बतला सकेगा? ऐसा विचार कर उसमें उत्कृष्ट विद्या-गुण देख तथा स्नान, दान, तथा गायत्री जाप आदि ब्राह्मणोंके कर्ममें उसे निपुण पाकर, पण्डितने उसे अपनी जगह पर बहाल कर लिया। भला गुण किसका मन मोह नहीं लेता? वह सबको बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, उससे सबका मनोरञ्जन हो जाता है।

उस सात्यकि पण्डितकी स्त्रीका नाम जम्बूका था। उनके एक लडकी भी थी, जिसका नाम सत्यभामा था। वह बडी ही रूपवती और गुण-वती थी। अभीतक उसका विवाह नहीं हुआ था। इसी लिये उपाध्यायने अपने मनमें विचार किया, कि मेरी पुत्रीके योग्य यह वर है। ऐसा विचार कर उपाध्यायने उसीके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। उसके साथ क्रिडा करता और विषय-सुख भोग करता हुआ कपिल बडे आनन्दसे रहने लगा। उपाध्यायजी उसका सम्मान करते थे, इस लिये वहाँके सभी लोग कपिलका सत्कार करने लगे। विद्वानोंकी सभामें भी उसने बडा मान-आदर पाया और राजसभामें भी उसकी प्रसिद्धी हो गयी।

दुष्कालका नाश करने वाली उषा-ऋतुका समय था। उन्हीं दिनों कपिल

जिनेश्वरों को भी समकित प्राप्तिके समय से ही भवकी संख्या मानी जाती है। इस प्रकार श्री शान्तिनाथ जिनेश्वर के बारह भव हुए हैं। उनमें से पहले भव की कथा इस प्रकार है;—

इस जम्बूद्वीप के भरत-क्षेत्र में अनन्त रत्नों की खान के सदृश श्रीरत्नपुर नामका एक नगर था। उसमें श्रीषेण नामके एक राजा रहते थे। वे न्याय धर्म में निपुण, परोपकार करने में तत्पर, प्रजा का पालन करने में चतुर, शत्रु-रूपी वृक्षों को उखाड़ फेंकनेमें हस्ती के समान और औदार्य, धैर्य, गाम्भीर्य आदि गुणोंके आधार थे। उनके बाँये अंग की अधिकारिणी और शील रूपी अलंकार से भूषित दो स्त्रियाँ थीं। पहली का नाम अभिनन्दिता और दूसरी का नाम सिंहनन्दिता था। एक समय की बात है, कि पहली रानी ऋतु-स्नान कर, रात के समय अपनी सुख शय्या पर सो रही थी; इसी समय उसने सपना देखा कि, किरणों से शोभित सूर्य और चन्द्रमा, अन्धकार को दूर करते हुए, उसकी गोद में बैठे हुए हैं। यह देखते ही रानी की नींद टूट गयी। उसने अपने मनमें बड़ा हर्ष माना। इसके बाद वह आप ही आप विचार करने लगी,—"शास्त्रकारों ने कहा है, कि शुभ स्वप्न देखकर किसी से कहना नहीं चाहिये और फिर सोना भी नहीं चाहिये।" इत्यादि। इस प्रकार सोच-विचार कर वह रात भर जगी ही रही। सवेरा होते ही उसने अपने इस स्वप्नकी बात अपने स्वामी से कही। यह सुन, राजा ने अपनी बुद्धि और शास्त्र की दृष्टिसे विचार कर इस स्वप्न का फल अपनी प्यारी पत्नी को इस प्रकार प्रसन्नता भरे वचनों में कह सुनाया। "हे देवी! इस स्वप्न के प्रभाव से तुम्हारे दो पुत्र होंगे जो पृथ्वी भरमें प्रसिद्ध और कुल का नाम ऊँचा करने वाले होंगे।" यह सुन रानी बड़ी हर्षित हुई। इसके बाद ही वह गर्भवती हुई और उसके मुखड़े पर शोभा बरसने लगी। गर्भका समय पूरा होने पर सुन्दर लग्न—नक्षत्र में उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। पिता ने दस दिनों तक बड़ी धूमधाम से महोत्सव मनाया। इसके बाद उन्होंने एक का नाम इन्दुषेण और दूसरे का बिन्दुषेण रक्खा। भलीभाँति लालित-पालित होते हुए वे दोनों राजकुमार बड़े होने लगे। क्रमशः वे आठ वर्ष के हुए। अब राजाने उन्हें कलाचार्य के पास शिक्षा निमित्त भेज दिया। वहाँ उन्होंने सब कलाओं की शिक्षा पायी। धीरे-धीरे वे युवा हो चले।

उन दिनों भरत-क्षेत्रके मगध नामक प्रदेशमें अचल नामका एक ग्राम था, जिसमें वेद और वेदांगोंमें निपुण 'धरणिजट' नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम यशोभद्रा था, जिसके गर्भमे उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए

थे। एकका नाम नन्दीभूति और दूसरेका नाम शिवभूति था। वे जब पाँच वर्ष के थे, तभीसे उनके पिताने बड़े यत्न से उन्हें वेदशास्त्रोंकी शिक्षा देनी आरम्भ की। उस ब्राह्मणके कपिला नामकी एक दासी थी। उसके पुत्रका नाम कपिल था। वह लड़का भी उसी ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न हुआ था, परन्तु जातिहीन होनेके कारण कहीं वह बड़ा बुद्धिमान न हो जाये, इसी लिये वह ब्राह्मण उसे पढ़ाता लिखाता नहीं था। परन्तु कपिल केवल सुनते ही सुनते चौदहो विद्याओंमें निपुण हो गया। जातिहीन होनेके कारण जब उस गाँवमें उस बेचारेका मान नहीं हुआ, तब वह घर छोड़कर बाहर चला गया और जनेऊ पहन अपनेको महा ब्राह्मण बतलाता हुआ वह ब्राह्मणों की सी क्रियायें करने में कुशल और वेद-वेदांगमें निपुण कपिल पृथ्वी-पर्यटन करता हुआ श्रीरत्नपुर नगरमें आ पहुँचा। उस नगर में सत्यकि नामक एक बड़े भारी पण्डित रहते थे, जो अपनी पाठशालामें बहुतसे छात्रोंको वेदशास्त्रकी शिक्षा देते थे। कपिल वहीं आ पहुँचा। पण्डितको विद्यार्थियोंको पढ़ाते हुए देखकर उसने सोचा, कि बस अपनी योग्यता प्रगट करनेका यही सबसे अच्छा अवसर है। यही सोचकर उसने एक विद्यार्थीसे वेदके किसी पदका अर्थ पूछा। यह देख सत्यकिने अपने मनमें विचार किया—यह तो कोई बड़ा भारी पण्डित मालूम पड़ता है, क्योंकि इसने जो बात पूछी है, वह तो मुझे भी नहीं मालूम फिर मेरा विद्यार्थी कैसे बतला सकेगा? ऐसा विचार कर उसमें उत्कृष्ट विद्या-गुण देख तथा स्नान, दान, तथा गायत्री जाप आदि ब्राह्मणोंके कर्ममें उसे निपुण पाकर, पण्डितने उसे अपनी जगह पर बहाल कर लिया। भला गुण किसका मन मोह नहीं लेता? वह सबको बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, उससे सबका मनोरञ्जन हो जाता है।

उस सात्यकि पण्डितकी स्त्रीका नाम जम्बूका था। उनके एक लड़की भी थी, जिसका नाम सत्यभामा था। वह बड़ी ही रूपवती और गुण-वती थी। अभीतक उसका विवाह नहीं हुआ था। इसी लिये उपाध्यायने अपने मनमें विचार किया, कि मेरी पुत्रीके योग्य यह वर है। ऐसा विचार कर उपाध्यायने उसीके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। उसके साथ क्रिड़ा करता और विषय-सुख भोग करता हुआ कपिल बड़े आनन्दसे रहने लगा। उपाध्यायजी उसका सम्मान करते थे, इस लिये वहाँके सभी लोग कपिलका सत्कार करने लगे। विद्वानोंकी सभामें भी उसने बड़ा मान आदर पाया और राजसभामें भी उसकी प्रसिद्धी हो गयी।

दुष्प्राप्य वा नाश करने वाली वर्षा-ऋतुका समय था। उन्हीं दिनों कपिल

एक दिन रातको देवकुलमें नाटक देखने गया। वहाँ नाटक और संगीतका आनन्द लेते हुए बडी रात बीत गयी। नाटक समाप्त होने पर सब लोग अपने-अपने घर चले गये। कपिल भी अपने घर की तरफ चला। रात्रिका समय था, तिसपर बादलोंके मारे और भी गाढी अँधियारी छायी हुई थी और पानी बरस रहा था। इसी लिये रास्तेमें कोई आता-जाता नहीं नजर आता था। कपिलने सोचा— मैं व्यर्थ ही अपने वस्त्रको क्यों भिगाऊँ! रास्तेमें तो कोई आदमी चलता-फिरता नहीं दिखाई देता? यही सोचकर उसने अपने सारे कपडे उतार कर उनकी पोटली बाँध ली और उसे काँख तले दबाये नंगा ही अपने घर पहुँचा। द्वार पर आते ही उसने अपने कपडे पहन लिये और तब घरके अन्दर घुसा। उसकी स्त्रि झट पट घरके अन्दरसे अन्य सूखे वस्त्रा लाकर बोली "प्राणेश"! अपने भींगे कपडे उतार डालो और इन सूखे वस्त्रोंको पहन लो।" यह सुन, कपिलने कहा,—"प्रिये! मन्त्रके प्रभावसे इस बरसातमें भी मेरे कपडे नहीं भीगने पाये। यदि तुम्हें सन्देह हो तो देखकर परीक्षा कर लो।" यह सुन, वह बडे आश्चर्यमें पडी और हाथ बढ़ाकर कपडोंकी परीक्षा कर, उन्हे सूखा देख, मनही मन अचम्भित हो ही रही थी, इसी समय बिजली चमक उठी। उसके उँजियाले में यह देख कर कि, उसकी देह तो पानीसे तर है, वह सूक्ष्म-बुद्धिवाली सत्यभामा मनमें विचार करने लगी,— "अब समझी। यह वर्षाके भयसे वस्त्रोंको छिपाये हुए रास्ते भर नंगा ही आया है और अब मुझसे व्यर्थ की डिंग हॉक रहा है। भला यह हरकत कहीं भलेमानसोंकी हो सकती है? यह कदापि कुलीन नहीं है। इसके साथ गृह-धर्मका पालन करना विडम्बना मात्र है। ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही कपिल पर उसका अनुराग कम हो गया। हाँ, लोक-दिखावे के लिये वह गृहस्थीके काम-धन्धोंको सदाकी तरह करती रही।

इसी समय कपिलका पिता, जो ब्राह्मण और बडा भारी पंडित था, कर्मके दोषसे, समय के फेरसे, निर्धन हो गया। उसने जब सुना, कि उसका कपिल नामक पुत्र रत्नपुरमें जाकर बड़ा वैभवशाली और लोक समाजमें माननीय हो रहा है, तब वह धनकी इच्छासे रत्नपुर आ पहुँचा और कपिलके घरपर अतिथिकी भाँति ठहरा। भोजनके समय कपिल किसी बहानेसे पितासे अलग जा बैठा। यह देख सत्यभामाके मनकी शंका और भी प्रबल हो गयी। उसने ब्राह्मणको एकान्तमें ले जाकर शपथ देते हुए पूछा,— "पिताजी! सच कहिये, यह आपका पुत्र आपकी धर्म-पत्नीसे उत्पन्न है या नहीं? इसपर उपाध्यायने उससे सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया, यह सुनकर उसे यह निश्चय हो गया, कि

यह किसी नीच जातिकी सन्तान है। इसके बाद कपिलने अपने पिताको कुछ धन देकर विदा कर दिया और वह अपने घर चला गया। इधर सत्यभामा ने कपिलकि ओरसे अपना मन फर लिया और उसके अनजानते म घरसे बाहर ही, श्रीषेण राजाके पास जा, दोनो हाथ जोड़कर बोली,—आप पृथ्वीनाथ है– पाचवे लोक-पाल है— दीन और अनाथ मनुष्योको शरण देने वाले हैं, आपही सबकी गति है, इसलिये मेरे ऊपर दया कीजिये।"

उसका वचन सुन, राजाने कहा,—"पुत्री! तुम्हारे पिता सत्यकि मेरे पूज्य है। तुम उनकी पुत्री और कपिलकी पत्नी हो इसलिये मेरी हर तरहसे माननीया हो। तुम शीघ्र बतलाओ, तुमको कौनसा दु ख है?"

वह बोली,—"हे राजन्! मेरा कपिल नामका जो स्वामी है, वह अच्छे कुलमे उत्पन्न नहीं होनेके कारण निन्दनीय है।"

राजाने पूछा,—"तुम्हे यह कैसे मालूम हुआ?"

यह सुन, उसने कपिलके पिताकी कही हुई कुल बाते राजाको कह सुनायी। अन्तमें बोली,—"महाराज! आप ऐसा करे, जिससें मै इसके घर से अलग हो जाऊँ और पृथक् रहती हुई भी निर्मल शीलका पालन कर सकूँ। मै आपकी शरणमें आई हूँ।"

उसने ऐसा कहने पर राजाने कपिल को बुलवा भेजा और आने पर उससे कहा,—"कपिल! तेरी स्त्री सत्यभामा तेरे ऊपर प्रीति नहीं रखती, इस लिये तू इस स्नेह हीन स्त्री को छोड़ दे। आज से यह अपने पितृ गृहकी भाँति मेरे ही घरमे रहे और शील-रूपी अलकार को धारण कर, कुलोचित धर्मोका पालन करती रहे, इस बातकी इसे आज्ञा दे डाल।"

राजाकी यह बात सुन, कपिलने कहा,—"स्वामी! मुझसे तो इसके बिना घडी भर भी चैन नहीं आनेका, मैं इसे छोड़कर रह नहीं सकता, फिर भला आप ही बतलाइये, मे इसे कैसे छोड़ दे सकता हूँ?"

कपिलकी बात सुन, राजाने सत्यभामासे पूछा—"भद्रे! यदि कपिल तुझे छोडनेको तयार नहीं हो, तो तू क्या करेगी?"

वह बोली,—"यदि इस नीच कुलोत्पन्न पुरुषसे मेरा पिण्ड नहीं छूटा तो मै अवश्य प्राण दे दूँगी।"

यह सुन, राजाने फिर एक बार कपिलसे कहा,—"कपिल! यदि तू इस स्त्री को न छोड़ेगा, तो तुझे अवश्य ही स्त्री हत्याका पाप लगेगा। क्या तुझे इस पाप का भय नहीं है? इसलिये यदि तुझे स्वीकार हो, तो जैसे कुछ दिनोंके लिए स्त्रियाँ मायके चली जाती है, वैसे ही इसे भी [illegible] घर मेरी [illegible] पास रहने दे।"

कपिलने यह बात स्वीकार कर ली। तब विनय तथा शीलमें उत्तम सत्य-भामा राजाकी प्रियाके पास चली आयी और सुखसे रहने लगी।

एक दिन उसी नगरके उद्यानमें **श्री विमलबोध** नामके सूरि पृथ्वी पर विहार करते हुए आ पहुँचे और एक पवित्र स्थानमें रहे। सूरिके आगमन का हाल लोगों के मुँहसे सुनकर श्रीषेण राजा अपने परिवारके साथ उनकी वन्दना करने को आये। वहाँ पहुँच कर, सूरिको प्रणाम कर, राजा एक उचित स्थान में जा बैठे। तदनन्तर सूरिने राजाको सुनाने केलिये धर्म-देशना आरम्भ की। "हे राजन्! जो मनुष्य-जन्म आदि सामग्रियों को पाकर भी प्रमादके कारण धर्म नहीं करता, उसका जन्म निरर्थक ही जानना और जिन प्राणियोंने जिन-धर्मका आराधन और सेवन कर, वैभव तथा मोक्ष-सुख पा लिया है, उनका जन्म सार्थक समझना। वे मंगल-कलशकी भाँति सदा प्रशंसाके योग्य हैं।"

यह सुन, श्रीषेणने पूछा,—स्वामिन्! **मंगल-कलश** कौन था? कृपाकर मुझे उसकी कथा सुनाइये।

सूरि महाराजने कहा,—"राजन्! खूब मन लगा कर उसकी कथा सुनो, मैं तुम्हे उसकी कथा सुनाता हूँ।

मङ्गल कलशकी कथा।



उज्जयिनी नामक विशाल नगरी में **वैरसिंह** नामक एक राजा राज्य करते थे। उनकी **सोमचन्द्रा** नामक स्त्री उन्हें प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी थी। उसी नगरी में **धनदत्त** नामका एक बड़ा भारी सेठ रहता था। वह बड़ा ही विनयी, सत्य-वादी, दयावान्, गुरु तथा देवताकी पूजामें तत्पर और परोपकारी मनुष्य था। उसके **सत्यभामा** नामकी एक स्त्री थी। वह बड़ी ही शीलवती तथा पति पर प्रेम रखनेवाली थी; पर बेचारीकी गोद सूनी थी। एक दिन पुत्रकी चिन्तासे उदास बने हुए सेठको देखकर उसकी स्त्री ने पूछा,—"नाथ! आप आज इतने दुःखी क्यों दिखाई देते हैं?" सेठने सच बात बतला दी, वह सुन कर स्त्रीने कहा,—

हैं ? आप अपनी पुत्री किसी राजकुमारको दीजिये, मेरा पुत्र आपके योग्य नहीं है। कहा भी है, कि—

> ययोरेव समं वित्तं, ययोरेव समकुलम्।
> तयोर्मैत्री विवाहश्च, नतु पुष्ट-विपुष्टयोः॥ १॥

"जिन दो मनुष्योंकी धन-सम्पत्ति एकसी हो, कुल एकसा हो, उन्हीं दोनोंमें परस्पर मैत्री या विवाह होना उचित है, परन्तु उनमेंसे यदि एक बलवान और दूसरा निर्बल हो, तो उनमें सम्बन्ध होना ठीक नहीं है।"

मन्त्रीकी यह बात सुन, राजाने फिर कहा,—"मन्त्री! इस बारेमें तुम्हारे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यह बात तो अब होकर ही रहेगी। इसमें कोई संशय न समझना।"

सभासदोंने भी कहा, कि मन्त्रीजी! आपको राजाकी बात मान ही लेनी चाहिये। यही सब सुनकर मन्त्रीने, इच्छा न रहते हुए भी, राजाकी बात मान ली।

इसके बाद मन्त्री, घर आ, हथेली पर सिर रखकर मन-ही-मन विचार करने लगा,— "हाय! मेरी तो यही हालत हो रही है, कि एक ओर बाघ बैठा है, और दूसरी ओर नदी लहरा रही है। इधर उसके मुँहमें चले जानेका भय है, उधर नदीमें डूब जानेका। इसका कारण यह है, कि राजाकी पुत्री देवांगना की भाँति रूपवती है और मेरा पुत्र कोढ़के रोगसे पराभवको प्राप्त हो रहा है। फिर जान-बूझकर मैं इन दोनोंकी जोड़ी क्यों मिलाऊँ? इसी तरहकी चिंताओंमें मन्त्री खाना-पीना भी भूल गया। अन्तमें उसे यह याद आया कि, मेरी कुलदेवी बड़ी जागती देवी है। मैं उन्हींकी आराधना करूँ, तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो जाये। ऐसा विचार कर, मन्त्रीने बड़ी विधिके साथ अपनी कुलदेवीकी आराधना की। उसकी आराधनासे प्रसन्न हो, देवीने प्रत्यक्ष प्रकट हो करके कहा,— "हे मन्त्री! तू किस लिये मेरा ध्यान कर रहा है?" मन्त्रीने कहा,— "माता! तुम तो स्वयं ही सब कुछ जानती हो, तो भी जब पूछ रही हो, तो लो, कहे देता हूँ, सुन लो। मेरा पुत्र, दुष्ट कुष्ट-व्याधिसे पराभवको प्राप्त हो रहा है। तुम ऐसी कृपा कर दो, जिससे मेरा पुत्र इस रोगके पंजेसे छूट जाये।" इस पर देवीने कहा, — "पूर्वमें किये हुए कर्मोंके दोषसे जो व्याधि उत्पन्न हुई हो, उसे दूर करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। इसलिये तुम्हारी यह

प्रार्थना व्यर्थ है।" यह सुन मन्त्रीने मन-ही-मन विचार कर कहा,—"अच्छा यदि ऐसा नहीं हो सकता, तो तुम कोई उसीकी सी आकृतिवाला व्याधि-रहित, दूसराही पुरुष कहींसे ढूँढ़ ला दो, तो मैं उसीके साथ राजकुमारीका व्याह कराके पीछे राजकुमारीको अपने पुत्रके हवाले कर दूँगा।" देवीने कहा,—"मन्त्री! मैं किसी बालकको लाकर नगरके दरवाज़े पर घोड़ोंकी रक्षा करनेवाले राजपुरुषोंके पास ले आऊँगी। वह जाड़ा दूर करनेके लिये जब आगके पास आ बैठे, तब तुम उस लड़केको वहाँसे उड़ा ले आना।" इसके बाद जैसा उचित जान पड़े, वैसा करना। यह कह देवी अदृश्य हो गयी। इसी बात-पर विश्वास कर मन्त्री बड़ी प्रसन्नताके साथ विवाहकी तैयारियाँ करने लगा। इसके बाद मन्त्रीने अपने अश्वपालको एकान्तमें बुलाकर उससे सारा हाल कह सुनाया और बड़े आदर से कहा,—"यदि कोई बालक कहींसे आकर तुम्हारे पास बैठ रहे, तो तुम उसे झटपट मेरे पास ले आना।" अश्वपालने उनकी यह आज्ञा सादर स्वीकार कर ली।

इसके बाद कुलदेवीने अपने ज्ञानसे यह मालूम कर लिया, कि इस राजपुत्री का वर तो मंगलकलश होने वाला है। बस, उन्होंने उज्जयिनी—नगरीमें जाकर बागसे फूल लेकर आते हुए मंगलकलशको देख, आकाशमें ही ठहरे हुए कहा,—"यह जो बालक फूल लेकर चला जा रहा है, वह किराये पर किसी राज-कन्यासे शादी करेगा?" यह सुनकर मंगलकलशको बड़ा विस्मय हुआ। "यह क्या?" यही सोचते हुए उसने मन-ही-मन निश्चय किया, कि घर पहुँचकर पितासे यह बात कहूँगा। इसके बाद जब वह घर पहुँचा, तब पितासे वह बात कहना भूल ही गया। दूसरे दिन, उसने फिर वैसी ही बात सुनी। उस समय उसने अपने मनमें विचार किया,—"अहा! जो बात मैंने कल सुनी थी, वही तो आज भी आकाशमें सुनाई दे रही है। अच्छा, कल तो मैं यह बात पिताजी से कहना भूल गया; पर आज अवश्य कहूँगा।" ऐसा ही विचार करता हुआ वह रास्तेमें चला जा रहा था, कि इसी समय बड़े जोरकी आँधी उठी और उसे चम्पानगरीके पासवाले जंगलमें उड़ा ले गयी। एकाएक वहाँ पहुँच कर वह बड़ा भयभीत हुआ। इसके बाद थका-मांदा और प्यासा होनेके कारण वह एक मानस-सरोवर का सा निर्मल सरोवर देख, वहाँ पहुँचा और वस्त्र भिंगो, और उसीको निचोड़ कर पानी पिया, इसके बाद स्वस्थ हो, कुशके तृण ले, उसने उनकी रस्सी बना डाली और उसके सहारे सरोवरके तीर पर उगे हुए एक बड़े भारी वट-वृक्षपर चढ़ गया। इतनेमें सूर्य अस्त हो गये। उस समय वट-वृक्षपर बैठे हुए उसने जो चारों ओर नज़र दौड़ाई, तो पासही उत्तर दिशाकी ओर अग्नि

जलती हुई मालूम पड़ी। यह देख, वह वृक्षसे नीचे उतरा, पर साथ ही डर गया। ठंढके मारे उसका शरीर काँप रहा था। इसी लिये वह धीरे-धीरे उस आगकी सीध पर चल पड़ा। क्रमशः वह चम्पापुरीके बाहरी हिस्सेमें आ पहुँचा और अश्वपालोंके पास बैठकर आग तापने लगा। उसे देखकर अश्वपालक, "यह दरिद्र बालक कौन है? कहाँसे आया है?" इस तरहकी बातें एक दूसरेसे पूछने लगे। ऊपर लिखे हुए अश्वपालोंके स्वामीने जब यह बात सुनी तब मन्त्रीकी बातका स्मरण कर, उस बालकको अपने पास बुला लिया। उसके पास आनेपर उसने उसकी ठंढ दूर करनेका उपाय कर दिया और सबेरा होते ही उसे मन्त्रीके पास ले गया। उसे देख, मन्त्रीको बड़ा हर्ष हुआ। उसने उसे एक गुप्त स्थानमें ला रक्खा और उसे स्नान-भोजन कराके सन्तुष्ट किया। यह सब देखकर मंगलकलशने सोचा,— "यह मेरी इतनी बेहिसाब खातिरदारी क्यों कर रहा है? साथही मुझे इस तरह छिपा कर क्यों रखा है?" यह विचार मनमें आतेही उसने मन्त्रीसे पूछा,— "इस परदेशीकी आप इतनी खातिर क्यों कर रहे हैं? यह नगरी कौनसी है? यह देश कौनसा है? मेरा यहाँ क्या काम है? यह सब सच-सच बतलाइये। मुझे बड़ा अचम्भा हो रहा है।" यह सुन, मन्त्रीने कहा,— "इस नगरीका नाम चम्पा है। यह देश अंग नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ सुरसुन्दर नामके राजा राज्य करते हैं। मैं उनका मन्त्री हूँ। मेरा नाम सुबुद्धि है। मैंने ही तुम्हें एक बहुत बड़े कार्यके लिये बुलवा मँगवाया है।"

मंगलकलशने फिर पूछा,—"वह कौनसा कार्य है?" सुबुद्धिने कहा,— "सुनो! राजाने अपनी त्रैलोक्यसुन्दरी नामक कन्याका विवाह मेरे पुत्रके साथ करना निश्चय किया है, परन्तु मेरा पुत्र कुष्ट-व्याधिसे पीड़ित है। इसी-लिये, हे भद्र! मैंने तुम्हें यहाँ बुलवाया है, कि तुम उस कन्याके साथ विवाह कर, उसे फिर मेरे पुत्रको दे देना।"

यह सुन, मंगलकलशने कहा,— "मन्त्रीजी! आप यह इतना बड़ा कुकर्म करनेको क्यों तैयार हैं? कहाँ वह अत्यन्त रूपवती बाला और कहाँ तुम्हारा कोढ़ी पुत्र! मुझसे तो यह कठोर कर्म कदापि नहीं होनेका। यह तो किसी भोले भाले आदमी को कुएँमें उतार कर रस्सी काट डालनेके बराबर है। यह काम भला कौन करे?"

तब तो मन्त्रीने बिगड़ कर कहा,— "अरे दुष्ट! यदि तू यह काम न करेगा, तो मैं तुझे अपने हाथों मार डालूँगा।" यह कह, सुबुद्धि मन्त्री अपने हाथ में खड्ग ले, बड़ी भयङ्कर मुद्रा बना कर उसे डराया-धमकाया, परन्तु वह कुमा-

नोंमें शिरोमणि मंत्रीके सोचे हुए कुकर्ममें साझीदार बननेको तैयार नहीं हुआ। इसी समय कुछ और बड़े बूढ़े लोग वहाँ आ पहुँचे और मंत्रीको उसका वध करने से रोक कर मंगलकलशसे बोले,—"भाई! तुम मंत्रीकी बात मान लो। बुद्धिमान् मनुष्य समय देखकर काम किया करते हैं।" यह सुनकर उसने मन-ही-मन विचार किया,— "निश्चय यही बात होनेवाली है; नहीं तो मेरा उज्जयिनीसे यहाँ आना क्यों कर होता? सर्व प्रथम आकाशवाणीने भी तो यही बात कही थी। इस लिये मुझे यह बात अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिये; क्योंकि जो होनहार होती है, वह तो होकर ही रहती है।" यही सोचकर उसने अबके मंत्री से कहा,— "यदि मुझे लाचार होकर यह निर्दय कार्य करना ही पड़ेगा, तो क्या करूँगा? अस्तु मैं आपकी बात माने लेता हूँ; पर आपको भी मेरी एक मांग पूरी करनी होगी।" यह सुनतेही मंत्रीका सुर नरम होगया और उसने बड़े तपाकके साथ कहा,— "हाँ, हाँ, झटपट कह डालो। मैं तुम्हारी मांग अवश्य पूरी करूँगा।"

मंगलकलशने कहा,—"राजा जो-जो चीज़ें मुझे देंगे, उन सबका मालिक आप मुझे ही समझना और उन सभी वस्तुओंको तत्काल उज्जयिनीके मार्गमें लाकर उपस्थित कर देना।" मंत्रीने झटपट उसकी यह बात मानली।

इसके बाद, जब व्याहका मुहूर्त्त समीप आया, तब मंत्री उसे अच्छे-अच्छे वस्त्रालंकार पहना, हाथी पर बैठाकर राजाके पास ले गया। उसका सुन्दर रूप देख, राजा मुग्ध हो गये। त्रैलोक्य-सुन्दरी उस कामदेवके समान वरको देखकर मन-ही-मन अपनेको कृतार्थ मानने लगी। तदनन्तर विवाहके समय 'पुण्याऽहं, पुण्याऽहं' इस प्रकारका वाक्य उच्चारण करते हुए ब्राह्मणने वर-वधूको अग्निका चार बार फेरा दिलवाया। चारों प्रकारके मंगलाचार करवाये। पहले मंगलाचार के समय राजाने वरको बड़े ही सुन्दर-सुन्दर वस्त्र दान किये, दूसरेमें आभूषण दान किये, तीसरेमें मणि-रत्न, सुवर्ण आदि मूल्यवान् पदार्थ दिये और चौथेमें रथ आदि वाहन प्रदान किये। इस प्रकार बड़े ही आनन्दसे वर-वधूका विवाह हो गया। विवाहकी सारी क्रिया समाप्त होनेपर, जब जामाताने वधूका हाथ पकड़ा, तब उसके हाथ अलग करनेके पहले ही राजाने पूछा,— "वत्स! अब मैं तुम्हें कौन सी चीज़ दूँ?" यह सुन, उसने पाँच अच्छी नसलके तेज घोड़े माँगे। राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने तत्काल उसके मांगे अनुसार पाँच घोड़े उसे दे दिये। इसके बाद गाजे बाजेके साथ सुन्दरियोंके मगल-गीत और भाट चारणोंके जय-जय शब्द सुनते हुए मंगलकलश अपनी नव-विवाहिता पत्नीके साथ मंत्रीके घर आया। रातके समय मंत्रीके आदमी छिपे छिपे यह बात

कहते सुनाई दिये, कि अब किसी उपायसे शीघ्र ही यहांसे हटा देना चाहिये। यह सुन और आकार-प्रकार तथा चेष्टासे अपने स्वामीको चचल देख, त्रैलोक्य-सुन्दरी अपने पतिके पास ही चली आयी। थोड़ी देर बाद मगलकलश शौचादिके लिये उठ खड़ा हुआ। यह देख, राजकुमारी भी जलका पात्र हाथमें ले, उसके पीछे-पीछे गयी। उस जलको ले, शौचादिसे निवृत्ति होकर मगलकलश फिर घरमे चला आया, परतु उसके मनमे चिन्ता बनी हुई थी। उस समय त्रैलोक्य-सुदरीने अपने पतिको शून्य चित्त देख, बिल्कुल एकान्त पाकर पूछा—"प्राणनाथ! क्या आपको भूख मालूम होती है?" इसके जवाबमें उसने हाँ कह दिया। यह सुन उसने अपनी दासीसे पिताके घरसे आये हुए मिष्टान्न मँगवा कर दिये। उन्हें खाकर पानी पीते-पीते मगलकलशने कहा,—"अहा! यह सुदर केसर भरी मिठाई खानेके बाद यदि कहीं उज्जयिनीका जल मिल जाता, तो फिर कैसी तृप्ति होती! बिना उसके तृप्ति कहाँ?"

यह वचन सुन, राजकुमारी मन-ही-मन व्याकुल होकर सोचने लगी,—"है! ये ऐसी विचित्र बात क्यों बोल रहे हैं? इन्हें उज्जयिनीके जलकी मिठास कैसे मालूम हुई? अथवा हो सकता है, कि इनका ननिहाल वहाँ हो और ये लड़कपनमें वहाँ जाकर वहाँका हवा-पानी देख आये हों। इसके बाद उसने पाँच सुगन्धित पदार्थोंसे मिश्रित ताम्बूल, अपने हाथों बनाकर, पतिको मुखशुद्धि के लिये दिये। थोड़ी देरमे मन्त्रीने मगलकलशके पास आदमी भेजकर उसे समय की सूचना दी, जिसे सुनते ही मगलकलशने त्रैलोक्यसुन्दरीसे कहा,—"प्यारी! मुझे फिर शौच जानेकी इच्छा हो रही है—पेटमे बड़ा दर्द हो रहा है। लेकिन देखना, इसबार जलका पात्र लेकर जल्दी न आना। थोड़ी देर ठहर कर आना।" यह कह, वह घरसे बाहर चला आया।

मन्त्रीके पास पहुँच कर उसने पूछा,—"राजाने जो मुझे अश्व इत्यादि पदार्थ दिये थे, वे सब कहाँ रक्खे हैं?" मन्त्रीने कहा,—"वे सब उज्जयिनीके रास्तेमें हैं।"

यह सुन वह वहीं गया और सब चीजोंको एक रथ पर रखकर, उसमें चार घोड़े जोत दिये। पाँचवें घोड़ेको पीछे बाँध दिया। बहुतसी चीजें तो उसने वहीं छोड़ दीं और अपनी नगरीकी राह नापी। रास्तेमें जो जो गाँव मिलते गये, उन सबके नाम उसने मन्त्रीके सेवकोंसे मालूम कर लिये। इस तरह रथमें बैठा हुआ रात-दिन चलकर, वह कुछ दिनोंमें अपनी नगरीमें आ पहुँचा।

इधर मगलकलशके गुम हो जानेके बाद उसके माता-पिताने उसकी बड़ी खोज-ढूँढ करवायी पर जब कहीं उसका पता न मिला, तब रोते-रोते थककर वे

कुछ दिनोंमें शोक-रहित से हो गये। इतनेमें एक दिन उनकी माताने उन्हें रथमें बैठे हुए, अपनी घरकी तरफ आते देख, पुत्रको नहीं पहचाननेके कारण, सहसा पुकार कर कहा,— "हे राजपुत्र ! तुम मेरे घर पर रथ क्यों ला रहे हो ? सीधी राह छोड़कर नयी राह क्यों जा रहे हो ?" परन्तु इस प्रकार रोकने पर भी जब उसने रास्ता नहीं बदला, तब सेठानीने बहुत ही घबराकर सेठको बुलाया और उनको सारा हाल कह सुनाया। यह सुन, सेठ उसे रोकनेके लिये ज्योंहीं घरसे बाहर निकले, त्योंही मंगलकलशने रथसे नीचे उतर कर, पिताके चरणोंमें माथा टेका। तबतो पिताने पुत्रको पहचान कर, उसे बड़े प्रेमसे गले लगा लिया। इसके बाद आनन्दके आँसू ढलकाते हुए माता-पिताने पहले तो उसका कुशल समाचार पूछा। इसके बाद और-और बातें पूछीं। इस अपार सम्पत्तिके प्राप्त होनेकी बात भी पूछी। इस पर मंगलकलशने अपना सारा हाल माता-पिता को कह सुनाया। यह सुन, उसके माता-पिताने मन-ही-मन विचार किया, "अहा ! इस लड़केका भाग कितना बड़ा है !" इसके बाद सेठने अपने घर को तुड़वाकर क़िला बनवाया और उसमें गुप्त रीतिसे उन पाँचों अश्वोंको रख दिया। पुत्रके घर आजानेकी खुशीमें सेठके घर बड़ी धूमधामसे बधाइयाँ बजने लगीं।

एक दिन मंगलकलशने अपने पितासे कहा,—"पिताजी ! अभी मुझे थोड़ासा कलाभ्यास करना बाकी रह गया है, उसे भी पूरा कर डालूँ, तो अच्छा है।" यह सुन, सेठने अपने घरके पास ही रहनेवाले एक कलाचार्यके पास उसे कला सीखनेके लिये भेज दिया। वह वहीं अभ्यास करने लगा।

इधर चम्पापुरीमें मंत्रीने पुत्रको मंगलकलशके गहने कपड़े पहना कर, रात के समय राजकुमारीके कमरेमे भेजा। वह आते ही सेजपर बैठ गया। उसे देखते ही त्रैलोक्यसुंदरीने सोचा,—"यह कौन कोढ़ी मेरे पलंग पर आ बैठा ?" इसके बाद वह ज्योंहीं राजकुमारीको छूनेके लिये आगे बढ़ा, त्योंही वह शय्या से नीचे उतर पड़ी और भागी हुई वहाँ चली आयी, जहाँ उसकी दासियाँ सोयी हुई थीं। उसे इस तरह एकाएक वहाँ पहुँची देख, दासियोंने पूछा,—"स्वामिनी ! आप इतनी घबरायी हुई क्यों मालूम पड़ती हैं ?" उसने उत्तर दिया,—"मालूम होता है, कि मेरे देवताके समान सुंदर स्वरूपवान् स्वामी कहीं चले गये।" दासियोंने कहा,— "नहीं, नहीं—अभी तो वे तुम्हारे कमरेमे गये हैं !" राजकुमारीने कहा,—"वह मेरा पति नहीं, कोई कोढ़ी मालूम पड़ता है।" यह कह, वह सुंदरी रात भर दासियोंके ही मध्यमे सोयी रही। सारी रात वहीं बिताकर, सवेरा होते ही त्रैलोक्य सुन्दरी अपने पिताके घर चली गयी।

प्रात काल कुबुद्धिसे प्रेरित मन्त्री राजाके पास पहुँचा। उस समय उसका चेहरा चिन्तासे काला पड गया था। यह देख, राजाने उससे पूछा,—" मन्त्री ! आज हर्षके स्थानमें तुम्हारे मुखड़े पर विषाद क्यों छाया हुआ है ? " मन्त्रीने कहा,—"हे राजन् ! मुझे तो भाग्यके दोषसे हर्षके स्थानमें शोक ही प्राप्त हुआ ।" राजाने घबरा कर पूछा,—"क्यो, क्यों, क्या हुआ ?" उसने कहा,—"हे स्वामिन् ! मनुष्य मन-ही-मन हर्षसे फूलता हुआ जिस कार्यको करने के लिये उतारू होता है, उस कार्यके महा शत्रुके समान विधाता उसको एकबारगी उलट पुलट कर देता है ।" यह उत्तर पा, राजाने फिर बड़े आग्रहसे मन्त्रीसे उसके दु खका कारण पूछा। मन्त्रीने एक लम्बी साँस लेकर कहा,—"स्वामी ! मेरा भाग्य ही फूटा हुआ है। मेरा पुत्र जैसा है वैसा तो आप अपनी आँखो देख ही चुके है। अब यह भाग्यका फेर देखिये, कि आपकी कन्याका स्पर्श होते ही, वह कोढी हो गया ! क्या कहूँ ? किसके आगे दुखड़ा रोऊँ ?"

यह सुन, राजा भी बड़े दु खित हुए। वे मन-ही-मन विचार करने लगे,—" अवश्य ही मेरी यह पुत्री कुलक्षणा है। तभी तो इसके स्पर्श-मात्रसे ही मेरे मन्त्री का पुत्र कोढ़ी हो गया। यह तो ठीक है, कि इस जगत् मे सभी अपने-अपने कर्मोंका फल भोगते हैं, परन्तु अन्य प्राणी उसके निमित्त भी तो बन जाया करते हैं। इस संसारमे न तो कोई प्राणी किसीको सुख-दुख देनेकी शक्ति रखता है, न हरण करनेकी। जो कोई सुख-दुख भोग करता है, वह अपने कर्मोंके फल ही भोगता है। कर्म ही सुख-दुखके कारण है। इस लिये हे मन ! तुम्हें इस समय इसी सुबुद्धिसे काम लेना चाहिये।" इसी प्रकार सोच-विचार कर राजाने कहा,—"हे मन्त्री ! मैंने तुम्हारे पुत्रको बड़े कष्टमें डाल दिया। यदि मैं तुम्हारे पुत्रके साथ अपनी कन्याका विवाह न करता तो वह इस दुष्ट रोगसे क्यों दु ख पाता।"

यह सुन, मन्त्रीने कहा,—"महाराज ! आपने तो हितका ही काम किया, फिर इसमें आपका क्या दोष है ? सब मेरे कर्मोंका ही दोष है।" यह कह, मन्त्री तो घर चला गया और उसी दिनसे त्रैलोक्यसुन्दरी पहले पिता और परिवारवालों की जितनी ही प्यारी थी, उतनी ही अप्रिय हो गयी। कोई उससे दो-दो बातें करना भी नहीं चाहता था, उसे भर नजर देखता तक नहीं था। वह अकेले ही अपनी माताके घरके पिछवाड़े एक गुप्तगृहमें रख दी गई। वहाँ पड़ी-पड़ी वह विचार करने लगी,—"मैंने पूर्व जन्ममें ऐसा कौनसा पाप किया था, जिससे मेरे नव विवाहित पति न जाने कहाँ चले गये और मुझे व्यर्थकी बदनामी उठानी

पड़ी? अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? यह तो मेरे ऊपर बड़ी भारी विपत्ति आ पहुँची!" इसी प्रकार सोचते-विचारते उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ, कि जिनका मेरे साथ विवाह हुआ है, वह मेरे स्वामी अवश्य ही उज्जयिनी-नगरी में चले गये हैं। कारण उस दिन मिठाई खानेके बाद उन्होंने कहा था कि, यदि मिठाईके ऊपरसे उज्जयिनीका जल मिलता तो क्याही अच्छा होता! इस से तो यही संभव मालूम होता है, कि वे उज्जयिनी चले गये होंगे। अब यदि मैं किसी उपायसे वहाँ पहुँच सकूँ तो उनसे मिलकर अवश्य ही सुखी हो जाऊँगी। इस प्रकार विचार करती हुई वह, थोड़ी देरतक वहीं बैठी रह गयी।

एक दिन उसने अपनी मातासे कहा,—"माता! तू ऐसा कोई उपाय कर जिससे पिताजी एक बार मेरी बात सुनलें।" परन्तु यह सुनकर भी, उसकी माताने उसका मान नहीं रक्खा। तब दूसरे दिन सुन्दरीने सिंह नामक एक सरदारको बुलाकर, उस पर अपना अभिप्राय प्रकट किया। उसकी आदिसे अन्त तक सारी बातें सुन, मन-ही-मन बहुत कुछ सोच—विचार करनेके बाद सरदारने कहा,—"बेटी! तू उतावली मत हो। मैं अवसर देखकर राजा से तेरी सब बातें कह सुनाऊँगा और तेरी इच्छा पूरी करूँगा।" यह सुन, राजकुमारीको धैर्य हुआ।

एक दिन समय पाकर सिंहने बड़ी युक्तिके साथ राजासे कहा,—"राजन् आपकी पुत्री बेचारी इस समय बड़े कष्टमें है। उसका सम्मान करना तो दूर रहा, कमसे कम इतनी भी तो कृपा कीजिये, कि उसकी बातें सुन लीजिये।" यह सुन, राजा की आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होंने सिंहसे कहा,—"सामन्त! मेरी पुत्रीने किसी पर झूठा अपराध लगानेका अपराध किया है, इसी से इस जन्ममें उस पर कलंक लगा है और वह आपसे आप सुखकी जगह दुःख पा रही है। पर यदि वह मुझसे कुछ कहा चाहती हो तो भले ही मेरे पास आकर कहे, मैं सुननेको तैयार हूँ।" इस प्रकार राजाकी आज्ञा पा, सामन्तने त्रैलोक्यसुन्दरीके पास आकर कहा,—"पुत्री! जा, तू अपने पिताके पास जाकर जो कुछ कहना हो, कह सुना।" यह सुन त्रैलोक्यसुन्दरीने राजा के पास आकर कहा,—"पिताजी! मुझे राजकुमारोंकीसी पोशाक मँगा दीजिये यह सुन, राजाने सिंहसे कहा,—"सामन्त! यह आफत की मारी क्या ऊटपटाँग बक रही है?" सामन्तने कहा,—"महाराज! इसने जो कुछ कहा, वह ठीक ही कहा है। यह परिपाटी तो पहलेसे ही चली आ रही है। राजकुमारियाँ बड़े बड़े कार्योंका साधन करनेके लिये पुरुष-वेश धारण कर सकतीं हैं। इसमें कोई बुराई नहीं है, इस लिये आप संशय न करें, प्रसन्नतासे राज-

कुमारीको पुरुषका वेष धारण करनेकी आज्ञा देदें।" यह सुन, सामन्तका वचन युक्तियुक्त मान, राजाने अपनी कन्याको पुरुषकी पोशाक मँगवा दी और उसकी रक्षाके लिये सिंह सामन्तको सैन्यके साथ राजकुमारीके संग जानेकी आज्ञा दी। इसके बाद राजकुमारीने कहा,—"यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं एक बड़े ही आवश्यक कार्यके लिये उज्जयिनी जाना चाहती हूँ। यदि वह कार्य सिद्ध हो गया तो मैं आने पर आपसे सारा हाल कह सुनाऊँगी।" यह सुन राजाने कहा,—"पुत्री! तू सानन्द चली जा, पर देखना ऐसा कोई काम न करना, जिससे अपने कुलमें दाग लगे।" यह कह, राजाने उसे जानेकी आज्ञा देदी।

तदनन्तर पुरुषका वेश धारण कर सुन्दरी पिताकी आज्ञा ले, सिंह सामन्तकी बड़ी सेनाके साथ रात-दिन चलती हुई उज्जयिनीमें आ पहुँची। उसी समय लोगोंके मुँहसे वहाँके राजा वैरीसिंहने सुना कि, चम्पापुरीका राजकुमार यहाँ आ रहा है। इन दोनों राजाओंमें परस्पर बड़ी मैत्री थी, इस लिये यह सुनते ही वैरीसिंह उस पुरुषवेशधारिणी सुन्दरीके पास आ पहुँचे और उसका बड़े सम्मानसे आगत-स्वागत कर नगरीमें प्रवेश कराते हुए अपने महलमें ले गये। इसके बाद जब राजाने उसके यहाँ आनेका कारण पूछा, तब उसने कहा,—"पृथ्वीमें प्रसिद्ध और आश्चर्यजनक वस्तुओंसे भरे हुए आपके इस नगरको देखनेके कौतूहलसे ही मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ।" यह सुन राजाने कहा,—"राजकुमार! मेरे-तुम्हारे घरकासा नाता है। राजा सुरसुन्दर और मुझमें कोई अन्तर नहीं समझना।" यह सुन, वह राजपुत्री अपने सैनिकों और सवारियोंके साथ राजाके दिये हुए उस महलमें सुखसे रहने लगी। वहाँ रहते-रहते उसने एक बार अपने सेवकोंसे कहा, कि तुम लोग किसी स्वादिष्ट जलाशयका पता लगा लाओ। सेवकोंने पता लगाकर कहा, कि बस्तीसे पूर्वकी ओर एक स्वादिष्ट जलाशय है, यह मालूम होते ही वह सुन्दरी राजाकी आज्ञा ले, उसी दिशाकी ओर रास्तेमें एक मकान लेकर उसीमें रहने लगी।

एक दिन वह अपने मकानकी खिड़कीमें बैठी हुई थी, कि इसी समय उधरसे पानी पीनेको जाते हुए अश्वोंको देखकर, उसने अपने मनमें विचार किया, ये घोड़े मेरे पिताके ही मालूम होते हैं। यह विचार मनमें उठते ही उसने अपने आदमियोंको उनके पीछे लगा दिया और कहा,—"तुम लोग इन घोड़ोंके पीछे-पीछे जाकर देखो, कि ये कहाँ जाकर खड़े होते हैं और उस घरका पूरा पता, उसके मालिकका नाम आदि मालूम कर लाओ।" सेवकोंने ऐसा ही किया और नाम आदि सब बातोंका पता लगा लाये। तदनन्तर मंगलकलशके कलाभ्यास आदिका हाल मालूम कर, त्रैलोक्यसुन्दरीने सिंह सामन्तसे कहा,—"आप किसी

उपायसे इन अश्वोंके पीछे-पीछे जाइये।" सिंहने कहा, "इन घोड़ोंके मालिककी शिक्षाशाला यहीं पास ही है। तुम एक दिन वहाँके अध्यापकको विद्यार्थियोंके साथ आकर, भोजन करनेके लिये निमन्त्रण दे दो, फिर जैसा कुछ होगा, किया जायगा।" सुन्दरीने ऐसा करना स्वीकार किर लिया। भोजनकी सारी सामग्री तैयार कर उसने उपाध्यायको निमन्त्रण दिया। ठीक समय पर उपाध्याय अपने सब विद्यार्थियोंके साथ आ पहुँचे। उन विद्यार्थियोंके मध्यमें अपने पतिको देख कर, त्रैलोक्यसुन्दरीके मनमें बड़ा ही आनन्द हुआ। तदनन्तर उसने हर्षके आवेशमें आकर अपना आसन और थाल इत्यादि मंगल-कलशके लिये भेजा और उसकी बड़ी भक्ति की। सबको आदरके साथ भोजन कराकर उसने वस्त्र भी दिये और मंगलकलशको उसीके शरीरके दो सुन्दर वस्त्र दिये। इसके बाद उसने कलाचार्यसे कहा,—"आपके इन विद्यार्थियोंमें जो खूब अच्छी कहानी सुना सकता हो, वह मुझे एक कथा सुनाये।" यह सुन, मंगल-कलशकी विशेष भक्ति हुई देख, डाहसे जले हुए सब विद्यार्थियोंने कहा,— "हमलोगोंमें मंगलकलश ही सबसे अधिक प्रवीण है, यही कथा सुनायेगा।" सबकी ऐसी बात सुन पण्डितने भी मंगलकलशको ही कथा सुनानेकी आज्ञा दी। पण्डितकी आज्ञा पाकर मंगलकलशने कहा,—"कोई कल्पित कथा सुनाऊँ या आप बीती कह सुनाऊँ" यह सुन कुमार वेशधारिणी राजपुत्रीने कहा,— "कल्पित कथा छोड़ो आप बीती घटना ही कह सुनाओ।" उसकी यह आवाज़ कानमें पड़ते ही मंगलकलशने सोचा,—"यह तो वही त्रैलोक्यसुन्दरी मालूम पड़ती है, जिसके साथ मैंने चम्पापुरीमें विवाह किया था। वही किसी कारण पुरुष वेश बनाकर यहाँ आयी हुई है।" यही सोच कर वह अपनी राम-कहानी सुनाने लगा। आदि, मध्य और अन्तका अपना सारा चरित्र, सुबुद्धि मंत्रीके द्वारा अपने घरसे हटाये जाने तकका हाल उसने कह सुनाया। यह सुन, राजकुमारीने बनावटी क्रोध दिखाते हुए कहा,— "कोई है? अभी इस झूठी बातें बनानेवालेको गिरफ्तार कर लो।" यह सुनते ही उसके से-कोंने उसे गिरफ्तार करना ही चाहा, कि स्वयं उसने उन्हें रोका और मंग-कलशको घरके अन्दर ले गयी। वहाँ उसे एक आसन पर बैठाकर, उसने सामन्तसे कहा,—"मेरा जिनके साथ विवाह हुआ था, वे मेरे स्वामी यहं अतएव अब बतलाइये, कि मैं क्या करूँ? शीघ्र विचार कर कहो।" स-ने झटपट उत्तर दिया,—"यदि सचमुच यही तुम्हारे स्वामी हों, तो तुम अंगीकार करो।" यह सुन, राजकुमारीने कहा,—"सरदार! यदि तुम्हारे कोई शंका हो तो तुम अभी इनके घर जाकर, मेरे पिताके दिये हुए थाल

पदार्थोंको देखकर अपना संशय दूर कर सकते हो। जब राजकुमारीने इस सफाईके साथ यह बात कही, तब सिंह सामन्त मंगलकलशके घर गया और अपनी दिल-जमई कर, मंगलकलशके पिताको बुलाकर उसने उससे सारी कथा कह सुनायी। इसके बाद वह फिर राजकुमारीके पास चला आया। तदनन्तर सिंह सामन्त की सलाहसे स्त्रीवेश धारण कर, राजकुमारी मंगलकलशके घर गयी और उसकी धर्मपत्नीके समान रहने लगी।

उज्जयिनीके राजाने जब यह बात सुनी, तब उन्होंने सेठको अपने पास बुलाया और सब हाल सुन बड़ा आश्चर्य अनुभव किया। तदनन्तर राजाकी आज्ञासे मंगलकलश उसी मकानमें अपनी पत्नीके साथ विलास करने लगा। इसके बाद त्रैलोक्य सुन्दरीने सिंह सामन्तको सब सैनिकोंके साथ चम्पापुरी भेज दिया और उसके साथ ही अपनी मर्दानी पोशाक भी वापिस दी। सिंह सामन्तने चम्पापुरीमें आकर राजासे सब बात कह सुनायी। राजाने सब हाल सुन, प्रसन्न होकर कहा,—"अहह, मेरी पुत्रीने कैसी कला-कुशलता दिखलायी ? और इस मंत्रीकी दुष्ट बुद्धिको तो देखो, कि इसने मेरी निर्दोष कन्याके सिर कितना बड़ा दोष मढ़ दिया !"

इसके बाद राजाने सिंह सामन्तको फिर उज्जयिनी भेजकर अपनी कन्या और जामाताको सादर बुलवा मँगाया और उनका भली भाँति आदर-सत्कार किया। तदनन्तर उस दुष्ट बुद्धि मंत्रीका सारा भण्डाफोड़ कर, उसकी सारी सम्पत्ति हरण कर ली और उसे वधभूमिमें ले जानेका हुक्म दिया। कोतवाल उसे गधे पर चढ़ा कर बस्तीके सब छोटे-बड़े रास्तोंमें घुमाता हुआ, वधभूमिमें ले गया। उस समय मंगलकलशने राजासे बड़ी विनती करके उसे छुटकारा दिलवा दिया। उसे छोड़नेकी आज्ञा देते हुए राजाने उससे कहा,—"रे पापी ! देख, मैं तुझे अपने दामादके कहने से छोड़ देता हूँ, पर तू अभी मेरे राज्यसे बाहर निकल जा।"

यह सुन, मंत्री उसी समय उस राज्यसे बाहर हो गया। राजाने कोई पुत्र न होनेके कारण मंगलकलशको ही अपना पुत्र माना और उसके माता-पिताको भी बड़े आदरसे वहीं बुलवा लिया। एक दिन राजाने मंत्री और सामन्त आदिकी सम्मतिसे बड़े धूम-धामके साथ, अपना राज्य मंगलकलशको दे डाला। तदनन्तर सुरसुन्दर राजाने यशोभद्र नामक एक सूरिसे चारित्र ग्रहण किया।

सुरसुन्दर राजाके दीक्षा ग्रहण करने पर, यह सुनकर कि उनके राज्य पर आजकल एक वणिक् जातिके पुरुषका अधिकार है, कई एक सीमा-प्रान्तके राजा सेना समेत उस राज्यको हड़पकर लेनेकी इच्छासे उस पर चढ़ आये। मंगल-

कलशने अपने पुण्यके प्रभावसे, उन सबको युद्ध-भूमिमें बड़ी आसानीसे परास्त कर डाला। तब तो उसके सभी शत्रु मित्र हो गये। वह सुखसे राज्यका शासन-पालन करने लगा। काल-क्रमसे त्रैलोक्य सुन्दरीके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम यशःशेखर रखा गया। पुत्र-जन्मकी बधाईमें मंगलकलश राजाने अपने देशमें सर्वत्र जैनचैत्योंमें जिन-पूजा करायी और 'अमारीपडह' तथा 'रथ-यात्रा, आदि धर्म-कार्य करवाये।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें श्रीजयसिंह सूरि पधारे। यह सुन, मंगलकलश राजा अपनी रानीके साथ भक्ति-भाव-पूर्वक गुरुकी वन्दना करने गया। उसने गुरुकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, उनकी भक्ति-पूर्वक वन्दना करते हुए पूछा,—"हे भगवन्! कृपा कर यह बतलाइये कि मेरे विवाहके समय मुझे इतनी विडम्बनामें क्यों पड़ना पड़ा और मेरी रानीके सिर कलंकका टीका क्यों लगा? यह हमारे किस कर्मके दोषसे हुआ?" सूरिने कहा,—"इस भरत-क्षेत्रमें क्षितिप्रतिष्ठ नामक एक नगर है। उसमें सोमचन्द्र नामका एक कुलपुत्र रहता था। उसकी स्त्रीका नाम श्रीदेवी था। दोनोंमें परस्पर बड़ी प्रीति थी। सोमचंद्र स्वभावसे ही सद्गुणी, सरल-हृदय और सब लोगोंमें माननीय हो रहा था। उसकी स्त्री भी वैसी ही गुणवती थी। उसी नगरमें जिनदेव नामका एक श्रावक रहता था। उसके साथ सोमचन्द्रकी बड़ी गाढ़ी मित्रता थी। एक दिन जिनदेवने अपने पास बहुत धन-द्रव्य रहते हुए भी अधिक उपार्जन करनेकी इच्छासे परदेश जानेका विचार किया और सोमचन्द्रसे आकर कहा,—"मित्र! मैं धन कमानेके लिये परदेश जाना चाहता हूँ, इसलिये मैं तुम्हें जो धन दिये जा रहा हूँ, उसे विधिके साथ सात क्षेत्रोंमें व्यय करना। इससे जो पुण्य होगा, उसका छठा भाग तुम्हें भी प्राप्त होगा।" यह कह उसने दस हज़ार मुहरें सोमचंद्रके हाथमें दे, परदेशकी यात्रा कर दी। उसके जाने पर सोमचन्द्रने शुद्ध-चित्तसे उसके दिये हुए धनको विधि-पूर्वक उचित स्थानमें व्यय किया। इसके सिवा उसने अपने पासका भी बहुतसा धन धर्मके कार्योंमें व्यय किया। इससे उसे बड़ा पुण्य हुआ। उसकी पत्नीने भी उस धनको खर्च करनेमें बाधा नहीं दी, इसलिये वह भी पुण्य-भागिनी हुई।

उसी नगरमें श्रीदेवीकी एक सहेली रहती थी, जिसका नाम भद्रा था। वह नन्द सेठकी पुत्री और देवदत्तकी स्त्री थी, कुछ दिन बीतने पर, कर्मके दोषसे देवदत्त कोढ़ी हो गया। इससे उसकी स्त्री भद्रा बड़ी ही दुःखित हुई। एक दिन उसने अपनी सखी भद्रासे कहा,—"हे सखी! न जाने किस कर्मके दोषसे मेरे स्वामी कोढ़ी हो गये हैं।" यह सुन, श्रीदेवीने हँसीके तौर पर कहा,—"सखी!

इसमें सन्देह नहीं, कि तेरे ही अंगोंके स्पर्शसे, तेरा स्वामी कोढी हो गया है। तू बडी पापिनी है। जा, तू मेरी आँखोंके सामनेसे दूर हो जा—मुझे अपना मुँह मत दिखा। अपनी सखीके ऐसे वचन सुन, भद्राके मनमें बडा भारी खेद हुआ—क्षण भरके लिये उसके चेहरे पर स्याही दौड गयी। कुछ ही क्षण बाद श्रीदेवीने कहा,— "सखी! बुरा न मानना। मैंने यह बात दिल्लगीसे कही है।" यह सुन, भद्राके मनका खेद दूर हो गया।

सोमचन्द्रने मुनियोंके संगके प्रभावसे, अपनी भार्याके साथ ही जैन-धर्म अंगीकार कर, उसका शुद्ध रीतिसे पालन करते हुए, अंतमें समाधि-मरणसे मृत्यु पायी और सौधर्म नामक पहले देवलोकमें जाकर, पाँच पल्योपम आयुष्यवाला देव हो गया। हे राजन्! उसी सोमचन्द्रका जीव देवलोकसे आकर, मंगलकलश हुआ और श्रीदेवीका जीव भी वहाँसे आकर, त्रैलोक्यसुंदरी हुई। तुमने सोमचन्द्रके भवमें दूसरेके दिये हुए द्रव्यसे पुण्य कमाया था, इसीलिये तुमने इस जन्ममें दूसरेके नाम पर इस राजकन्यासे विवाह किया और त्रैलोक्यसुंदरीने श्रीदेवीके भवमें हँसीसे अपनी सखीको कलंक लगाया था, इसीलिये इस भवमें इसे भी कलंक लगा।"

इस प्रकार गुरु महाराजके मुखसे अपने पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुन, राजा और रानीको वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप, गुरुसे दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद वे राजर्षि क्रमशः सभी सिद्धान्तोंके पारगामी विद्वान हो गये। गुरुने उन्हें आचार्यके पद पर स्थापित किया और त्रैलोक्यसुंदरीको प्रवर्त्तिनीके पद पर बैठाया। काल पाकर वे दोनों ही शुभ ध्यान करते हुए काल-धर्मको प्राप्त हुए और ब्रह्मदेव-लोक नामक पाँचवें स्वर्गमें देव होकर जा विराजे। वहाँ से पुनः आकर मनुष्य-जन्मके तीसरे भवमें उन दोनोंने मोक्ष-पदवी पायी।"

मङ्गलकलश कथा समाप्त।

इस प्रकार धर्म-कथाका श्रवण कर, श्रीषेण राजाको प्रतिबोध हुआ। उन्होंने गुरुसे समकित पूर्वक श्रावक-धर्म ग्रहण किया। इसके बाद सूरि कहीं और विहार कर गये। श्रीषेण राजा अपने राज्य और जैनधर्मका पालन बडे यत्नसे करने लगे। राजाके ही उपदेशसे उनकी अभिनन्दिता नामक रानीने खासकर वह धर्म अंगीकार कर लिया और दूसरी रानीने भी सुख सौभाग्य प्राप्त किया।

एक समयकी बात है, कि कौशाम्बीके राजा बलभूपने अपनी रानी श्रीमतीके गर्भसे उत्पन्न श्रीकान्ता नामक अपनी पुत्रीका विवाह श्रीषेण राजाके पुत्र इन्दुषेणके साथ करनेके विचारसे स्वयंवराके तौर पर वहाँ भेज दिया। उस समय

उस राज-कन्याको अत्यन्त रूपवती देख, इन्दुषेण और बिन्दुषेण नामक दोनों राजकुमार उससे व्याह करनेकी इच्छासे देवरमण नामक उद्यानमें जा; बख्तर पहन कर, परस्पर युद्ध करने लगे। बहुतोंने उन्हें रोका-थाका, पर वे युद्धसे पीछे न हटे। उस समय अल्प कषायवाले, निर्मल मनवाले, जिनेश्वर-की दृढभक्तिवाले तथा प्रिय वचन बोलनेवाले श्रीषेण राजा जब किसी तरह उन परस्पर शत्रुकी भाँति युद्ध करनेवाले राजकुमारोंको युद्धसे रोकनेमें समर्थ नहीं हुए, तब उन्होंने मन-ही-मन विचार किया,—"यह देखो, विषयकी लम्पटता, कर्मकी विचित्रता और मोहकी कर्कशता कैसी आश्चर्यजनक होती है! मेरे इतने बड़े बुद्धिमान् पुत्र भी किस प्रकार एक स्त्रीके लिये आपसमें युद्ध कर रहे हैं! इनकी यह दुष्टता देख, मुझे तो ऐसी लज्जा हो रही है, कि सभासदोंके सामने मुँह दिखानेका भी जी नहीं चाहता। मैं कैसे उन्हें अपना मुँह दिखाऊँगा? इसलिये अब तो मेरा मर जाना ही ठीक है। कहा भी है, कि प्राण दे देना अच्छा; पर मान गँवाना अच्छा नहीं। क्योंकि मृत्युसे तो क्षण भरका दुःख होता है; परन्तु मान-भंग होनेसे तो हर घड़ी दुःख होता रहता है।" ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही राजाने अपनी रानियों पर भी इस विचार-को प्रकट किया। इसके बाद राजाने पंचपरमेष्ठी मन्त्रका स्मरण करते हुए, दोनों स्त्रियोंके साथ विष-मिश्रित कमलको सूँघ कर प्राणत्याग कर दिया। उसी समय सत्यभामाने भी कपिलके डरके मारे उसी रीतिसे प्राणत्याग कर दिया। वे चारों जीव मरकर जम्बूद्वीपके महाविदेह क्षेत्रके अन्तर्गत उत्तर कुरुक्षेत्रमें जुड़ैले बालककी तरह उत्पन्न हुए। श्रीषेण और उनकी पहली स्त्री एक साथ पैदा हुए और दूसरी जुड़ैली बालिकाएँ सिंहनन्दिता तथा सत्यभामा हुईं।

इधर श्रीषेण राजाकी मृत्यु हो जानेके बाद एक चारण-मुनिने वहाँ आकर युद्ध करते हुए इन्दुषेण तथा बिन्दुषेणसे कहा,—"हे राजकुमारों! तुम दोनों ही बड़े कुलीन और सुन्दर हो; पर क्या यह निष्ठुर कार्य करते हुए तुम्हें लजा नहीं आती? तुम्हारी इस दुष्ट चेष्टाको देखकर ही तुम्हारे माता-पिता विष सूँघकर मर गये। अब तो तुम अपने माता-पिताके उपकारका बदला किसी तरह नहीं दे सकते। कहा है, कि—

अस्मिन् जगति महत्यपि, न किञ्चिदपि वस्तु वेधसा विहितम्।
अतिशयवत्सलतायाः, भवति यतो मातुरुपकारः ॥ १ ॥

'इस इतने बड़े संसारमें भी विधाताने ऐसी कोई वस्तु नहीं बना-यी, जिससे अत्यन्त वात्सल्यमयी माताका प्रत्युपकार किया जा सके।'

अतएव हे राजकुमारी ! तुम दोनों एक तुच्छ स्त्रीके लिये अपने परम उपकारी माता-पिताकी मृत्युके कारण बने, इसलिये तुम्हें बार-बार धिक्कार है ।"

मुनिकी यह बात सुन, उन दोनोंकी आँखें खुलीं और उन्होंने युद्धसे हाथ खींच, बड़े आनन्दसे उस श्रेष्ठ मुनिकी प्रशंसा करनी आरम्भ की । "तुम्हीं हमारे गुरु, पिता और बन्धु हो—तुमने हमको बड़ी भारी दुर्गतिसे बचाया" यह कहते हुए उन्होंने उस चारण-मुनिको प्रणाम किया और उस राजकन्याको छोड़कर दोनों अपने घर चले आये । यहाँ आकर उन्होंने अपने माता-पिताके मरण-कार्य सम्पन्न किये । इसके बाद अपने किसी सम्बन्धीको राजका भार सौंप, वे दोनों ही धर्मरुचि नामक गुरुके पास चले आये और अन्य चार हज़ार मनुष्योंके साथ प्रव्रज्या अंगीकार कर ली । तदनन्तर बहुत दिनों तक दीक्षाका पालन कर, विविध प्रकारसे तपस्या करते हुए अपने कर्मोंका क्षय कर, केवल-ज्ञान प्राप्त कर, वे मोक्षको प्राप्त हुए ।

इधर उत्तर-कुरुक्षेत्रके श्रीषेण आदि चारों जुड़ले तीन पल्योपम आयुष्यको पूर्ण कर, सौधर्म नामक देवलोकमें जा, तीन पल्योपम आयुष्यवाले देवता हुए ।



द्वितीय-प्रस्ताव

इस भरत क्षेत्रके वैताढ्य-पर्वतपर उत्तर श्रेणीके अलङ्कारके समान रथनूपुर चक्रवाल नामका नगर है। उसमें ज्वलनजटी नामक विद्याधर राजा राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम वायुवेगा था। उसीके गर्भसे उत्पन्न, अर्क (सूर्य) द्वारा स्वप्नमें सूचित किया हुआ, अर्ककीर्त्ति नामका एक पुत्र भी उस राजाके था। वह जब युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसे युवराजके पद्पर प्रतिष्ठित किया। इसके बाद उस राजा को चन्द्रमाकी रेखाके उत्तम स्वप्नसे सूचित एक पुत्री हुई, जिसका नाम स्वयंप्रभा रखा गया। क्रमशः वह बालिका बड़ी होने लगी।

एक समयकी बात है, कि उस नगरके उद्यानमें अभिनन्दन और जगतनन्दन नामक दो श्रेष्ठ विद्याधर मुनि आ पहुँचे। उन्हीं लोगोंके पास आकर स्वयंप्रभाने धर्मदेशना सुनी और शुद्ध समाचारी सहित श्राविका हो गई। इसके बाद वे दोनों मुनिश्रेष्ठ वहाँसे अन्यत्र विहार कर गये। एक दिन स्वयंप्रभाने किसी पर्व दिवसको पौषध व्रत ग्रहण किया। शुद्ध रीतिसे पौषध-व्रतका पालनकर पारणाके दिन, प्रातकाल ही गृहप्रतिमाका पूजनकर, उस बालिकाने पिताके पास जाकर उन्हें शेषा* अर्पित की। राजाने उसे सिरपर चढ़ाकर कन्याको अपनी गोद में बैठा लिया। उसका रूप और वयस देख राजा मनही-मन-विचार कर करने लगे,—"देखता हूँ कि मेरी यह कन्या विवाह करने योग्य होगई, तो फिर इसके योग्य कौनसा वर हो सकता है? कहा है कि—

* न्हवणजल।

कुल च शील च सनाथता च, विद्या च वित्त च वपुर्वयश्च ।

वरे गुणा सप्त विलोकनीया, ततः परं भाग्यवशा हि कन्या ॥

अर्थात्—कुल, शील, सनाथता, विद्या, धन, शरीर, वयस ये सात बातें वरमें देख लेनी चाहियें । यही सब देख-सुनकर कन्याका विवाह कर देना चाहिये । इसके बाद तो कन्याका जैसा भाग्य होगा, वैसा होगा ।*

इस प्रकार विचार कर राजाने अपनी कन्यासे कहा,—"बेटी ! अब जाकर तू पारणा करले ।" यह सुन, राजकुमारी अपने स्थानको चली गयी । इसके बाद राजाने अपने मन्त्रियोंको बुलवाकर अपने मनकी बात कह सुनायी । सब सुनकर मन्त्रीगण विचार करने लगे । सोच-विचारकर सबसे पहले सुश्रुत नामके मन्त्रीने कहा,—"हे स्वामी ! रत्नपुर नगरमें मयूरग्रीव राजाका पुत्र अश्वग्रीव नामक विद्याधरेन्द्र राजा है । वह भारतके तीन खण्डोंपर राज्य करता है । वही आपकी पुत्रीके योग्य वर है ।

बहुश्रुत नामक मन्त्रीने कहा,—"यह बात मुझे तो अच्छी नहीं लगती, क्योंकि अश्वग्रीव बूढ़ा है । इसलिये कोई दूसरा ही वर ढूँढ़ना चाहिये, जो कुल, शील और वय इत्यादिमें समान हो ।"

तदनन्तर सुमति नामक मन्त्रीने कहा,—"हे राजन् ! उत्तर श्रेणीमें प्रभङ्करा नामकी नगरी है । उसमें मेघरथ नामका राजा है । उसके मेघमालिनी नामकी स्त्री है । उसके विद्युत्प्रभ नामका पुत्र और ज्योतिर्माल्या नामकी पुत्री है । उस विद्युत्प्रभको तो अपनी पुत्रीका स्वामी बनाइये और ज्योतिर्माल्या आपके राजकुमार अर्ककीर्त्तिकी पत्नी होने योग्य है, इसलिये उसको उसके पितासे माँग लीजिये ।"

इसके बाद श्रुतसागर नामक मन्त्रीने कहा,—"इसी समय राजकुमारीका स्वयंवर करना चाहिये, उस समय जो देश विदेशके राजकुमार आयेंगे, उनमेंसे कोई न-कोई योग्य वर मिल ही जायेगा ।"

* यह देखना चाहिये कि उसके माँ-बाप, भाई-बन्धु आदि हैं या नहीं । यदि हों, तो वह सनाथ कहा जायेगा ।

द्वारा देखती है ; ब्राह्मण वेदोंके द्वारा देखते हैं और अन्य मनुष्य आँखोंसे देखते हैं।"

इसके बाद दूत भी वहाँ आ पहुँचा। राजाधिराजको तो मेरा सारा हाल पहलेही मालूम हो गया होगा, यही सोचकर उस दूतने उनसे सारी बातें सच-सच कह डालीं। इसके बाद बोला,—"हे महाराज़ ! यह तो उन बालकोंकी चपलता मात्र थी ; परन्तु प्रजापति राजाने तो आपकी आज्ञाका बाल बराबर भी उल्लंघन नहीं किया ; इस लिये आपको उनपर क्रोध नहीं करना चाहिये।" यह सुन, राजेन्द्रने मौन धारण कर लिया।

राजाके शालिके बहुतसे क्षेत्र थे ; परन्तु उनमें सिंहका उपद्रव भी बहुत हुआ करता था। इसीलिये प्रत्येक वर्ष कोई-न-कोई राजा उसकी आज्ञाके अनुसार वहाँ आकर उन क्षेत्रोंकी रक्षा किया करता था। इस वर्ष प्रजापति राजकी बारी न होनेपर भी अश्वग्रीव राजाने उसके पास दूत भेजकर उसीको क्षेत्र-रक्षाका भार दिया। यह सुन, प्रजापति राजा चिन्तामें पड़ गये और मन-ही-मन विचार करने लगे। इसी समय उस कठिन आज्ञाकी बात सुन, त्रिपृष्ठ और अचलने पिताके पास आकर कहा,—"हे स्वामिन् ! आप चिन्ता न करें। आपका यह काम हमलोग करेंगे। आप निश्चिन्त रहें।"

यह कह, वे दोनों बलवान् राजकुमार शालि-क्षेत्रमें जा पहुँचे। वहाँके रक्षकोंको उन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा,—"सब राजा लोग इन शालिक्षेत्रोंकी रखवाली करनेके लिये अपने सैनिकों और वाहनोंके साथ आते और चारों ओरसे उनका पहरा बैठा देते हैं, तब कहीं रक्षा हो पाती है। परन्तु तुम लोग तो बड़ेही विचित्र रक्षक मालूम पड़ते हो ; क्योंकि न तो तुम्हारे शरीर ही बख़्तरसे ढके हुए हैं, और न तुम अपने साथ सैन्य-परिवारही लाये हो।"

यह सुनतेही त्रिपृष्ठने कहा,—"भाइयो ! पहले तुम लोग हमें उस



ऐसा विचार कर वह सिंह आसमानमें उछला और क्रोधके साथ त्रिपृष्ठके मस्तक पर आ पड़ा। इतने में बड़ी फुर्तीके साथ त्रिपृष्ठने अपने दोनों हाथ उस सिंहके मुँहमें डाल, उसके दोनों होंठ दोनों हाथोंसे पकड़ कर, उस सिंहकी देहको पतले वस्त्र की तरह बीचसे फाड़डाला। (पृष्ठ २६)

सिंहको दिखला दो, जिसमें हम यह रखवालीकी बला सब राजाओंके सिरसे आज ही टाल दें।"

यह सुन, उन रखवालोंने गिरि-गुहामें पड़े हुए सिंहको उन्हें दिखला दिया। उसे देखकर त्रिपृष्ठ रथपर सवार हो, उस गुफाके द्वारके पास पहुँचा। रथकी घरघराहट सुनतेही सिंह जग पडा और अपने मुख-रूपी गुफाको खोले हुए गुफाके बाहर निकल आया। उस समय सिंहको पैदल चलते देख, त्रिपृष्ठ भी रथसे नीचे उतर आया और उसे बेहथियार देख, आप भी अपना हथियार नीचे डाल दिया। कुमारकी यह हरकत देखकर सिंहको बडा आश्चर्य हुआ। उसने अपने मनमें विचार किया,— "ओह! एक तो आश्चर्यकी बात यही है, कि यह राजपुत्र यहाँ अकेला ही आया है। दूसरी बात अचरजकी यह हुई, कि यह रथसे नीचे उतर पडा। तीसरे, यह भी कुछ कम आश्चर्यकी बात नहीं, कि इसने अपने हाथका खड्ग भी फेक दिया। अच्छा रहो, मैं इसे अपनी अवज्ञाका अभी मजा चखाता हूँ।" ऐसा विचार कर वह सिंह आसमानमें उछला और क्रोधके साथ त्रिपृष्ठके मस्तक पर आ पडा। इतनेमें बडी फुर्तीके साथ त्रिपृष्ठने अपने दोनों हाथ उस सिंहके मुँहमें डाल, उसके दोनो होंठ दोनों हाथोंसे पकड कर, उस सिंहकी देहको पतले वस्त्र की तरह बीचसे फाड़डाला—उसका शरीर दो टुकडे होकर भूमिपर गिर गया और वह इसी आनपर क्रोधके मारे काँपने लगा, कि मुझे एक सामान्य मनुष्यने मार डाला। यह देख, राजकुमारके सारथिने कहा,—"हे सिंह! यह राजकुमार नरसिंह है और तू पशुसिंह है। इसलिये जब सिंहने ही सिंहको मारा, तब तुम क्यों क्रोध कर रहे हो?" उसकी यह बात सुन, सिंह प्रसन्न हो गया और मरकर नरकको प्राप्त हुआ। इसके बाद प्रजापतिके उन पुत्रोंने उस सिंहका चमडा प्रतिवासुदेवके पास भेजकर विद्याधरकी जुबानी कहला भेजा, कि हे अश्वग्रीव महाराज! अब आप हमारी कृपासे बडी आनन्दके साथ इस शालिका भोजन कीजिये। अश्वग्रीवने उस चमड़ेको देख और उनकी कहलवायी हुई बात सुन कर

अपने मनमें विचार किया,—"जब यह इतना बलवान् है, तब तो मेरे साथ युद्ध भी कर सकता है।" ऐसा विचार कर वह मौन रह गया।

एक समयकी बात है, कि अश्वग्रीव राजाने राजकुमारी स्वयंप्रभाकी सुन्दरताका वृत्तान्त सुनकर ज्वलनजटीसे उसकी याचना की। यह सुन, ज्वलनजटीने दूतके मुँहसे उसे कुछ उत्तर कहला भेजा और उसे शांत कर दिया। इधर गुप्त रीतिसे अपनी कन्याको पोतनपुर ले जाकर उसने ज्योतिषीके कहे अनुसार राजकुमार त्रिपृष्ठके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। कुछ दिन बाद हरिश्मश्रु नामक मन्त्रीने किसीसे स्वयंप्रभाका विवाह हो जानेकी बात सुनकर अपने मालिक राजा अश्वग्रीवसे यह बात कह सुनायी। इसपर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने हुक्म दिया,—"मन्त्री तुम अभी त्रिपृष्ठ, अचल और मायावी ज्वलनजटीको बाँधकर मेरे पास ले आओ।" सचिवने अश्वग्रीवके हुक्मकी तामिल करनेके लिये उधरको दूत रवाना किया। उस दूतने पोतनपुर जाकर गर्विष्ठ वचनोंसे ज्वलनजटीसे कहा,—"अरे मूर्ख! तू मेरे स्वामीको अपनी कन्यारत्न दे डाल। क्या तू नहीं जानता, कि मेरे स्वामी सब प्रकारके रत्नोंके आधार हैं? कहा भी है, कि—

"मणिर्मेदिनी चन्दनं दिव्यहेति-र्वरं वामनेत्रा गजो वाजिराजः।
विनाभूभुजं भोगसम्पत्समर्थं, गृहे युज्यते नैव चान्यस्य पुंसः॥ १॥"

अर्थात्—"मणि, पृथ्वी, चन्दन, दिव्यशस्त्र, मनोहर स्त्री, उत्तम गज और श्रेष्ठ अश्व आदि उत्तम पदार्थ भोगकी सम्पत्तियोंसे भरे हुए राजाके सिवा और किसीके घरमें शोभा नहीं पाते॥"

यह कह, जब वह दूत चुप हो गया, तब ज्वलनजटीने कहा,—"हे दूत! मैं तो अपनी लड़कीका विवाह त्रिपृष्ठके साथ कर चुका। इसलिये अब तो वही उसका मालिक है। मेरा उसपरसे अधिकार जाता रहा।"

यह सुन, वह दूत त्रिपृष्ठके पास चला गया। वहाँ त्रिपृष्ठने उससे कहा,—"हे दूत! मैंने इस कन्याके साथ विवाह किया है। अब यदि

तुम्हारे स्वामी इसकी इच्छा करते हैं, तो मैं पूछता हूँ, कि क्या उन्हें अपना जीवन भारी मालूम पड़ रहा है? यदि ऐसी बात हो, तो जाओ, अपने स्वामीसे कह दो, कि यदि उनमें कुछ भी बल पराक्रम हो, तो तुरत यहाँ चले आयें।"

दूतने राजा अश्वग्रीवके पास पहुँच कर ठीक यही बातें ज्यों-की त्यों कह सुनायीं। सुनतेही क्रोधमें आकर उसने अपने विद्याधर-वीरोंको शत्रुका संहार करनेके लिये भेजा। स्वामीके भेजे हुए उन वीरोंने पोतनपुर पहुँचकर प्रभुकी प्रेरणाके अनुसार युद्ध करना आरम्भ किया, परन्तु त्रिपृष्ठने बात-की-बातमें उन सबको परास्त कर दिया। इसके बाद त्रिपृष्ठ विद्याधरोंकी सेना साथ लिये हुए अपने ससुरके नगरमें आ पहुँचा। अश्वग्रीव भी अपनी सारी सेना समेत वहीं आधमका। फिर तो दोनों मुख्य सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया। विद्याधरगण अपनी विद्याके बलसे पिशाच, राक्षस और सिंह आदिके स्वरूप धारण करने लगे। इससे त्रिपृष्ठकी सेना बहुत डरी और नष्ट सी हो गयी। इतनेमें त्रिपृष्ठकुमारने रथपर आरूढ़ हो, अपने खेचरोंको साथ लेकर युद्ध करना आरम्भ किया। पहले तो उसने शङ्ख बजाया, जिसकी ध्वनि सुनतेही उसकी सारी सेना सज्जित हो गयी और शत्रुकी सेना हारने लगी। यह देख, अश्वग्रीव भी अपने रथपर सवार हो, त्रिपृष्ठके सामने आकर युद्ध करने लगा। अश्वग्रीवने जिन-जिन दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग किया, उन सबको त्रिपृष्ठने बात की-बातमें उसी तरह काट डाला, जैसे सूर्य अन्धकारका नाशकर देता है। अब तो अश्वग्रीवने ऊपकर त्रिपृष्ठपर एक भयङ्कर चक्र चलाया। वह चक्र त्रिपृष्ठकी छातीसे आकर चिपक गया और अश्वग्रीवके पास न लौटकर वहीं पड़ा रहा। त्रिपृष्ठने शीघ्रही उस चक्रको अपने हाथमें लेकर अश्वग्रीवसे कहा,—"रे अश्वग्रीव! तू अभी मेरे सामने हाथ जोड़कर प्रणाम कर और घर जाकर सुखसे जीवन व्यतीत कर।" यह सुन, अश्वग्रीवने कहा,—"वैरीको प्रणाम करनेसे तो मर जाना कहीं अच्छा है।" यह सुन, त्रिपृष्ठने उसपर वह चक्र

छोड़ दिया, जिससे उसका सिर कटकर गिर पड़ा। वासुदेवके हाथों प्रतिवासुदेवका मरण होनाही इस संसारकी रीति है।

सुदर्शन नामका वह चक्र-रत्न अश्वग्रीवका मस्तक छेदन कर त्रिपृष्ठके पास लौट आया। उसी समय देवताओंने आकाशसे त्रिपृष्ठके मस्तक-पर फूलोंकी वर्षा की और कहा,—"यह त्रिपृष्ठ आजसे इस भरतक्षेत्रका वासुदेव कहलायेगा।" इसके बाद त्रिपृष्ठ वासुदेवने दक्षिण भारतके तीन खण्डोंको जीतकर उनमें अपनी हुक्मत चलायी और बायें हाथसे कोटि-शिला उत्पाटन कर छत्रकी तरह मस्तकपर धारण करके ही छोड़ा। इसके अनन्तर विद्याधरों और नरेन्द्रोंने उसे वासुदेव मानकर उसका पट्टाभिषेक किया। वासुदेवने ज्वलनजटीको विद्याधरोंका अधिपति बना दिया। त्रिपृष्ठकी आज्ञासे विद्युत्प्रभाकी बहन ज्योतिर्माला अर्क-कीर्त्ति कुमारको व्याही गयी। इसके बाद तीन खण्डोंके स्वामीके रूपमें त्रिपृष्ठने अपने नगरमें प्रवेश किया। उसके सोलह सहस्र रानियाँ हुई, जिनमें स्वयंप्रभा ही मुख्य पटरानी और राजाकी अत्यन्त प्यारी बनी रही।

इधर श्रीषेण राजाका जीव सौधर्म नामक देवलोकसे च्युत होकर अर्ककीर्त्ति राजाकी रानी ज्योतिर्मालाके गर्भरूपी सरोवरमें उत्पन्न हुआ। उस समय माताने स्वप्नमें अत्यन्त तेजस्वी सूर्यको देखा। समय पूरा होने पर रानीके पुत्र उत्पन्न हुआ। पिताने बड़ी धूमधामसे उत्सव मनाया और पुत्रका नाम अमिततेज रखा। वह क्रमसे बड़ा होने लगा। एक दिन अर्ककीर्त्तिके पिता ज्वलनजटीने अभिनन्दन नामक मुनिसे दीक्षा ले ली। इसके बाद सत्यभामाका जीव भी सौधर्म नामक देवलोकसे च्युत होकर उसी राजा अर्ककीर्त्तिकी रानी ज्योतिर्मालाकी कोखमें पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुआ। उस समय उसकी माताने स्वप्नमें ताराओंसे शोभित रात्रि देखी। क्रमसे काल पूरा होनेपर उसे पुत्री पैदा हुई। स्वप्नके ही अनुसार उसका नाम सुतारा रखा गया। धीरे-धीरे वह बालिका युवावस्थाको प्राप्त हुई। अभिनन्दिताका जीव स्वर्गसे च्युत

होकर त्रिपृष्ट वासुदेवकी रानी स्वयंप्रभाके उदरमें पुत्रके रूपमें आया। उस समय उसकी माताने स्वप्नमें लक्ष्मीदेवीका अभिषेक होता हुआ देखा। इसीलिये जब उसके पुत्र उत्पन्न हुआ तब उसका नाम 'श्रीविजय' रखा गया। इसके बाद त्रिपृष्ट वासुदेवको उसी रानी स्वयंप्रभाके गर्भसे 'विजयभद्र' नामका एक दूसरा पुत्र भी हुआ। सिंहनन्दिताका जीव स्वर्गसे च्युत होकर उसी राजा त्रिपृष्टकी रानी स्वयंप्रभाके गर्भसे पुत्री-रूपमें उत्पन्न हुआ। उस कन्याका नाम ज्योतिष्प्रभा रखा गया। वह भी क्रमश युवावस्थाको प्राप्त हुई।

त्रिपृष्टने ज्योतिष्प्रभाके लिये स्वयवर रचाया। दूत भेजकर राजाओंको निमन्त्रित किया गया। उसी समय अर्ककीर्त्ति राजाने वासुदेवके पास अपने प्रधान मन्त्रीको भेजा। उसने वासुदेवके पास आकर कहा, "हे देव। मेरे स्वामीने यह कहला भेजा है, कि यदि आपकी आज्ञा हो, तो उनकी पुत्री सुताराको भी इसी स्वयवरमें अपने लिये वर चुननेका अवकाश दिया जाये।" यह सुन, वासुदेवने कहा,—"बस, तुम जाकर उसे झटपट भेजही दो। मेरे और अर्ककीर्त्तिके बीच बिलकुल घरौआ है—हम दोनों एक दूसरेसे अलग नहीं हैं।"

इस प्रकार उसकी आज्ञा पाकर राजा अर्ककीर्त्ति अपनी कन्या और कुमार अमिततेजके साथ वहाँ आ पहुँचा। वासुदेवने उसकी बड़ी आवभगत की। तदनन्तर वासुदेवने एक अच्छा दिन देखकर स्वयंवरका मण्डप बनवाया। उसमें बहुतेरे मञ्च स्थापित किये गये। भिन्न भिन्न राजकुमारोंके नामसे अलग-अलग आसन रखवाये गये। इसके बाद सब राजा राजकुमार बुलवाये गये। वहाँ आकर सब अपनी-अपनी जगहपर बैठ गये। उस मण्डपमें विष्णु और बलभद्र भी मुख्य स्थान पर बैठ गये। सबके यथायोग्य आसन ग्रहण कर लेनेके बाद स्नानकर श्वेत वस्त्र पहने, श्वेत पुष्प और अंगराग धारण किये, सुन्दर पालकियों पर चढी हुई ज्योतिष्प्रभा और सुतारा नामक दोनों राज-कुमारियाँ स्वयंवर-मण्डपमें आयीं। पालकीसे नीचे उतर, सब राजे

राजकुमारोंको भली-भाँति देख-भालकर ज्योतिष्प्रभाने अमिततेजके गले में माला डाल दी। सुताराने भी श्रीविजयके गलेमें वरमाला पहिना दी। यह देख, सब भूमि और आकाशमें विचरण करनेवालोंने कहा,—"अहा! इन दोनोंही कन्याओंने बड़े उत्तम वर चुने।" तदनन्तर त्रिपृष्ठ और अर्ककीर्त्तिने आये हुए सब राजाओंका यथाशक्ति आदर-सत्कार कर उन्हें बड़े मानके साथ विदा किया और बड़ी धूमधामसे प्रीतिसहित अपनी-अपनी कन्याओंका विवाह करडाला। इसके बाद अर्ककीर्त्तिने अपने पुत्र और ज्योतिष्प्रभाको साथ ले, अपनी कन्या सुताराको वहीं छोड़, अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर सुखसे राज्य करने लगा। कुछ दिन बीते, अर्ककीर्त्ति राजाने वैराग्य ले लिया और अपने पुत्र अमिततेजको राज्यका भार अर्पणकर किसी मुनीश्वरसे दीक्षा लेली।

क्रमशः त्रिपृष्ठ वासुदेवको परलोक प्राप्त हो गया। उसके बाद एक दिन पोतनपुरके उद्यानमें श्रेयांस जिनेश्वरके शिष्य सुवर्णकलश नामक सूरि परिवार सहित आ पहुँचे। उनके आनेका समाचार पा, अचल बलदेव उनकी वन्दना करनेके लिये उद्यानमें आये। उसने आचार्यको प्रणामकर, गुरुसे मोहका नाश करनेवाली देशना श्रवण की। इसके बाद अचलने समय देखकर उनसे पूछा,—"हे भगवन्! गुणमें बड़ा और वयसमें छोटा मेरा भाई त्रिपृष्ठ मरकर किस गतिको प्राप्त हुआ है?" सूरिने कहा,—"तेरा भाई पञ्चेन्द्रियादिक जीवोंका वध करनेमें आसक्त रहता था, उसकी आत्मा कठोर थी, वह बड़े-बड़े आडम्बरोंमें तत्पर था, इसलिये वह मरकर सातवें नरकमें चला गया है।" यह सुनकर स्नेहके मारे आकुल हो, अचल बहुत विलाप करने लगा। उसने कहा,—"हे वीर! हे धीर! यह तेरी कैसी गति हुई?" गुरुने कहा,—"हे अचल! तू खेद मत कर। पूर्वमें ही जिनेश्वर कह चुके हैं, कि उसका जीव इस चौबीसीमें पिछला तीर्थङ्कर होगा।" यह सुनकर अचलने दूसरे पुत्रको युवराजका पद दे दिया और आप सूरीश्वरसे दीक्षा ले ली।

राजा श्रीविजय राज्यका पालन कर रहे थे। इसी बीच एक दिन

द्वारपालने सभामें आकर कहा,—"हे स्वामी। आपसे मिलनेके लिये कोई ज्योतिषी राजमहलके द्वारपर आया हुआ है। क्या उसे यहाँ ले आऊँ अथवा जानेको कह दूँ?" राजाने उसे सभामें ले आनेकी आज्ञा दे दी। उसने सभामें आतेही राजाको आशीर्वाद दिया और उचित आसन पर जा बैठा। राजाने पूछा,—"हे निमित्तज्ञ। तुम्हारे हाथमें पोथी है, उसे देखकर तुम जो कोई शुभाशुभ जानते हो, यह मुझे बतलाओ।" ज्योतिषीने कहा,—"महाराज! मैंने गणना करके जो कुछ मालूम किया है, उसे कहनेको तो समर्थ नहीं था, पर जब आपने आज्ञा दी है, तब कहता हूँ, कि आजके सातवें दिन पोतनपुरके स्वामीके सिरपर अवश्य ही बिजली गिरेगी।" यह सुनते ही सारी सभा वज्राहत सी दुःखित हो गयी। श्रीविजय राजाने उसी समय क्रोधसे तमतमाते हुए कहा,—"रे दुष्ट ज्योतिषी! यदि पोतनपुरके स्वामीके सिरपर बिजली गिरेगी, तो तेरे सिरपर क्या गिरेगा?" ज्योतिषीने कहा,—"राजन्! आप मेरे ऊपर क्यों क्रोध करते हैं? मैंने जो कुछ गिनती करके मालूम किया है, वह झूठा नहीं हो सकता। सच जानिये, जिस समय आपके सिरपर बिजली गिरेगी, उसी समय मेरे सिरपर वस्त्र, आभूषण और रत्नोंकी वृष्टि होगी।" राजाने फिर पूछा,—"यह निमित्त-शास्त्र तूने किससे सीखा है?" उसने कहा,—"राजन्! सुनिये। जिनसे बलदेवने दीक्षा ली थी, उन्हींसे मैंने भी दीक्षा ली थी। कुछ समय तक तो मैंने उसका पालन किया। उसी समय मैंने जो शास्त्राध्ययन किया था, उसीके प्रभावसे इस प्रकार आपसे कुछ कह सकता हूँ, सर्वज्ञके शासनके सिवा और किसी शास्त्रसे सत्यका ज्ञान नहीं होता। इसके बाद मैं विषयोंमें आसक्त होकर गृहस्थ हो गया। आज धनकी ही आशासे मैं आपके पास आया था।" यह सुन, सब राजकर्मचारी उसके निमित्त-ज्ञानको सच समझ कर अपने स्वामीकी रक्षाका उपाय सोचने लगे।

एक मन्त्रीने कहा,—"सात दिन तक हमारे स्वामी समुद्रमें जहाजके अन्दर रहें, तो ठीक हो।" एक दूसरे मन्त्रीने कहा,—"माना, कि

पानीमें विजली नहीं गिरती; पर यदि जहाज़पर गिरे,तो फिर क्या किया जायेगा ? इससे तो यही अच्छा होगा, कि स्वामीको वैताढ्य-पर्वतकी गुप्त गुफामें रखकर विजलीसे उनकी रक्षा की जाये।" तीसरेने कहा,—"यह उपाय अच्छा नहीं है, इससे तो उलटा और भी अधिक विपद् आनेका भय है। इसपर एक वहुत अच्छा दृष्टान्त है, वह सुनो—

विजयपुरमे रुद्रसोम नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम ज्वलनशिखा था। उनके शिखी नामका एक पुत्र भी था। एक वार उस नगरमें कोई माँसका लोभी राक्षस आ पहुंचा। वह लगातार वहुतसे मनुष्योंकी हत्या करने लगा। यह देख, उस नगरके राजाने अपने मंत्रियोंकी सलाहसे उस राक्षसके साथ यह नियम कर लिया, कि मैं तुम्हें सदा एक मनुष्य दिया करूँगा। राक्षसने इसे स्वीकार कर लिया। इसके वाद राजाने सव नगर-निवासियोंके नाम अलग-अलग पर्चोंपर लिखकर उनको मोड़-माड़कर गोलियाँ सीं वना लीं। इसके वाद प्रति दिन उन गोलियोंमें से एक-एक निकालकर वे जिसका नाम उस काग़ज़में लिखा देखते, उसको वुलवाकर राक्षसके हवाले कर देते। ऐसा करनेसे वहुतोंकी रक्षा हो जाती थी। इसी तरह वहुत दिन वीत गये। एक दिन उक्त ब्राह्मणके पुत्रका नाम निकल आया। उसके घर राजाकी वुलाहट ज्यों ही पहुँची, त्योंही उसकी माँ रोने-पीटने लगी। उसकी रुलाई सुन, पासहीके घरमें रहनेवाले भूतोंको दया आगयी और उन्होंने उस ब्राह्मणीसे आकर कहा,—"माता! तू खेद मत कर। यदि राजा तेरे पुत्रको उस राक्षसके पास भेज भी देगा, तो हमलोग उसे लौटा लायेंगे।" यह सुनकर, वह हर्षित हो गयी। राजाने जव उसके पुत्रको राक्षसके हवाले कर दिया, तव पहलेसे ही सधे हुए भूत उसे वहाँसे उड़ा लाये और उसकी माँके पास ले आये। उसकी माताने मृत्युके भयसे उसे एक पर्वतकी गुफामें वन्द कर उसका द्वार वन्द कर दिया। वहीं रातके समय उस लड़केको एक अजगर निगल गया।" इसलिये जव विजली गिरनेवाली है, तव तो गिर कर ही रहेगी,

उसे कोई रोक नहीं सकेगा। हाँ, उस उपद्रवको रोकनेके लिये तप इत्यादि धर्म कार्य करना चाहिये।"

यह सुन, चौथे मन्त्रीने कहा,—"इन मन्त्री महाशयने बहुत ही उत्तम उपाय बतलाया है, इसमें सन्देह नहीं, पर मेरे चित्तमें जो बात आती है, वह मैं भी कह सुनाता हूँ।" यह कह उसने राजाकी आज्ञा लेकर फिर कहा,—"इस ज्योतिषीने कहा है, कि पोतनपुरके स्वामीके मस्तक पर बिजली गिरेगी, यह नहीं कहा, कि राजा श्रीविजयके ऊपर गिरेगी, इस लिये मेरी राय तो यह है, कि इन सात दिनोंके लिये किसी और ही मनुष्यको यहाँका राजा बना दिया जाये और इतने दिन उसीकी हुकूमत जारी रहे।"

उस मन्त्रीकी यह बात सुन, उसकी बुद्धिकी प्रशंसा करता हुआ वह ज्योतिषी बोला,—"इस मन्त्रीने बहुतही ठीक कहा। तुमलोग ऐसाही करो। मैं भी यही कहनेके लिये यहाँ आया था। बस इन सात दिनों-तक श्रीविजय राजा जिनमन्दिरमें बैठे हुए तपमें लगे रहें, जिससे यह विपद् टल जाये।"

उसकी यह बात सुन, राजाने कहा,—"जिस किसीको राज्य दिया जायेगा, वह बेचारा तो जी सेही जायेगा, फिर ऐसा अधर्म क्यों किया जाये?" राजाकी यह बात सुन, सब मन्त्रियोंने एकत्र होकर विचार करके कहा,—"यक्षकी प्रतिमाको राज्याभिषेक देकर उसीका हुक्म चलाया जाये। यदि देवताके प्रभावसे यक्षकी प्रतिमा नहीं नष्ट हुई, तब तो अच्छा ही है, नहीं तो काष्ठकी प्रतिमा ही न जायेगी! वह फिर नयी हो जा सकती है।"

उनलोगोंकी यह राय सुन, श्रीविजय राजाने भी उनकी बात मान ली। इसके बाद राजा अपनी रानीके साथही श्रीजिनेश्वरके मन्दिरमें चले गये और पौषध व्रत ग्रहणकर तप-नियममें तत्पर रहते हुए, आसनमारे मुनियोंकी तरह पञ्चपरमेष्ठि नमस्कारके ध्यानमें मग्न हो गये, इधर मंत्रियोंने और सामन्तोंने मिलकर राजाके स्थानमें यक्षकी प्रतिमाको स्थापितकर,

उसीके समीप बैठने और उसीको राजा मानकर सेवा करने लगे। सातवें दिन एकाएक आसमानमें बादल घिर आये। बड़े ज़ोर ज़ोरसे बादल गरजने और पानी बरसने लगा। इसी समय बार-बार चमककर भयङ्कर बिजली उस यक्ष प्रतिमाके ऊपर आ गिरी, बातकी बातमें वह प्रतिमा नष्ट हो गयी ; पर राजाकी जान बच गयी। वे सकुशल रह गये : यह देखकर लोगोंको बड़ा अचम्भा हुआ। उपसर्ग शान्त होने पर ज्योतिषीके कहे अनुसार राजा श्रीविजय अपने महलमें आये। उस समय अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ हर्षके मारे उस ज्योतिषीको रत्न, अलङ्कार और वस्त्रादिक देकर सम्मानित करने लगीं। राजाने भी उसे बहुतसा धन दे, आदरके साथ उसकी विदाई की। नयी रत्नमयी यक्ष-प्रतिमा बनवाकर राजाने बड़ी धूमधामसे जिन प्रतिमाकी पूजा करवायी और अपने राज्य भरमें पुनर्जन्म महोत्सव करवाया।

एक दिन राजा श्रीविजय, रानी सुताराके साथ, ज्योतिर्वन नामक उद्यानमें क्रीड़ा करनेके निमित्त गये हुए थे। वहाँ पर्वतकी छाया युक्त शिलाओंपर स्वामीके साथ घूमती-फिरती और क्रीड़ा करती हुई मनोहर अङ्गोंवाली रानी सुताराने एक सुनहले रङ्गके मृगको देखकर अपने स्वामीसे कहा,—"प्राणनाथ ! यह मृग तुम मुझे लाकर दो।" यह सुन प्रेम के कारण मोहमें पड़े हुए राजा उसे पकड़ने दौड़े। वह मृग उन्हें देख, उछलता कूदता हुआ भाग गया। इसी समय राजाकी प्रिया सुताराको कुर्कटजातिके सर्पने डँस दिया। अतएव वह बड़े दुःख भरे स्वरमें चिल्ला उठी,—"नाथ ! जल्दी आओ।" उसकी पुकार सुनतेही राजा तत्काल पीछे लौट आये और अपनी पत्नीको विषकी पीड़ासे छटपटाते देखा। उन्होंने रानीको बचानेके लिये तरह-तरहके तन्त्र-मन्त्र किये;पर कोई काम न आया और रानीने राजाके देखते-देखते आँखें बन्द करलीं,उसका मुँह काला पड़ गया और वह बेहोश हो गयी। यह देख राजाको भी मूर्छा आगई और वे पृथ्वी पर गिर पड़े। बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे जब उन्हें होश हुआ, तब वे इस प्रकार विलाप करने लगे,—"हे देवी समान



इसी समय राजाकी प्रिया धनारको कुर्कटजातिके सर्पने डँस लिया। अतएव वह बड़े दुःख भरे स्वरमें चिल्ला उठी,—हे नाथ! जल्दी आओ। (पृष्ठ २८)

रूपवती। हे गुणवती! हे सुतरा! हे प्राणवल्लभा! तुम कहाँ हो?" इसी तरह बहुत रो चुकने पर राजा मरनेको तैयार हो गये। उनके नौकरों-ने उनका यह हाल देख, राजमहलमें आकर लोगोंसे यह समाचार कह सुनाया। यह सुनकर उनकी माता स्वयप्रभा और भाई विजयभद्रको बड़ा दुःख हुआ। इसी समय आकाश मार्गमें आकर किसी पुरुषने कहा,—"हे देवी स्वयप्रभा! तुम विषाद न करो—मेरी बात सुनो रथनूपुर नगरके स्वामी अमितेजके द्वारा सम्मानित संभिन्नश्रोत नामका एक उत्तम ज्योतिषी है। वही मेरा पिता है, मैं उसीका पुत्र हूँ, मेरा नाम दीपशिख है। हम दोनों पिता पुत्र ज्योतिर्वनमें क्रीडा करने गये हुए थे। वहाँ हमने उस नगरके आगे बहुत दूर अमरचञ्चापुरीके स्वामी अशनिघोष राजाके द्वारा हरी जाती हुई और शरण-विहीन तुम्हारी रानी सुताराको देखकर उस आकाशचारी राजासे कहा,—"रे पापी दुष्ट! तू हमारे स्वामीकी बहूको कहाँ लिये जारहा है?" यह सुन, सुताराने हमसे कहा,—"इस समय तुम्हारी कोई चेष्टा काम न करेगी, इसलिये तुम पोतनपुरके उद्यान-में जाकर वैतालिनी विद्याके द्वारा मोहमें पड़े हुए श्रीविजय राजाको होशमें लाओ, क्योंकि वे सुतारा बनी हुई एक वैतालिनीके पीछे जान देनेको तैयार हो रहे हैं।" सुताराकी यह बात सुन, हमने उद्यानमें आ कर राजाको चैन कराया है, जिससे तुरतही दुष्ट वैतालिनी विद्याका नाश हो गया। इसके बाद देवीका हाल सुनकर राजा श्रीविजय उनकी प्राप्तिका उपाय कर रहे हैं। उन्हींकी आज्ञासे मैं आप लोगोंको यह खबर देने आया हूँ। यह सुन स्वयप्रभा देवीने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। इसके बाद वह फिर राजा श्रीविजयके पास चला आया और वहाँसे संभिन्नश्रोत तथा दीपशिखा राजाको रथनूपुर नगरमें ले गये। वहाँ राजा अमिततेजने श्रीविजय राजाकी बड़ी आवभगत की और उनके आनेका कारण पूछा। यह सुन उन्होंने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुन अमिततेजको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने मरीचि नामक एक दूतको समझा-बुझाकर उसी समय

अशनिघोषके पास भेजा। उस दूतने अमरचञ्चा नगरीमें राजा अशनि-घोषसे जाकर कहा,—"हे राजन्! आप मेरे स्वामीकी वहन और राजा श्रीविजयकी पत्नी सुताराको विना समझे बूझे यहाँ ले आये हैं; इसलिये उन्हें चुपचाप धीरेसे लौटा दीजिये, नहीं तो अनर्थ होजायेगा।" यह सुन अशनिघोषने कहा,—"अरे दूत! क्या मैं इस स्त्रीको लौटानेकेही लिये ले आया हूँ? जो कोई इसे मेरे यहाँसे हटा ले जाना चाहता है, वह मेरी तल-वारके घाट उतरना चाहता है, ऐसाही समझो।" यह कह, अशनिघोषने दूतको गर्दनिया देकर निकलवा दिया। दूतने अपने नगरमें आकर अपने स्वामीको कुल कैफ़ियत कह सुनायी।

इसके बाद राजा अमिततेजने राजा श्रीविजयको दो विद्याएं सि-खलायीं—पहली पर-शस्त्र-निवारिणी और दूसरी बन्ध-मोक्ष-कारिणी अर्थात् बन्धनसे छुड़ाने वाली। श्रीविजयने सात दिनों तक इन दोनों विद्याओंकी विधिपूर्वक साधना की। तदन्तर विद्यामें सिद्धि लाभकर, श्रीविजय शत्रुको जीतने चले। उनके साथ-साथ अमिततेजके रश्मि वेग आदि सैंकड़ों पुत्र तथा और भी बहुतसे वीर जो अन्यान्य विद्याओंके बलसे बलवान तथा भुजबलसे शक्तिमान थे, चल पड़े। सब लोगोंके साथ राजा श्रीविजय अशनिघोषके नगरके पास आ पहुँचे।

इसके बाद राजा अमिततेज अपने सहस्ररश्मि नामक जेठे बेटेके साथ दूसरोंकी विद्याका नाश करनेवाली महाज्वाला नामक विद्याकी साधना करनेके लिये हिमवान पर्वत पर चले गये। वहाँ एक महीने का उपवास लेकर वे विद्याकी साधना करने बैठे।

इधर अशनिघोषने राजा श्रीविजयके सैन्य-सहित आनेका समाचार सुन, अपने पुत्रोंको सैन्य लेकर लड़नेको भेजा। दोनों सैन्योंमें भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। दोनोंमें से कोई सेना पीछे हटती हुई नहीं मालूम पड़ती थी। इसी प्रकार एक महीने तक लड़ते रहनेके बाद अमिततेजके पुत्रों-ने अशनिघोषके बलवान् पुत्रोंको पराजित कर दिया। यह देख, अशनि-घोष स्वयं मैदानमें उतर आया। इस बार अशनिघोषने अमिततेजके

पराक्रमी पुत्रोंको हरा दिया। तब अपनी सेनाको तितर-बितर होते देख, राजा श्रीविजय स्वयं संग्राम करनेको आगे आये। क्रोधसे भरे हुए राजा श्रीविजयने खड्गके प्रहारसे अशनिघोषके दो टुकड़े कर डाले। मायावी अशनिघोषने झटपट अपने दो रूप कर डाले। श्रीविजयने फिर इन दोनोंको काट डाला। तब चार अशनिघोष हो गये। इसी प्रकार बार-बार काटे जाते हुए अशनिघोषने अपनी मायाके प्रभावसे अपने सौ रूप बना डाले। ज्यों-ज्यों राजा श्रीविजय उसपर प्रहार करते जाते, त्यों-त्यों उसके रूपोंकी संख्या बढ़ती जाती थी। इससे राजा श्रीविजय उसका वध करते-करते उकता गये। इतनेमें राजा अमिततेज अपनी साधनाकी सिद्धि करके वहाँ आ पहुँचे। अब राजा अमिततेजने अपनी विद्याके प्रभावसे अशनिघोषकी मायाका नाश कर दिया, जिससे वह घबराकर भाग चला। उसे भागते देख, अमिततेजने अपनी विद्याको आज्ञा दी, कि उस पापी अशनिघोषको दूरसे ही पकड़ लाओ। इस प्रकार आज्ञा पाकर वह विद्यादेवी उसके पीछे पीछे चली। इधर सीम-नग * नामक पर्वतपर श्रीऋषभदेवके मन्दिरके पासही बलदेवमुनिको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, इसलिये देवगण उनका वन्दन तथा ज्ञानका उत्सव करनेके लिये आये हुए थे। यह देख, अशनिघोष उन केवलीकी शरणमें आ गिरा। इसीलिये विद्यादेवी वहाँतक आकर पीछे फिरी और अमिततेजके पास आकर सारा हाल सुनाने लगी। उसके मुँहसे सब कुछ सुनकर अमिततेजने अपने मरीचि नामक दूतको बुलाकर कहा,—"हे दूत! तुम अभी अमरचञ्चा नगरीमें जाकर वहाँसे सुतारादेवीको लिये हुए मेरे पास सीमनग पर्वत पर चले आओ।" यह कह, राजा अमिततेज, श्रीविजय तथा अन्यान्य सैन्य-सामन्तोंको साथ लिये हुए, बाजे-गाजेके साथ, सीमनग—पर्वतपर बलभद्रमुनिकी वन्दना करने आये। सबसे पहले जिनेश्वरके मन्दिरमें आकर जिनेन्द्रकी स्तुति करनेके बाद श्रीविजय और अमिततेज बलदेवके पास आये। इधर मरीचि

* क्षेत्रकी मर्यादा बाँधने वाला पर्वत।

दूत भी सुताराको लिये हुये वहाँ आ पहुँचा और अखण्डित शीलवती सुताराको राजा श्रीविजयको सौंप दिया। इसी समय अशनिघोषने दोनों राजाओंसे क्षमा माँगी। उन लोगोंने भी उसका यह भाव देख, अच्छा आदर-मान किया। इस प्रकार उनके दिलोंके भेद—ईर्ष्याद्वेष—मिट गये। उसी समय केवलीने भी यह धर्मदेशना सुनायी, कि—

"रागद्वेषवशीभूता, जीवोऽनर्थपरम्पराम् ।
कृत्वा निरर्थकं जन्म, गमयन्ति यथा तथा ॥ १ ॥"

अर्थात्—प्राणी रागद्वेषके वशमें पड़कर अनर्थों की लड़ीसी लगा देता है, जिससे उसका साराजीवन योंही नष्ट हो जाता है ।

रागद्वेषमें पड़े हुए प्राणी मोक्षपद पानेको समर्थ नहीं होते। हे मनुष्यो! तुमलोग इन्हें अपना परम बलवान् शत्रु समझकर इनसे नेह मत लगाओ।"

इस प्रकारकी धर्मदेशना सुनकर बहुतसे मनुष्योंको ज्ञान उत्पन्न हो गया। इनमेंसे कितनोंहीने दीक्षा ग्रहण कर ली और कितनोंहीने श्रावकधर्म अङ्गीकार कर लिया। उसी समय अशनिघोषने केवलीसे पूछा,—"हे प्रभु! विना किसी प्रकारके रागद्वेषकेही, मैं उस सुतारा नामक स्त्रीको हरण कर क्यों अपने घर लाया?" केवलीने कहा,—"इस अमित-तेजका जीव पूर्व भवमें रत्नपुर नामक ग्राममें श्रीषेण नामक राजा था। उस समय तुम कपिल नामके ब्राह्मण थे। उस समय उसके सत्यभामा नामकी एक प्यारी स्त्री थी। अनुक्रमसे भव-भ्रमण करती हुई उस जन्म-की सत्यभामाही इस जन्ममें सुतारा हुई है और जो कपिल था, वही भव-भ्रमण करता हुआ, तपस्वीके कुलमें जन्म पाकर अज्ञानतप करके अशनिघोष बन गया है। हे राजन्! पूर्वभवके सम्बन्धसे ही ले जाने-वालेने विना किसी प्रयोजनके इस बेचारीको हर लिया। पूर्वभवमें इसे ही तुमसे कम राग था, इसलिये तुम भी इसपर कम अनुराग रखते हो।"

इस प्रकार अपने अपने पूर्व जन्मोंका वृत्तान्त श्रवण कर अमिततेज

और श्रीविजयको बड़ा हर्ष हुआ और ये एकबारगी कह उठे,—“ अहा ! ज्ञानके आगे कुछ भी असाध्य नहीं है”

तदनन्तर केवलीको नमस्कार कर अमिततेजने कहा,—“ हे प्रभो ! यह तो कहिये, मैं भव्य हूँ या अभव्य ?” केवलीने कहा,—“ हे राजन् ! आजसे नवें भवमें तुम इस भरतक्षेत्रमें पाँचवें चक्रवर्त्ती होगे और उस भवमें शान्तिनाथ नामसे सोलहवें तीर्थङ्कर कहलाओगे। उस समय इस श्रीविजयका जीव तुम्हारा पुत्र होगा और पहला गणधर बनेगा।” यह सुन, उन दोनोंहीने उनहीं केवलीसे समकित सहित श्रावक-धर्म ग्रहण किया। अशनिघोष राजाने चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो जानेके कारण, अपने पुत्रको राज्यका भार दे, उन्हीं केवलीसे दीक्षा ग्रहण कर ली। श्रीविजय राजाकी माता स्वयंप्रभा देवीने भी बहुतसी स्त्रियोंके साथ-साथ उन्हीं बलभद्र मुनिसे चारित्र ग्रहण किया। इसके बाद श्रीविजय और अमिततेज अपने-अपने परिवारवर्गोंके साथ मुनिको प्रणाम कर अपने-अपने घर चले गये और देवपूजा, गुरुसेवा तथा जप-तप आदि धर्म कार्यके द्वारा श्रावकधर्मका प्रकाश करते हुए समय बिताना आरम्भ किया।

कुछ दिन बाद पुण्यात्मा राजा अमिततेजने पाँच रंगके रत्नों द्वारा एक जिनमन्दिर तैयार करवाया। उसमें जिनेश्वरकी सुन्दर प्रतिमा-की स्थापना कर, उसने उसके पासही एक सुन्दर पौषधशाला बनवायी। किसी समय उसी पौषधशालामें विद्याधरोंकी सभाके बीचमें बैठकर वह राजा धर्मोपदेश कर रहा था। उसी समय दो चारण-मुनि शाश्वत जिनेश्वरकी प्रतिमाकी वन्दना करते हुए चले जा रहे थे। वे उस जैनमन्दिरको देखकर वन्दना करनेके लिये वहाँ ठहर गये। उन्हें देख, राजा अमिततेजने उन्हें श्रेष्ठ आसनोंपर बैठाकर भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना की। एक मुनिने कहा,—“ हे राजा ! यद्यपि तुम अपने धर्मकी बातें जान गये हो, तथापि धर्मकी बातें कहना हमारा ही काम है।” इस-लिये सुनो,—“हे राजा! मनुष्यभव आदि सामग्रियोंको पाकर संसारका

"जं चिय विहिणा लिहियं, तं चिय परिणमइ सयललोयस्स।
इय जाणेउण धीरा, विहुरे वि न कायरा हुंति ॥ १ ॥"

अर्थात्—"विधाताने जो कुछ भाग्यमें लिख रखा है, वही सबको प्राप्त होता है। यही समझ कर धीर पुरुष विपद् पड़ने पर कायर नहीं होते।"

इस गाथाको पढ़कर धनदने अपने मनमें विचार किया,—"यह गाथा तो लाख मुहरोंको भी सस्ती है। फिर जब एक हज़ार मुहरों पर ही बेच रहा है, तो बड़ा सस्ता माल है, लेही लेना चाहिये।" यह विचार कर, उसने उस जुआरीको मुँहमाँगा मूल्य देकर वह गाथा ले ली और बार-बार उसे पढ़ने लगा। इतनेमें उसका पिता सेठ रत्नसार आ पहुँचा। उसने पूछा,—"बेटा! आज तुमने कौनसा व्यापार किया?" यह सुन पासकी दूकानोंके व्यापारी हँसते हुए बोले,—"सेठजी! आज तो आपके बेटेने बहुत बड़ा व्यापार कर डाला है। उसने हज़ार मुहरें देकर एक गाथा मोल ली है। सचमुच यदि तुम्हारे पुत्रकी व्यापारमें ऐसी ही कुशलता बनी रही, तो यह घरकी पूँजीको बहुत बढ़ा देगा।"

लोगोंकी यह तानेज़नी सुनकर सेठ जल गया और क्रोधके साथ अपने पुत्रसे कहने लगा,—"रे दुष्ट! तू अभी यहाँसे चला जा। मैं तेरा मुँह देखना भी नहीं चाहता। सूना घर अच्छा, पर चोरोंसे भरा हुआ घर अच्छा नहीं, तू पुत्र ही है तो क्या? मुझे तेरी यह कार-रवाई बिलकुल ही नापसन्द है।"

इस प्रकारके अपमानयुक्त वचन सुनकर धनद उसी क्षण दूकानसे नीचे उतर आया और मन-ही-मन उस गाथाका अर्थ स्मरण करता हुआ चल पड़ा। नगरके बाहर हो, वह सायंकालके समय उत्तर दिशामें एक वनमें आ पहुँचा। वहाँ निर्मल जलसे भरा हुआ एक बड़ा भारी सरोवर देख, उसीमें स्नान कर, वह पास ही एक वटवृक्षके नीचे पत्तों-की सेज बिछाकर सो रहा। इसी समय दैवसंयोगसे एक धनुष-



इसी समय एक भारण्ड पक्षी वहाँ आया और उसे मरा हुआ समझकर उठाये हुए समुद्रके बीचोबीच एक द्वीपमें ले आया।

(पृष्ठ ४७)

धारी शिकारी जल पीनेके लिये आये हुए जानवरोंका शिकार करने-की इच्छासे वहाँ आ पहुँचा।

उसी समय सेठके बेटेने नींदमें ही पड़े पड़े एकबार करवट बदली, जिससे सूखे पत्ते खड़खड़ा उठे। वह शब्द सुन, शिकारीने विचार किया,—मालूम होता है, कोई जंगली जानवर जा रहा है।" ऐसा विचार कर उसने उसी शब्दकी सीधपर बाण छोड़ दिया। वह बाण उस सोये हुए सेठके पुत्रके पैरमें आ लगा। निशाना ठीक बैठा, यह जानकर वह शिकारी उसे देखनेके लिये उसके पास आया। इतनेमें बाणकी चोट खाये हुए धनदने तकलीफके मारे उक्त गाथाका उच्चारण किया। यह सुनकर उस शिकारीने सोचा,—"आह! यह तो मालूम होता है, कि मैंने बिना समझे बूझे किसी थके-माँदे सोये हुए मुसाफिरको ही मार डाला।" इस तरहकी बात मनमें आते ही उसने उसके पास आकर पूछा,—"हे भाई! मैंने अनजानतेमें तुम्हें बाणसे विद्ध कर डाला है। कहो तो तुम्हें कहाँ चोट आयी? ऐसा कहकर उसने उसके पैरमेंसे बाण खींचकर निकाल लिया और उसके ज़ख्मपर मरहमपट्टी करने लगा। सेठके बेटेने उसे मरहमपट्टी करनेसे रोकते हुए कहा,—"भाई! तुम अपने घर चले जाओ।" इस प्रकार सेठके पुत्रसे आज्ञा पाकर वह शिकारी अपने घर चला गया। इधर सेठके बेटेके पैरसे खून जारी हो गया। बहुतेरा खून निकलनेके कारण वह प्रातःकाल होते-होते बेहोश हो गया। इसी समय एक भारण्ड पक्षी वहाँ आया और उसे मरा हुआ समझकर उठाये हुए समुद्रके बीचोबीच एक द्वीपमें ले आया। उसने ज्योंही उसे खानेका विचार किया, त्योंही उसमें जीवनका कुछ चिह्न देख उसे वहीं छोड़कर उड़ गया। इसके बाद उस द्वीपकी ठंढी ठंढी हवाके लगनेसे धनदको चेतना हो आयी। वह खड़ा होकर चारों ओर देखने लगा। देखते देखते उसे एक निर्जन·दिखलाई दिया। उसने मनमें विचार किया,—"मेरा नगर कितनी दूर है? यह भयंकर वनही किस स्थान पर है?

मेरे इस सोच-विचारका ही क्या नतीजा है? दैवकी चिन्ता ही बलवान् है।" इसी प्रकार सोचता-विचारता हुआ वह-जंगलमें क्षुधा तृष्णासे व्याकुल होकर फल और जलकी तलाशमें घूमने लगा। घूमते-घूमते उसने एक स्थानपर एक टूटे-फूटे घरोंवाला सून-सान नगर देखा। यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी उजड़े हुए नगरमें भ्रमण करते हुए उसने एक कुआँ देखा। बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे उस कुएँसे जल निकालकर उसने अपनी प्यास बुझायी तथा केलेके फल आदि खाकर अपनी प्राणरक्षा की। इसके बाद वह भयके मारे उस नगरसे दूर जा रहा। इतनेमें सूर्य अस्त हो गया। अन्धकारसे सारा संसार ढक गया। उस समय धनदने एक पर्वतके समीप जा वहीं आग सुलगाकर ठंढ दूर कीया और किसी तरह रात बिता दी। सवेरा होतेही उसने देखा, कि उसने रातको जहाँ आग सुलगायी थी, वहाँकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी है। यह देखते ही उसने अपने मनमें विचार किया,—"मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि यह स्थान अवश्यही सुवर्णद्वीप है। कारण, अग्निका संयोग होतेही यहाँकी भूमि सुवर्णमयी हो गयी है।" ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होतेही उसने हर्षित होकर विचार किया,—"मैं यहीं रहकर सोना निकालूँ, तो ठीक हो।" इसके अनन्तर उसने पर्वतकी मिट्टी काट-काटकर अपने नामकी ईंटें बनायीं और उन्हें आगकी भट्टीमें पकाया। वे सब ईंटें सोनेकी हो गयीं। एक दिन घूमते घामते उसने पर्वतके निकुञ्जमें रत्नोंका ढेर पड़ा देखा। वह उन रत्नोंको अपने सोनेके ढेरके पास ले आया। धीरे-धीरे उसके पास बहुतसी सोनेकी ईंटों और रत्नोंका समूह हो गया। केले आदि फल खाकर ही वह जीवन निर्वाह करता चला जाता था।

एक समयकी बात है, कि सुदत्त नामका एक व्यापारी जहाज़में बैठकर वहाँ आया। उसके जहाज़में पहलेसे लेकर रखा हुआ जल और ईंधन चुक गया था, इसलिये उसने अपने आदमियोंको जल तथा ईंधन लेनेके लिये उसी द्वीपकी ओर भेजा। उन आदमियोंने वहाँ धनदको

देखकर पूछा,—"भाई तुम कौन हो?" धनदने कहा,—"मैं तो वनचर हूँ।" वे सब बोले,—"तुम हमें कोई जलाशय बतलाओ।" इसपर धनदने उन्हें कुआँ दिखला दिया। सार्थवाहके उन सेवकोंने कुएँके पास सोनेकी ईंटों और रत्नोंका ढेर पड़ा देखकर धनदसे पूछा,—"हे वनचर! यह सब किसका है?" उसने कहा,—"मेरा है। इस धनको जो कोई स्थल मार्गमें ले जायगा, उसको मैं इसका चौथाई हिस्सा दे डालूँगा।" इस तरहकी बातें हो ही रही थीं, कि उक्त व्यापारी भी वहीं आ पहुँचा और धनदको बड़ी विनयके साथ प्रणामकर, आलिङ्गन करते हुए, उससे कुशल-प्रश्न करने लगा। इसके बाद उसने धनदसे इस बातकी प्रतिज्ञा की, कि वह इस सारे धन-रत्नको उसके घर पहुँचा देगा। इसके बाद सार्थवाहने (व्यापारीने) अपने नौकरोंसे उन सुनहरी ईंटों और रत्नोंको अपने जहाज पर लदवाना शुरू किया। धनद भी गिन-गिनकर ईंटों और रत्नोंको उनके हाथमें देने लगा। वह अपार सम्पत्ति देख, सार्थवाहके मनमें पाप जगा और उसने अपने नौकरोंको एकान्तमें बुलाकर कहा,—"इस आदमीको उसी कुएँमें ढकेल दो।" इस प्रकार अपने स्वामीकी आज्ञा पाकर उन आदमियोंने धनदसे कहा,—"हे परोपकारी महात्मा! हम लोग कुएँसे पानी खींचनेका हाल नहीं जानते। तुम्हें पहलेसे ही इसका अभ्यास है। इसलिये कृपाकर हमें थोड़ासा जल कुएँसे निकाल दो।" यह सुनकर धनद दयाके मारे कुएँसे पानी खींचने लगा। इतनेमें मौक़ा पाकर उन दुष्टोंने उसे कुएँमें ढकेल दिया। दैवयोगसे वह पत्तोंसे भरे हुए उस कुएँकी मेखला परही गिरा, पानीमें नहीं गिरने पाया। सौभाग्यसे उसके ज़रा भी चोट नहीं आयी।

अब तो धनद उसी गाथाको याद करता हुआ कुएँके इर्द गिर्द नज़र दौड़ाने लगा। अकस्मात एक स्थानपर गुफासी नजर आयी। कौतुहलके मारे वह उसीके अन्दर घुस पड़ा। अन्दर जाकर पैरसे मालूम करता हुआ वह उसी मार्गसे बहुत नीचे उतरता चला गया। आगे जाकर उसे समतल मार्ग मिला। उसी मार्गसे आश्चर्यके साथ जाते-जाते

उसे कुछ दूर पर एक देवमन्दिर दिखाई दिया। वह उसके अन्दर चला गया। देवमन्दिरके भीतर उसे गरुड़-वाहिनी, चक्रायुध-धारिणी, महिमामयी चक्रेश्वरी देवी दिखलायी पड़ीं। उन्हें देखकर वह दोनों हाथ जोड़े भक्तिके साथ अपनी विचक्षण वाणीमें इसप्रकार देवीकी स्तुति करने लगा,—"हे श्रीऋषभ स्वामीकी शासन देवी! भयङ्कर कष्टोंको हरने वाली! अनेक भक्तोंको समस्त सम्पत्ति प्रदान करनेवाली! तुम्हारी जय हो। आज इस दुःखमें मुझे तुम्हारे दर्शन हुए। अब तुम्हीं मुझे अपने चरणोंमें शरण दो।" उसके इन भक्तिपूर्ण वचनोंको सुनकर देवीने प्रसन्न होकर कहा,—"हे वत्स! आगे चलकर तेरा सब प्रकारसे भला ही होगा। अच्छा, तू इस समय मुझसे कुछ माँग।" यह सुन, धनदने कहा,—"हे देवी! तुम्हारे दर्शनोंसे ही मुझे सब कुछ मिल गया। अब मैं क्या माँगूँ।" उसके ऐसा कहने पर सन्तुष्ट होकर देवीने उसके हाथमें बड़े ही प्रभाव-शाली पाँच रत्न दिये और उनका प्रभाव इस प्रकार बतलाया,—"देख, इसमें से एक रत्न तो सौभाग्यका दाता है, दूसरा लक्ष्मी देनेवाला है, तीसरा रोग-हारक है, चौथा विषका प्रभाव नष्ट करनेवाला है और पाँचवाँ सब कष्टोंका निवारण करने वाला है। इस प्रकार उन रत्नोंका प्रभाव बतलाकर, उनकी अलग-अलग पहचान कराकर देवी अन्तर्द्धान हो गयीं। धनद उन रत्नोंके गुण चित्तमें धारण कर आगे बढ़ा। थोड़ी दूर जाते-न-जाते उसे एक स्थानपर व्रण (घाव) अच्छा करनेवाली संरोहिणी नामकी औषधि मिली। उसे भी उसने अपने पास रख लिया। इसके बाद उसने अपनी जंघा चीरकर उसीमें उन पाँचों रत्नोंको रख दिया और उसी संरोहिणी औषधिके द्वारा उस व्रणको अच्छा कर लिया। वहाँसे आगे बढ़ने पर, उसे एक पातालनगर दिखाई दिया। उसने उस नगरमें प्रवेशकर देखा, कि उसमें खाने-पीनेके सामानोंसे भरे हुए घरों और दूकानोंकी श्रेणी तो मौजूद हैं; पर कहीं कोई आदमी नहीं नज़र आता। आगे चलकर उसने क़िला, फाटक और खिड़कियोंसे सुशोभित एक बड़ा भारी राजमहल देखा। उसके अन्दर प्रवेशकर जब वह उसके

सातवें खण्ड पर पहुँचा, तब वहाँ एक बालिकाको देख, उसे बड़ा विस्मय हुआ। इतने में वह बालिका उससे पूछ बैठी,—"हे सत्पुरुष! तुम यहाँ कहाँसे आ रहे हो? हे भद्र! सुनो—यहाँ तुम्हारे प्राणों पर संकट आनेकी सम्भावना है, इसलिये यदि तुम जीना चाहते हो, तो झटपट यहाँसे कहीं अन्यत्र चले जाओ।" यह सुन, धनदने कहा,—"भद्रे! तुम खेद न करो। मुझे अपना ब्योरेवार हाल कह सुनाओ। यह नगर सुनसान क्यों है और तुम कौन हो, यह बतलाओ।"

यह सुन, धनदके रूप और धैर्यको देख, आश्चर्यमें पड़ी हुई वह बालिका बोली,—"हे सुन्दर! यदि तुम्हारी यह जाननेकी बड़ीही अभिलाषा है, तो सुनो—

"इसी भरतक्षेत्रमें श्रीतिलक नामका एक नगर है। उसमें महेन्द्रराज नामक राजा राज्य करते थे। वही मेरे पिता थे। एक बार उनके राज्यके समीपवर्ती शत्रुराजाओंने उनपर चढ़ाई की और उन्हें हरा डाला। इसी समय एक वैतालने आकर स्नेहके साथ राजासे कहा,—"हे राजा! तुम मेरे पूर्व जन्मके मित्र हो, इसलिये तुम मेरे योग्य कोई काम बतलाओ। कहो, मैं तुम्हारी कौनसी भलाई करूँ? यह सुन राजाने कहा,—"हे मित्र! तुम मेरी सहायता करो, जिससे मैं अपने शत्रुओंको हरा सकूँ।" यह सुन वैतालने कहा,—"मैं तुम्हारे शत्रुओंको मार गिरानेमें असमर्थ हूँ; क्योंकि मुझसे भी अधिक बलवान वैतालगण उनके मददगार हैं, पर हाँ, मैं और तरहसे तुम्हारी मदद कर सकता हूँ।" यह कह, वह वैताल उस नगरके सब लोगोंके साथ मेरे पिता और उनके परिवारको यहाँ ले आया। उसीने इस पाताल नगरकी रचना की। उसने एक कुएँके अन्दरसे इस नगरमें आने-जानेका मार्ग बनाया। उस कुएँकी रक्षाके लिये उसने बाहरके हिस्सेमें एक दूसरा नगर भी बसाया। इसके बाद जहाजोंमें भर-भरकर यहाँ सामान पहुँचने लगे। इस तरह सब लोग सुखसे रहने लगे। कुछ दिन इसी प्रकार बीत जानेके बाद, एक राक्षस कुएँकी राहसे यहाँ आ पहुँचा। वह दुष्ट माँसका लोभी था। वह

क्रमशः इस नगरके निवासियोंको खाने लगा। कुछ ही दिनोंमें उसने इस नगरके सब मनुष्योंका सफ़ाया कर दिया। इसके बाद वह बाहरवाले नगरके लोगोंको चट करने लगा। इसलिये वे लोग जहाज़ पर चढ़-चढ़कर भागने लगे। इस तरह उस दुष्ट राक्षसने दोनों नगर उजाड़ डाले। हे साहसिक! उसने एक मात्र मुझको ही विवाह करनेकी इच्छासे छोड़ रखा है। उसने मुझसे आजसे सात दिन पहले कहा था,—"भद्रे! मैं बड़ाही भयङ्कर राक्षस हूँ। मैं मनुष्यके माँसके लोभसे ही यहाँ आया था और तुम देखही रही हो, कि मैंने समस्त पुरजनोंका नाश कर डाला है। सिर्फ एकही कारण ऐसा है, जिससे मैंने तुम्हें जीता छोड़ दिया है।" उसकी यह बात सुनकर मैंने पूछा,—"वह कारण क्या है?" वह बोला,—"आजके सातवें दिन बड़ाही अच्छा शुभ-ग्रह युक्त लग्न है। उसी दिन मैं तुम्हारे साथ विवाह कर तुम्हें अपनी पत्नी बनाऊँगा।" हे भद्रे! आजही वह सातवाँ दिन है और उस राक्षसके आनेका समय भी हो गया है। जब तक वह यहाँ आये, तब तक तुम यहाँसे टल जावो।" यह सुन, धनदने कहा,—"हे मुग्धे! तुम तनिक भी भय मत करो। वह दुष्ट मेरे हाथों मारा जायेगा।" बालिका बोली,—"यदि ऐसी बात है, तो लो, मैं तुम्हें उसके मारनेका ठीक समय बतलाये देती हूँ। जिस समय वह विद्याका पूजन करने बैठे, उसी समय तुम उसे मार डालो। उस समय वह न बोलचाल करता है, न उठकर खड़ा होता है। उसी अवसरमें तुम मेरे पिताके इस खड्गका उपयोग करना।"

वे दोनों इस प्रकार बातें करही रहे थे, कि वह राक्षस हाथमें एक मनुष्यकी लाश लिये हुए आया। वहाँ धनदको बैठा देखकर उसने हँस कर कहा,—"अहा! आज तो बड़े अचरजकी बात देखनेमें आ रही है। मेरा भक्ष्य आपसे आप मेरे घर आ पहुँचा है।" इस प्रकार अवज्ञा पूर्ण वचन कहकर उसने लाशको नीचे रख दिया और विद्याका पूजन करने लगा। इसी समय धनदने खड्ग खींचकर कहा,—"ठहर जा, पापी! आज मैं तेरा सफाया ही किये देता हूँ।" उसकी यह बात सुनकर भी वह राक्षस

अवज्ञाके साथ हँसता रहा। वह पूजा पर बैठाही रहा और धनदने खड्गका ऐसा वार किया, कि वह यमराजके घर जा पहुँचा। इसके बाद उसी शुभ समयमें उनकी लायी हुई सामग्रियोंका उपयोग करते हुए धनदने उस तिलकसुन्दरी नामक बालिकासे विवाह कर लिया। उसके साथ रहकर भोग-विलास करता हुआ, वह कुछ दिनों तक वहीं रहा।

इसके बाद वह स्त्री, रत्न, सुवर्ण तथा उत्तमोत्तम वस्त्र इत्यादि अच्छे-अच्छे पदार्थोंको साथ लिये हुए उसी कुएँमें आ पहुँचा। इसके बाद पीछे लौटकर उसने और भी अपनी पसन्दकी चीज़ें ले लीं और भक्तिपूर्वक आकर चक्रेश्वरी देवीको प्रणाम कर उस कुएँकी मेखला पर आ पहुँचा। इतनेमें उस द्वीपके पास एक जहाज आया। उस जहाजके आदमी उसी कुएँसे जल लेने आये। उन्होंने कुएँमें रस्सी डाली। धनदने उस रस्सीको पकड़कर कहा,—"भाइयो! मैं कुएँमें गिर पड़ा हूँ, कृपाकर मुझे बाहर खींच लो।" यह सुनकर उन आदमियोंने यह बात अपने स्वामी देवदत्त नामक सार्थवाहसे कही। वह भी कौतूहलके मारे वहाँ आ पहुँचा। इसके बाद उसने उस रस्सीमें एक छोटीसी खटोली बाँधकर लटकायी। उसी पर चढ़कर धनद कुएँसे बाहर निकला। उसका वह सुन्दर रूप और उत्तम वस्त्राभूषण देख, विस्मित होकर सार्थवाहने पूछा,— "भद्र! तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? और इस कुएँमें कैसे गिर पड़े, इसका हाल बताओ।" धनदने कहा,—"हे सार्थवाह! मेरी स्त्री भी इसी कुएँमें गिर पड़ी है, उसे भी बाहर निकालना चाहिये। साथ ही मेरे रत्नालङ्कार आदि भी इसी कुएँमें पड़े हुए हैं। पहले इन सबको बाहर निकलवाइये, पीछे मैं अपना सारा हाल आपसे कहूँगा।

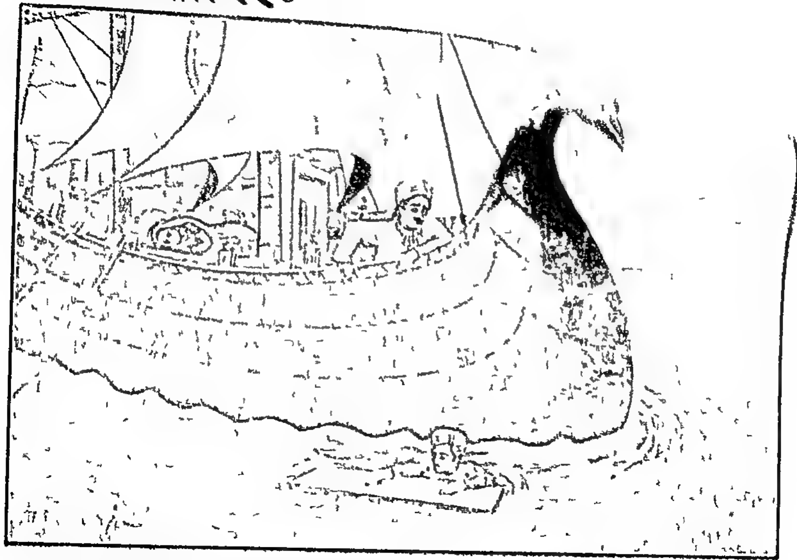
यह सुन उस सार्थपतिने कहा,—"हे भद्र! तुम खुशीसे अपनी स्त्री और समस्त वस्तुओंको बाहर निकाल लो।" धनदने वैसाही किया तिलकसुन्दरीको देख, सार्थवाह हक्का बक्का ।
सार्थवाहने जब धनदसे उसकी रामकहानी

सार्थपति! मैं भरतक्षेत्रका रहनेवाला हूँ। जातिका वणिक हूँ। मैं धन-उपार्जन करनेके लिये, अपनी प्रियतमाके साथ जहाज़ पर सवार हो, कटाह-द्वीपकी ओर चला जा रहा था। दैवयोगसे मेरा जहाज़ समुद्रमें टूट गया और मैं स्त्री सहित यहीं आ निकला। प्यासके मारे व्याकुल होकर मेरी स्त्री जलकी तलाशमें घूमती-घामती इसी कुएँके पास आयी और झाँककर पानी देखते-देखते कुएँमें गिर पड़ी। मैं भी उसके स्नेहके मारे उसके पीछे-पीछे कूद पड़ा; पर भाग्यसे हम दोनों कुएँकी मेखला पर ही रहे, पानीमें नहीं गिरे। इस कुएँमें रहने वाली जल देवीने प्रसन्न होकर मुझे बहुतसे रत्नालङ्कार आदि दिये और यह कहा, कि कुछ दिन बाद यहाँ एक जहाज़ आयेगा। तुम उसीपर बैठकर सुखसे अपने घर चले जाना। भाई सार्थवाह! यही तो मेरी रामकहानी है। अब तुम कुछ अपनी कथा सुनाओ, जिससे परस्पर प्रीति बढ़े।"

यह सुन, देवदत्तने कहा,—"हे भद्र! मैं भी भरतक्षेत्रका ही रहने वाला हूँ। मैं भी कटाह-द्वीपसे लौटा हुआ अपने घर जा रहा हूँ। तुम खुशीसे मेरे साथ चलो, हम लोग एक साथ चले जायेंगे, तुम अपनी प्रिया और समस्त वस्तुओंको मेरे जहाज़ पर चढ़ा दो।"

उसकी यह बात सुन, धनदने कहा,—"अच्छी बात है। ऐसा ही करो। भाई सार्थेश! यदि मैं अपने घर पहुँच गया तो इन रत्नोंमेंसे छठा हिस्सा तुम्हें दे डालूँगा।" यह सुन, सार्थवाहने कहा,—"भाई! यह असार धन तो कोई चीज़ नहीं है, तुम्हारी यह भक्ति ही सब कुछ है।"

इसके बाद सार्थवाहने उसकी कुल चीज़ें अपने जहाज़ पर लदवा दीं, जहाज़ आगे बढ़ा। रास्तेमें उस दुष्टात्मा सार्थवाहका चित्त स्त्री और धन देखकर डावाँडोल हो गया और वह धनदको बुराई करनेको उतारू हो गया। एक दिन रातके समय धनद शौच जानेके लिये मञ्च पर बैठा था, उस समय सब लोग सो रहे थे। इसी समय सार्थवाहने चुपचाप उसके पास आकर उसे मञ्च परसे समुद्रमें ढकेल दिया। कुछ दूर आगे बढ़ने पर सार्थवाहने शोर मचाना शुरू किया। हाय्यो! मेरे प्राणप्रिय



इसी समय सार्थवाहने चुप-चाप उसके पास आकर उस मञ्च पर से समुद्र में ढकेल दिया। (पृष्ठ ५४)

मित्र धनद शौच करनेके लिये मञ्चपर जाकर बैठे हुए थे, वे अभी तक लौट कर नहीं आये। कहीं वे समुद्रमें तो नहीं गिर पड़े?" ऐसा कहकर उसने लोगोंको दिखलानेके लिये अपने आदमियोंसे चारों तरफ़ खोज करवायी; पर कहीं धनदका पता नहीं लगा। तब वह मधुर वचनोंसे उसकी प्रियाको ढाँढस बँधाने लगा। एक दिन उसने तिलकसुन्दरीसे कहा,—"भद्रे! दैवयोगसे तुम्हारे पतिकी मृत्यु होगई, इसलिये अब तुम मेरी पत्नी बन जाओ।" यह सुनतेही उस चतुर स्त्रीने विचार किया,—"अवश्यही इसी दुष्टने मेरे रूप पर मोहित होकर मेरे पतिको मरवा डाला है। हो सकता है, कि यह मेरे ऊपर ज़ोर ज़बरदस्ती करके मेरा शील-भङ्ग करे, इसलिये इसे कुछ-न-कुछ इसे जवाब दे देना ही ठीक है। कालमें विलम्ब होनेसे सब मङ्गलही होगा। कहा भी है, कि—

> क्षणेन लभ्यते यामो, यामेन लभ्यते दिनम्।
> दिनेन लभ्यते कालः कालः कालो भविष्यति॥ १॥

अर्थात्—'एक क्षणका समय मिल जानेसे पहर भरका समय मिल जाता है। एक पहरकी मुहलत मिलनेसे सारा दिन मिल जाता है। एक दिवसका समय मिल जाये, तो फिर बहुतसा समय मिल जाता है और उसका परिणाम दुष्टोंके लिये काल रूपही हो जाता है।"

ऐसा विचार कर, उसने सार्थवाहसे कहा,—"हे सार्थपति! तुम मुझे अपने नगरमें ले चलो। वहाँके राजाकी आज्ञा लेकर मैं तुम्हारी स्त्री बन जाऊँगी। यह सुन, उसने सानन्द उसकी बात मान ली और मनमें विचार किया,— "मैं अपने नगरमें पहुँचकर राजाको धनादिसे सन्तुष्ट कर अपना मनोवांछित पूरा कर लूँगा।"

इधर जब उस दुष्टने धनदको समुद्रमें गिरा दिया, तब उसे दैवयोगसे तत्काल ही एक पहलेके टूटे हुए जहाजका तख्ता हाथ लग गया। उसी तख़्तेको बड़ी मजबूतीसे अपनी छातीसे लगाये हुए, वह तरङ्गोंमें बहता और उछलता हुआ पाँच दिन बाद अपने नगरके समीप आ पहुँचा। इससे उसके मनमें बड़ा आनन्द हुआ और उसने सिर ऊपर

उठा कर अपने नगरको देखना आरम्भ किया। इतनेमें एक बड़ी भारी मछली तख्तेके साथही उसको निगल गयी। उस समय नरकके समान उस मछलीके पेटमें पड़ा हुआ धनद सोचने लगा,— "हे जीव ! यह सब तुम्हारे नसीबका खेल है। इसलिये तुम और न कुछ करो, केवल उसी गाथाको याद किया करो।" इस प्रकार विचार करनेके बाद उसने आपत्ति निवारण करनेवाली मणिका स्मरण किया। उसके प्रभावसे मछुएने उसी क्षण उस मछलीको पकड़ लिया। इसके बाद मछुओंने उसे एक जगह किनारे पर ले जाकर उसका पेट फाड़ डाला। पेट फटते ही मछुओंने उसके अन्दर एक पुरुषको देख, मनमें बड़ा आश्चर्य माना। तदनन्तर उसे बाहर निकाल, पानीसे नहला कर, स्वस्थ कर, उन लोगोंने उस नगरके राजाको यह सारा हाल कह सुनाया। राजाको भी यह कहानी सुनकर बड़ा अचम्भा हुआ और उन्होंने उसी समय धनदको अपने पास बुलाकर पूछा,— "हे भद्र ! यह अचम्भा क्योंकर हुआ ? तुम कौन हो ? इस मत्स्यके उदरमें तुम कैसे चले गये? यह सब सच-सच कह सुनाओ; क्योंकि मुझे इस बातका बड़ा भारी आश्चर्य हो रहा है।"

धनदने कहा"—महाराज ! मैं जातिका बनियाँ हूँ। जहाज़ टूट जानेपर मैं उसके एक तख्तेके सहारे किनारे आ लगा। इतनेमें एक मछली मुझे निगल गयी। मछुओंने उसे पकड़ कर उसी क्षण उसका पेट फाड़ डाला और मुझे उसके अन्दर देख, विस्मित हो आपके पास ले आये। यही बात है।"

इसके बाद राजाने उसे सोनेके पानीसे नहलवा- कर शुद्ध बनाया और उसकी सुन्दरताके कारण उसे अपने पास रख लिया। उसी दिन उन्होंने उसका नाम मत्स्योदर रखा, जो वास्तवमें यथार्थ ही था, उसीकी प्रार्थनाके अनुसार राजाने उसे अपना पानखवास बनाया। उसने बिना अपना असल हाल किसीसे कहे, वहाँ बहुतसा समय बिता दिया।

एक दिन धनदका अनिष्ट करनेवाला सुदत्त नामका व्यापारी,



इसके बाद मछुओंने उसे एक जगह किनारे पर ले जाकर उसका पेट फाड़ डाला। पेट फटते ही मछुओंने उसके अन्दर एक पुरुषको देख, मनमें बड़ा आश्चर्य माना (पृष्ठ ५६)



हवाके फेरसे अपना जहाज लिये हुए वहीं आ पहुँचा और द्वारपालके द्वारा राजाके पास खबर भिजवा कर भेंट लिये हुए उनके पास आया और प्रणाम कर बैठ गया। राजाने मीठे वचनोंसे उस वणिक्‌के साथ बातें कीं और उसका कुशल मङ्गल पूछा। बादमें राजाने अपने पान-ख़वासको उस बनियेको पान देनेका हुक्म दिया। धनद जब उसे पान देने आया, तब झट सार्थवाहको पहचान गया। सुदत्तको भी धनदकी सूरत देखतेही बड़ा अचम्भा हुआ। उसने अपने मनमें विचार किया,—"उस दिन मैंने जिसकी सोनेकी ईंटे और रत्नादि लेकर उस शून्य द्वीपके कुएँमें गिरवा दिया था, यह वही तो मालूम पड़ता है। पर वह यहाँ कैसे आ पहुँचा?" इस तरह मन-ही-मन विस्मय करता हुआ, वह राजाको प्रणाम कर ज्योंहीं उठा, त्योंहीं राजाने उस पर प्रसन्न हो उसका आधा कर माफ कर दिया। उसने तत्काल कहा,—"यह आपकी मेरे ऊपर अपार कृपा है।" यह कह, वह अपने स्थानपर चला गया।

सुदत्तने उसी नगरमें रहनेवाले एक आदमीको बुलाकर पूछा,—"भाई यह जो राजाका पान खवास है, वह बाप दादोंके वक्तसे ही इस पद पर है, या नया ही रखा गया है?"

यह सुन, उस मनुष्यने उसका यथार्थ वृत्तान्त कह सुनाया, जिसे सुनकर सुदत्तको अपनी पहचानका निश्चय हो गया। इन्हीं दिनोंमें एक बार उस नगरका गीतरति नामक चण्डाल गवैया अपने परिवार वालोंके साथ सुदत्तके यहाँ आया और गाने-बजाने लगा। उसकी गीत कलासे वह सार्थवाह बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ और उसे इनाम दे, संतुष्ट कर उसे एकान्तमें ले जाकर उससे कहा,—"हे गायक! यदि तू मेरा एक काम कर दे, तो मैं तुझे खूब धन दूँगा।" उसने कहा,—"हे सार्थपति! जो कोई काम हो, झटपट कह डालिये, मैं सब कुछ कर सकता हूँ। जब राजा ही मेरे वशमें हैं, तब मेरे लिये क्या मुश्किल है?"

सार्थवाहने कहा,— "तू किसी दिन एकान्तमें राजासे जाकर कह दे, कि यह मत्स्योदर तो मेरा भाई है। यह सुन, उसने झटपट सार्थवाहकी बात स्वीकार कर ली। इस पर प्रसन्न होकर सार्थवाहने उस चण्डालको चार जोड़ी सोनेकी ईंटें लाकर दे दीं। उन्हें घर ले जाकर वह चण्डाल गायक सभामें बैठे हुए राजाके पास आकर गाना सुनाने लगा। उसके सङ्गीतसे प्रसन्न होकर राजाने पानख़वासको हुक्म दिया, कि इस उत्तम गायकको शीघ्रही पान खिलाओ। इस प्रकार राजाका हुक्म पाकर ज्योंही धनद उसे पान देने गया, त्योंही वह गीतरति नामक दुष्ट गायक धनदके गलेसे चिपट गया, और बोला,—"भाई! आज कितने दिन बाद मैंने तुमको देखा!" यह कह, वह अतिशय विलाप करने लगा। यह देख, राजाने उससे पूछा,—"मत्स्योदर! यह गायक क्या कह रहा है?" इस पर मन-ही-मन उपाय चिन्तमाकर धनदने कहा,—"महाराज! यह जो कुछ कह रहा है, वह सब ठीक है।" राजाने पूछा,—"क्योंकर ठीक है, बताओ।" इसके उत्तरमें धनदने राजाको एक मन गढ़न्त कथा कह सुनायी। उसने कहा,—"महाराज! पहले इस नगरमें मेरे पिता, जो चण्डाल थे और गीत कलामें बड़े ही निपुण थे, वे स्वामीके परम कृपापात्र थे। उनके दो स्त्रियाँ थीं। उनके हमी दोनों पुत्र थे। मेरी माताको पिता कम प्यार करते थे, इसलिये मैं भी उनका वैसा प्यारा नहीं था। इसकी माँ उनकी बड़ी प्यारी-दुलारी थी, इसलिये यह भी उनका बड़ा लाड़ला था। मेरे पिताने भविष्यत्‌का विचार कर मेरी जंघामें पाँच रत्न छिपाकर रख दिये, और जाँघके जख्मको झट मरहम पट्टी देकर अच्छा कर दिया। इसके बाद मेरे पिताने मुझसे कहा,—'हे वत्स! यदि कदाचित् तुम्हारे बुरे दिन आयें, तो इन रत्नोंको निकालकर इन्हींसे अपना काम चलाना" यही कहकर उन्होंने मुझे खुश कर दिया। तदनन्तर यह उनका अत्यन्त प्यारा था, इसलिये पिताने इसके सारे शरीरमें रत्न भर दिये।" यह कह, धनदने राजाके मनमें विश्वास उत्पन्न करनेके इरादेसे अपनी

जंघा विदीर्ण कर अपने छिपाये हुये पाँचों रत्नोंको निकाल कर राजाको दिखला दिया। उन महा मूल्यवान रत्नोंको देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसी समय अपने सिपाहियोंसे कहा,—"तुम लोग इस गीतरतिका भी शरीर काट कर रत्नोंको निकाल कर मुझे दिखलाओ।" यह सुनते ही गीतरतिके देवता कूच कर गये और उसने डरके मारे कहा,—"हे स्वामिन्! न तो यह मेरा भाई है, न मैं इसे पहचानता हूँ, न मेरे शरीरमें रत्न भरे हुए हैं।" यह ऐसा कही रहा था, कि राजाके सेवक उसकी देहसे रत्न निकालनेके लिये तैयार हो गये। अबके यह फिर कहने लगा,—"महाराज! मैंने जो कुछ कहा हैं, वह सरासर झूठ है। सुदत्त सार्थवाहने मुझे सोनेकी ईंटें देकर मुझसे यह पाप-कर्म करवाया है। हे देव! यदि आपको मेरी बातका विश्वास न हो, तो मेरे घरसे उन ईंटोंको मँगवा कर दिलजमई कर लें।" यह सुन राजा मत्स्योदरका मुँह देखने लगे। यह देख, उसने कहा,—"प्रभो! इसकी यह बात ही ठीक है।" राजाने कहा, "मत्स्योदर! अब तुम मुझे सब सच्चा हाल कह सुनाओ।" मत्स्योदरने कहा,—"हे नरेश्वर! उस वणिक्के जहाजमें मेरी आठसौ जोड़ी सोनेकी ईंटें और पन्द्रह हजार निर्मल रत्न हैं। उन ईंटोंके अन्दर मेरे नामका चिह्न भी अङ्कित है।" यह कह उसने राजासे अपना नाम आदि बतलाते हुए अपना बहुत कुछ वृत्तान्त कह डाला। यह सुन, राजाने उस चाण्डालके घरसे वे चारों जोड़ी सोनेकी ईंटें मँगवायीं और उनको तुड़वाकर धनदका नाम भी खुदा हुआ देख लिया। तत्काल राजाने उस वणिक् और चण्डालका वध करनेका हुक्म दे डाला पर कृपालु मत्स्योदरने उसी समय उन दोनोंकी प्राणभिक्षा माँग ली। इसके बाद राजाने सोनेके जलसे उसे फिर स्नान करवा कर पवित्र करवाया और उस वणिक् तथा चाण्डालके पास उसका जो कुछ धनरत्न था, वह सब मँगवाकर धनदको दे दिया। वणिक् तथा चाण्डालको उचित शिक्षा मिली और धनद वह भारी लक्ष्मी पाकर धनद (कुबेर के समान हो गया)।

एक बार राजाने एकान्तमें धनदसे पूछा,— "हे मत्स्योदर ! तुम अपना सारा वृत्तान्त मुझसे सच-सच कह डालो ।" उसने भी राजा से अपना सारा कच्चा चिट्ठा इस प्रकार कह सुनाया, —"मैं इसी नगर के रईस सेठ रत्नसारका पुत्र हूँ । मैंने एक हज़ार सोनेकी मुहरें देकर एक गाथा मोल ली थी, इसीलिये मेरे पिताने मुझे घरसे निकाल दिया और मैं देशान्तरमें चला गया ।" इसी प्रकार उसने अपनी और-और बातें भी राजाको बतलायीं । तदनन्तर कहा, कि—"स्वामी ! अभी आप मेरा भण्डाफोड़ न करें ; क्योंकि मेरी स्त्री और धनादिका हरण करनेवाला देवदत्त नामका सार्थवाह भी, सम्भव है, किसी दिन यहाँ आ पहुँचे, तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायेगा ।" यह कह उसने राजा-को प्रसन्न कर लिया और बड़े आनन्दसे उनके पास ही रहने लगा ।

भाग्य-योगसे एक दिन देवदत्त सार्थवाह भी वहाँ आ पहुँचा । वह भी भेंट लिये, तिलकसुन्दरीके साथ राजसभामें आया । राजाने भी उसे पहचान कर उसका भली भाँति आदर-सत्कार किया । मत्स्योदर भी उस सार्थवाह और अपनी स्त्रीको पहचान कर, उनका अभिप्राय जाननेकी इच्छासे एक ओर छिप रहा । उसी समय राजाने बड़े आदर-से सार्थवाहसे पूछा,— "हे भद्र ! तुम कहाँसे आ रहे हो ? और तुम्हारे साथ यह बालिका कौन है ?" उसने कहा,— "हे राजन् ! मैं कटाहद्वीपसे चला आरहा हूँ । मैंने इस बालिकाको एक द्वीपमें अकेली पड़ी पाया है । मैंने इसे श्रेष्ठ वस्त्र, अलङ्कार, आहार और ताम्बूल आदिसे परम सन्तुष्ट कर रखा है । अब यदि आपकी आज्ञा हो जाये, तो मैं इसे अपनी पत्नी बना लूँ ।" यह सुन, राजाने उस बालिकासे पूछा,—"बालिके ! तुम्हें यह वर पसन्द है या नहीं ? कहीं यह तुम्हारे ऊपर बलात्कार तो नहीं करना चाहता ?" यह सुन, वह बोली,— "इस पापीका तो मैं नाम भी लेना नहीं चाहती; क्योंकि इसने मेरे गुणरूपी रत्नोंकी निधिके समान स्वामीको समुद्रमें डाल दिया है । इस दुरात्माने मुझसे मिलनेकी कितनी इच्छा की, मेरी

कितनी प्रार्थना की, तब मैंने अपने शीलकी रक्षा करनेके विचारसे इसे यह उत्तर दिया, कि यदि राजाकी आज्ञा होगी, तो मैं तुम्हारी स्त्री हो जाऊँगी। इस तरह इसे धोखेमें रखकर मैंने इतने दिनों तक अपनी शीलकी रक्षा की। अब मैं अपने पतिसे वियोग हो जानेके कारण अग्निमें प्रवेश करना चाहती हूँ।" यह सुन, राजाने कहा,—'भद्रे! तुम मरनेका विचार छोड दो, मैं तुम्हें तुम्हारे स्वामीसे मिला दूँगा।" वह बोली,— "महाराज! आपको मेरे साथ हँसी नहीं करनी चाहिये। मेरे स्वामीको तो इस सार्थवाहने समुद्रमें फेंक दिया। अब वे कहाँसे मिलेंगे?" इसके बाद राजाने ताम्बूल देनेके लिये धनदको बुलवाकर सुन्दरीसे कहा,- "सुन्दरी! लो, अपनी आखों अपने स्वामीको देख लो।" यह सुन, तिलकसुन्दरीने धनदकी ओर देखा और उसका यहाँ आना एकदम असम्भव समझ कर मन ही-मन बड़ा आश्चर्य माना इतनेमें धनदने कहा,— "हे स्वामी! इसका स्वामी वही है, जो न जाने कहाँसे अकस्मात् इसके महलमें आ पहुँचा और जिसे इसीने राक्षसका विनाश करनेके लिये खड्ग दिया था। फिर उसी खड्गसे उस राक्षसको मारकर उसने स्नेहपूर्वक इसके साथ विवाह किया था।" इस प्रकार जब धनदने आदिसे अन्त तककी कुल बातें कह डालीं, तब वह बडी प्रसन्न हुई और राजाकी आज्ञासे मत्स्योदरकी पत्नी बनकर रहने लगी। पीछे राजाने सार्थवाहको कत्ल करनेका हुकम दिया। परन्तु दयालुताके कारण धनदने उसको भी छुडवा दिया। इसके बाद उस सार्थवाहने धनदके जो सब अलङ्कारादिक मनोहर वस्तुएँ ले ली थीं, वह राजाको दिखला दीं। राजाने वह सब चीजें धनदको दिलवा दीं।

इसके कुछ दिन बाद राजाकी आज्ञा लेकर धनद अपने साथ बहुतसे आदमी लिये हुए अपने पिताके घर आया। [illegible] सेठ रत्नसारने उस राजासे [illegible]

आदि देकर उसका बड़ा आदर [illegible]

"मैं धन्य हूँ और धन्य है मेरा यह घर, कि तुम राजासे सम्मानित पुरुष होकर भी इस घरमें पधारे। मेरे योग्य जो कोई काम-काज हो, वह बतलाओ। मेरे घरमें जो कुछ है, सब तुम्हारा ही है।" यह सुन, धनदने कहा,—"पिताजी! आपने जो कुछ कहा, वह सब सच है; परन्तु मैं जो पूछता हूँ उसका जवाब दीजिये। सेठजी! आप यह तो कहिए, कि आपका जो धनद नामका पुत्र था, वह कहाँ गया और आपको उसका कुछ समाचार मालूम है या नहीं? वह किसी निश्चित स्थानपर हैं या नहीं?" यह सुन, सेठने उसे अपनेही पुत्रकी सूरत-शकलका देख, मन-ही-मन विचार कर इस प्रकार अपने पुत्रका वृत्तान्त निवेदन किया,—"एक दिन मेरे पुत्रने हज़ार मुहरें देकर एक गाथा मोल ली थी, इस पर मैंने क्रोधमें आकर उसे कुछ खरी-खोटी सुनायी, जिससे उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ और वह अभिमानके मारे मेरा घर-बार छोड़, कहींको चल दिया। जबसे वह गया है, तबसे मुझे उसका कोई हालचाल नहीं मालूम। अब मैं आकृति और बोल-चालको मिलाता हूँ, तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि वही तुम्हीं तो नहीं हो; परन्तु तुमने अपने आपको ऐसा छिपा रखा है, कि मनमें संशय पैदा हो जाता है; क्योंकि दुनियाँमें एकसी सूरत शकलके बहुतसे आदमी होते हैं। इसीलिये मुझे यह ख़याल होता है, कि तुम मेरे पुत्रकेसे आकार-प्रकारवाले कोई दूसरे मनुष्य हो।"

सेठकी यह बात सुन, धनदने कहा,—"पिताजी! मैं ही आपका वह पुत्र हूँ।" यह सुन, सेठने उसके दाहिने पैरका निशान देख, उसे ठीक-ठीक पहचान लिया। धनदने भी विनयके साथ पिताके चरणोंमें सिर झुकाया। सेठने अत्यन्त प्रेमके वशमें हो, उसे गाढ़ालिङ्गन कर, हर्षके आँसू आँखोंमें भरे हुए गद्गद कंठसे कहा,—"पुत्र! तुम इसी नगरमें थे और अपनेको यों छिपाये हुए थे? क्या तुम्हें किसी दिन माँ-बापसे मिलनेकी इच्छा नहीं होती थी? पुत्र! तुम इतने दिनों तक कहाँ रहे? परदेशमें रहकर तुमने क्या-क्या सुख-दुःख उठाये?

पिताके इस प्रकार पूछने पर धनदकी भी आँखें भर आयीं। उसने संक्षेपमें अपना सारा वृत्तान्त माता-पिताको कह सुनाया और उनसे क्षमा माँगी। इसके बाद फिर उसने अपने पितासे कहा,—"पिताजी! आप मुझे राजाके यहाँसे छुट्टी दिलवा दीजिये, जिसमें मैं आपकी पुत्र-वधूके साथ आपके घर आकर रहने लगूँ।" यह सुन, सेठ रत्नसारने बड़े हर्षके साथ राजसभामें जाकर पुत्रसहित राजाको भोजनका निमन्त्रण दिया। धनद अपनी प्रियाके साथ हाथी पर सवार हो, राजाके साथ-ही-साथ बड़ी धूमधामसे अपने घर आया। उस समय सेठने अपने देशान्तरसे लौटे हुए पुत्रके आने और राजाके अपने घर भोजन करनेके निमित्त पधारनेके कारण बड़ी ख़ुशी मनायी और ख़ूब धूमधाम की। राजाने भी बड़े आनन्दसे उसके घर भोजन किया। उस समय राजाका पुत्र, राजाकी गोदमें बैठा हुआ खेल रहा था। इसी समय एक मालीने आकर अपनी डालीसे एक उत्तम पुष्प लेकर राजाकी भेंट किया। राजाकी गोदमें बैठे हुए कुमारने उस पुष्पको लेकर सूँघ लिया। उसी क्षण पुष्पके अन्दर बैठे हुए एक सूक्ष्म शरीरवाले राज-सर्पने उसकी नाकमें डँस दिया। राजकुमार बड़े ज़ोरसे रो-रो कर कहने लगा,— "न जाने मुझे किस कीड़ेने काट खाया।" यह सुन, राजाने जो फूलको मसलकर देखा, तो उसके भीतर नन्हाँसा राजसर्प बैठा दिखाई दिया। यह देख, अत्यन्त दुःखित हो, राजाने कहा,— "अरे! कोई जाकर सँपहरीको बुला लाओ।" तत्काल सँपेहरी भी आ पहुँचा। उसने उसका डंक वगैरह देखकर कहा,— "यह राज-सर्प सब सर्पोंका शिरोमणि है। इसका विष बड़ा भयङ्कर होता है। यह जिसे काट खाता है, उसपर तन्त्र-मन्त्र कुछ भी असर नहीं करता।" यह सुन, राजा और भी चिन्तामें पड़े। इधर ख़ूब विष व्याप जानेसे राजकुमारकी चेतना लुप्त हो गयी। इसी समय धनदने आकर चक्रेश्वरी देवीकी दी हुई मणिका जल छिड़क कर राजकुमारको तत्काल विष-रहित कर दिया। इससे राजा बड़े ही हर्षित हुए, इसके बाद

राजाने धनदका खूब आदर-सत्कार किया और अपने महलोंमें आकर पुत्र-जन्मकी बधाइयाँ बजवायीं, खूब उत्सव करवाया और दीन दुःखियोंको बहुतसा दान दिया।

इसके बाद राजकुमार क्रमशः बढ़ते-बढ़ते युवावस्थाको प्राप्त हुए। एक दिन वे हाथी पर सवार हो, राजवाटिकामें चले जारहे थे। रास्तेमें जाते-जाते नगरकी शोभा देखते हुए कुमारकी दृष्टि सूरराजकी पुत्री श्रीषेणा पर पड़ी और वे उसी समय कामदेवकी पीड़ासे व्याकुल हो गये। परन्तु उस कन्याके मनमें राजकुमारको देखकर कुछ भी प्रीति नहीं उत्पन्न हुई। काम-ज्वरसे पीड़ित कुमार घर आये, पर उनकी पीड़ा शान्त नहीं हुई। कुमारके मंत्रियोंने उनका अभिप्राय राजापर प्रकट किया। राजाने एक चतुर मन्त्रीको सूरराजके पास उनकी कन्या श्रीषेणाकी याचना करनेके लिये भेजा। सूरराज मन्त्रीके मुँह से कन्याकी मँगनीकी बात सुन बड़े प्रसन्न हुए और मन्त्रीकी बड़ी ख़ातिर करने लगे। इतनेमें उस लड़कीने आकर कहा,—"यदि तुम मुझे कुमारके हाथों सौंप दोगे तो मैं निश्चय ही आत्महत्या कर लूँगी।" सूरराजको अपनी कन्याकी यह बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने मन्त्रीसे कहा,—"अभी तो आप जाइये, मैं पीछे अपनी कन्याको समझा-बुझाकर आपको ख़बर दूँगा।"

मन्त्रीने राजाके पास आकर यह सब हाल कह सुनाया। मन्त्रीके जाने बाद सूरराजाने अपनी कन्याको बहुत तरहसे समझाया बुझाया, परन्तु वह किसी प्रकार राजकुमारको वरनेपर राजी नहीं हुई। लाचार, सूरराजने यही बात कहला भेजी। राजाने पुत्रको इसकी सूचना दे दी। यह सुन, राजकुमारको बड़ी निराशा और घोर दुःख हुआ। इसी समय धनदने राजाके पास आकर पूछा,—"स्वामी! आज आप इतने चिन्तित क्यों हैं?" राजाने उसको अपने पुत्रकी बात कह सुनायी। सब सुनकर धनदने कहा,—"हे राजन्! आप इस बातकी ज़रा भी चिन्ता न करें। मैं अवश्य ही राजकुमारकी मनस्का-

मना पूरी करूँगा।" यह कह, वह घर आया और वहाँसे चक्रेश्वरी देवीका दिया हुआ एक रत्न ले जाकर राजकुमारके हवाले किया। तदनन्तर राजकुमारने धनदके बतलाये अनुसार उस रत्नकी विधिपूर्वक आराधना की, जिससे उस मणिका अधिनायक सन्तुष्ट हो गया। उसके प्रभावसे सूरराजकी पुत्रीके मनमें राजकुमारके प्रति प्रीति उत्पन्न हो गयी और उसने अपनी एक सखीसे अपने मनकी बात कह डाली। उस सखीने यह बात उसके पितासे कही। उसके पिताने इसकी सूचना राजाको दी और राजाने अपने पुत्रसे सारा हाल कहा। इससे राज कुमारको बड़ा ही हर्ष हुआ। इसके बाद राजाने ज्योतिषीको बुलाकर विवाहका शुभ दिवस विचारनेको कहा। शुभ ग्रह-नक्षत्रमें दोनोंका विवाह हो गया। राजकुमार उसके साथ आनन्दपूर्वक विषय-सुख भोगने लगे।

एक दिन राजाके सिरमें बड़ी भयानक पीड़ा हुई। उसी समय धनदने देवीकी रोगापहारिणी मणिके प्रभावसे उनकी पीड़ा दूर कर दी। उस समय राजाके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ,—"ओह! धनदके समान गुण-रत्नका सागर दूसरा कोई मनुष्य नहीं है। बड़े भाग्यसे यह मेरा मित्र हो गया है।" ऐसा विचार कर, वे उस दिनसे उसे पुत्रसे भी बढ़कर मानने लगे।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें शीलन्धर नामक सूरि अपने चरण-रजसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए परिवार सहित आ पहुँचे। सारे नगर-निवासी बड़ी भक्तिके साथ उनके दर्शन और वन्दन करनेके लिये उद्यानमें आये। धनद भी रथमें बैठ कर वहाँ आया। गुरुकी वन्दना कर धनद इत्यादि सभी लोग यथायोग्य स्थानपर बैठ रहे। गुरुने उस समय इस प्रकार धर्मदेशना करनी आरम्भ की,—"इस संसारमें जीवोंको धर्मके बिना सुखकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये, हे भव्य प्राणियों! तुम सदा धर्मकी आराधनाका प्रयत्न करते रहो। जो मनुष्य धर्म करते समय बीच-बीचमें मनमें अन्तर ले आता है, वह महणाकके

समान दुःखमिश्रित सुख पाता है।" यह सुन, धनदने सूरिसे पूछा,—"हे भगवन्! वह महणाक कौन था, जो धर्म करते हुए बीच-बीचमें अन्तर डाल देता था? उसने किस प्रकार धर्मको कलङ्कित किया? कृपाकर उसका वृत्तान्त कह सुनाइये।" यह सुन, गुरुने कहा,—

"इसी भरतक्षेत्रमें रत्नपुर नामक एक नगर है। उसमें शुभदत्त नामका एक धनवान् सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम वसुन्धरा था। उनके महणाक नामका एक पुत्र था। उसकी स्त्रीका नाम सोमश्री था। एक दिन वह महणाकके रथमें बैठकर बागीचेमें सैर करनेके लिये गया। उसने बागीचेमें बड़ा भारी मण्डप बनवाया था। उसी मण्डपमें वह अपने यार-दोस्तोंके साथ बैठा हुआ मनोहर खाद्य, भोज्य, लेह्य और पेय—इन चारों प्रकारके आहारको इच्छानुसार खर्चने लगा। खाने-पीनेके बाद, पाँच सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त ताम्बूल भक्षण कर, थोड़ी देर नाटकका तमाशा देखनेके अनन्तर वह फलकी समृद्धिसे मनोहर और घने वृक्षोंसे सुशोभित उद्यानकी शोभा देखने लगा। इतनेमें उसने एक मुनिको देखा। उन्हें देखकर वह मित्रोंकी प्रेरणासे उनके पास आया। उनकी वन्दना करने पर उन्होंने ध्यान तोड़कर धर्म-लाभरूपी आशीर्वाद दिया इसके बाद उनकी धर्मदेशना सुनकर उसको प्रतिबोध हुआ और उसने उन्हीं मुनिसे समकित सहित श्रावकधर्म अङ्गीकार कर लिया। इसके बाद वह फिर मुनिको प्रणाम कर अपने घर लौट आया। अपना द्रव्य लगाकर उसने एक बड़ा भारी जिन-मन्दिर बनवाया। इसके बाद वह अपने मनमें विचार करने लगा,—"मैंने धर्मरसके आधिक्यके कारण इतना धन क्यों व्यय कर डाला? यह धन तो मैंने व्यर्थ ही गंवा दिया।" ऐसा विचार मनमें उत्पन्न होते ही वह कुछ दिनोंके लिये निरुत्साह हो गया। इसके बाद बहुतेरे मनुष्योंके आग्रहसे उसने जिनप्रतिमा बनवायी और विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा की। जीवहिंसाका त्यागकर यथायोग्य दान भी दिया। फिर उसके जीमें यह विचार उठा, कि—'ओह! मैंने

धर्मकार्यमें बेहिसाब धन लगा दिया। उपार्जन किये हुए धनका चौथाई हिस्सा ही धर्ममें लगाना चाहिये, अधिक नहीं। इसका फल मुझे कुछ मिलेगा या नहीं, इसमें भी संशय ही है। शास्त्रोंमें तो ऐसा लिखा पाया जाता है, कि अल्प व्ययका बहुत उत्तम फल मिलता है।" इस प्रकार चित्तमें संशय रखते हुए भी वह देवपूजादिक कार्य किया करता था। एक दिन उसके घर दो साधु आये। उसने उन्हें रोककर अच्छे-अच्छे पदार्थ भोजन कराये। मुनियोंके जाने बाद उसने अपने मनमें विचार किया,—"मैं भी धन्य हूँ, कि मेरे हाथों तपस्वियोंको मधुर आहार पहुँचा।" एक दिन रातको पिछले पहर सोते हुए उठकर उसने अपने मनमें विचारा,—"जिसका कोई प्रत्यक्ष फल देखनेमें न आये, वैसा पुण्य करनेसे क्या लाभ?" बादको एक दिन दो मलिन शरीरवाले तपस्वियोंको देखकर उसने विचार किया,—"ओह! इन मलिन शरीरवाले मुनियोंको धिक्कार है। यदि कदाचित् ये जैन-मुनि निर्मल वेष बनाये रखते, तो क्या जैनधर्ममें दूषण लग जाता?" इस प्रकार विचार कर उसने फिर सोचा,—"अरे! मेरा यह विचार बहुत बुरा है। मुनि तो ऐसे होते ही हैं। इनकी निर्मलता संयममें है, इनके शरीरकी निर्मलताकी ओर ध्यान देना ही उचित नहीं।" इसी प्रकार उसने शुभ भावोंके द्वारा शुभ कर्मोंका उपार्जन किया और बीच-बीचमें अशुभ भाव हो जानेसे उसने अशुभ कर्म भी उपार्जन कर लिया। अनन्तर आयु पूरी होजानेपर वह भवनपति देव हुआ। उसी स्थानसे च्युत होकर तुम इस समय धनद नामक सेठके पुत्र हुए हो। पूर्वभवमें तुमने धर्म करते हुए भी बीच-बीचमें उसे दूषित किया, इसीलिये तुम्हें इस भवमें दुःख मिश्रित सुख प्राप्त हो रहा है।"

इस प्रकार अपने पूर्वभवकी कथा सुनकर धनद, मूर्च्छित हो, पृथ्वी पर गिर पड़ा और जातिस्मरण उत्पन्न होनेके कारण उसने अपना पूर्वभव स्पष्ट देख लिया। यह देख, उसने गुरुसे कहा,—"प्रभो! आपने जो कुछ कहा, वह बिलकुल सत्य है। अब तो मैं अपने बन्धुओं

क्रमशः समय पूरा होनेपर अनुद्धरी रानीके गर्भसे एक श्यामकान्ति पुत्रका जन्म हुआ। पिताने खूब धूमधामसे उत्सव किये और उसका नाम अनन्तवीर्य रखा। ये दोनों राजकुमार क्रमशः बढ़ते-बढ़ते कला-भ्यास करने योग्य हो गये, इसलिये राजाने उन्हें कलाओंका अभ्यास कराया, धीरे-धीरे रूप और लावण्यसे शोभित वे दोनों कुमार युवा-वस्थाको प्राप्त हुए। तब राजाने उनका विवाह भी कर दिया।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें विशेष ज्ञानवाले स्वयंप्रभ नामके मुनि पधारे। उसी समय स्तिमितसागर राजा भी घुड़सवारी करके थके हुए, विश्राम करनेकी इच्छासे, उसी नन्दनके समान मनोहर उपवनमें आकर थोड़ी देर बैठे रहे। इसी समय राजाकी दृष्टि अशोक वृक्षके नीचे ध्यानमग्न मुनिपर पड़ी और उन्होंने शुद्ध भावसे उनके पास जा, उनकी तीन बार प्रदक्षिणा कर, विधिपूर्वक उनको नमस्कार किया। इसके बाद विनयसे नम्र बने हुए उचित स्थानमें बैठकर उन्होंने मुनिके मुँहसे इस प्रकारकी धर्मदेशना सुनी,—"कषाय कड़वे वृक्ष हैं, दुष्ट ध्यान इनके फूल हैं, इस लोकमें पाप-कर्म और परलोकमें दुर्गति ही इनके फल हैं। ऐसाही समझकर संसारसे विरक्त और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको इन अनर्थकारी कषायोंका अवश्यमेव त्याग करना चाहिये।" मुनिके ऐसे वचन सुन, राजाने कहा,—"हे मुनिराज! आपने जो कहा, वह सब सत्य है; परन्तु यह तो कहिये, ये कषाय कितने प्रकारके हैं?" गुरुने कहा,—"हे नरेन्द्र! सुनो,—

"क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार प्रकारके कषाय हैं। इनमेंसे प्रत्येकके चार-चार भेद हैं। इनमें प्रथम अनन्तानुबन्धी, द्वितीय अप्रत्याख्यानी, तृतीय प्रत्याख्यानावरणी और चतुर्थ संज्वलन कहलाते हैं। पहला, अनन्तानुबन्धी क्रोध, पत्थरपर की हुई लकीरकी तरह अमिट और महादुःखदायी है। दूसरा, अप्रत्याख्यानी क्रोध, पृथ्वीकी रेखाकी तरह है। तीसरा, प्रत्याख्यानावरणी क्रोध, धूलकी रेखाके समान है और चौथा, संज्वलन क्रोध, जलकी रेखाके तुल्य माना गया है।

मान और कषाय आदि भी इसी प्रकार चार-चार तरहके हैं। वे क्रमश पत्थर, हड्डी, लकडी और तृणके स्तम्भके समान हैं। माया भी चार तरहकी है। यह घांस, मेढेके सीग, बैलके मूत्र और अवलेहिकाके * समान है। इसी तरह लोभ भी चार तरहका होता है। यह किरमिची रग, या कीचड, अञ्जन और हल्दीके रंगका सा होता है। अनन्तानुबन्धी आदि चारों कषायोंके भेद अनुक्रमसे जन्मपर्यन्त, एक वर्ष तक, चार महीनेतक और एक पखवाडेतक रहनेवाले होते हैं और क्रमश नरक-गति, तिर्यंच-गति, मनुष्य गति और देवगतिके देनेवाले होते हैं। हे राजन्! इन सोलह प्रकारके कषायोंको आदरपूर्वक पालते रहनेसे ये दीर्घकाल तक दुख देते रहते हैं और स्वाभाविक रीतिसे करनेसे कुछ ही भव तक दुख देते हैं। इसलिये हे राजन्! तुम तो इन कषायोंको एक दम त्याग दो, क्योंकि थोडेसे दुष्कृतसे भी पापका बहुत बडा फल मिल जाता है। जिस प्रकार मित्रानन्द आदिको इनका फल भोगना पडा था, वैसेही औरोंको भी भोगना पडेगा।

यह सुन, राजाने मुनिसे पूछा,—"पूज्य मुनिराज! वे मित्रानन्द आदि कौन थे? और उन्हें थोडेसे कषायका बहुत कडवा फल किस प्रकार भोगना पडा? यह कृपाकर बतलाइये।" इसके उत्तरमें स्वयंप्रभ मुनिने कहा,—"हे राजन्! उस मित्रानन्दकी कथा तुम खूब जी लगाकर सुनो।" ऐसा कहकर मुनिने अपनी अमृत भरी वाणीमें वह कथा सुनानी आरम्भ की:—

मित्रानन्द और अमरदत्तकी कथा

इसी भरतक्षेत्रमें अपनी अपार समृद्धिके कारण देवनगरीके समान बना हुआ और पृथ्वीपर परमप्रसिद्ध अमरतिलक नामका एक नगर है।

* बांस आदिके ऊपरकी छाल।

वहाँ पर किसी समय मकरध्वज नामके राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नीका नाम मदनसेना था। उसीके गर्भसे उत्पन्न और पद्मसरोवरके स्वप्न द्वारा सूचित पद्मकेसर नामका एक पुत्र भी राजाके था। एक दिन रानी मदनसेनाने राजाके सिरके बालोंपर कंघी फेरते-फेरते एक पका हुआ केश देखकर कहा,—"एँ स्वामी दूत आ गया।" यह सुन, राजाने चकित होकर चारों तरफ़ देखा; पर कहीं कोई दूत नज़र नहीं आया। यह देख, उन्होंने रानीसे पूछा,—"प्रिये! वह दूत कहाँ है?" रानीने राजाको वह सफ़ेद बाल दिखलाकर कहा,—"धर्मराजने बुढ़ापेके आगमनकी सूचना देनेके लिये इसी पके हुए केशके बहाने आपके पास दूत भेजा है; इसलिये अब जहाँतक बन पड़े धर्म-कर्म कीजिये।" रानीकी यह बात सुन, राजा विस्मित होकर विचार करने लगे,—"मेरे पूर्वजोंने तो बाल पकनेके पहले ही धर्मका सेवन किया था। चारित्र ग्रहण किया था; पर मैं आजतक कुछ भी न कर सका। इसलिये मुझ राज्यके लोभी और बाप-दादोंकी रीति बिगाड़नेवालेको धिक्कार है। अभी मैं विषय-सुखमें ही लिपटा हूँ और इधर बुढ़ापा आ पहुँचा।" इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए पतिको देख, उनका अभिप्राय जाने बिनाही रानीने हँसते-हँसते कहा,—"हे नाथ! अगर बुढ़ापा आ जानेके कारण आपको लज्जा आ रही हो, तो कहिये, मैं नगरमें इस बातकी ड्योंढ़ी पिटवा दूँ, कि जो कोई राजाको वृद्ध बतलायेगा, वह अकालमें ही यमराजका घर देखेगा।" रानीकी यह बात सुन, राजाने कहा,—"प्रिये! ऐसी बेसमझकी सी बातें क्यों करती हो? मेरे जैसे लोगोंके लिये तो बुढ़ापा मण्डन-स्वरूप है; फिर मैं इसके कारण लज्जित क्यों होने लगा?" राजाका यह कथन श्रवणकर रानीने कहा,—"नाथ! तो फिर अपना उजला बाल देखकर आपके चेहरेका रंग काला क्यों पड़ गया?" इसपर राजाने रानीको बतलाया, कि पका हुआ केश देखकर मेरे मनमें जो वैराग्य उत्पन्न हुआ है, उसीसे मेरा मुखड़ा उदास दीख रहा होगा। इसके बाद राजाने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप, आप अपनी स्त्रीके

साथ तापसी दीक्षा ग्रहण कर ली और वनमें जाकर रहने लगे। व्रत ग्रहण करते समय रानीके गर्भ था, यह बात किसीको मालूम नहीं थी। क्रमशः गर्भ वृद्धि पाने लगा। यह देख, राजाने एक दिन रानीसे पूछा,—"यह क्या?" यह सुन, रानीने राजा और कुलपतिको सारा हाल सच-सच बतला दिया। तपस्विनियोंकी सेवा-सहायतासे पूर्ण समय पर रानीके एक शुभलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न हुआ।

दैवयोगसे प्रसूति-अवस्थामें अपथ्य आहार करनेके कारण रानीके शरीरमें भयङ्कर व्याधि उत्पन्न हो गयी। तपोवनमें औषध और पथ्यका, जैसा चाहिये वैसा सुभीता नहीं था, इसलिये सब तपस्वियोंने मिलकर विचार किया,—'माताके बिना गृहस्थोंके बालकोंका पालन-पोषण बड़ा ही कठिन है। ऐसी अवस्थामें यदि कहीं इस बालककी माता मर गयी, तो फिर हम तापसगण इसका कैसे पालन करेंगे?' वे लोग इसी तरह चिन्ता करही रहे थे, कि इसी समय उज्जयिनीका रईस, देवधर नामक वणिक्, व्यापारके लिये घूमता-फिरता हुआ वहाँ आ पहुँचा। वह तपस्वियोंमें बड़ी भक्ति रखता था, इसीलिये उनकी वन्दना करनेके निमित्त तपोवनमें चला आया। उस समय उन सभी तपस्वियोंको चिन्तामें पड़े देखकर उसने उनसे इसका कारण पूछा। यह सुन, कुलपतिने कहा,—"हे देवधर! यदि तुम्हें हमारे दुःखसे दुःख होता हो, तो इस बालकको तुम लेलो।" यह सुन, उसने कुलपतिकी आज्ञा स्वीकार कर ली। तपस्वियोंने बालकको उसके हवाले कर दिया। उसने वह बालक लेकर अपनी देवसेना नामक स्त्री, जो उसके साथ वहाँ आयी हुई थी उसे दे दिया। उस बेचारीके एक नन्हींसी दूधपीती बालिका थी, इसलिये बड़ी अनुकूलता हुई। इधर मदनसेना रानीने अपने पुत्रको सभी जगह ढूँढा; पर जब न मिला, तब मन मारकर रह गयी। क्रमशः उसका रोग बहुत बढ़ गया और उसीसे उसकी मृत्यु भी हो गयी। देवधरने उस लड़केको घर ले जाकर बड़ी धूमधाम की और उसका नाम अर्हद्दत्त रखा तथा उसकी पुत्रीका नाम सुरसुन्दरी रखा,

लोगोंमें यही बात प्रसिद्ध हुई, कि देवधरकी स्त्रीके जुड़ेले बालक पैदा हुए हैं।

क्रमशः उज्जयिनी-नगरीके सागर सेठकी स्त्री मित्रश्रीके गर्भसे उत्पन्न मित्रानन्दके साथ अमरदत्तकी मित्रता हुई। उन दोनोंमें ऐसीही मित्रता थी, जैसी दोनों आँखोंमें होती है। एक दिन वर्षा-ऋतुमें दोनों मित्र क्षिप्रानदीके किनारे वटवृक्षके पास गिल्लीडंडा खेल रहे थे। एक बार अमरदत्तकी उछाली हुई गिल्ली दैवयोगसे वटवृक्षसे लटकते हुए किसी चोरके मृतक शरीरके मुखमें जा पड़ी। यह देख, मित्रानन्दने हँस कर कहा,—"अहा, मित्र! यह देखो, कैसे आश्चर्यकी बात है, कि तुम्हारी गिल्ली इस मृतकके मुँहमें चली गयी।" यह बात सुन, क्रोधितसा होकर वह मृतक बोल उठा,—"हे मित्रानन्द, सुन ले! तू भी इसी तरह इसी वटवृक्षसे लटकाया जायेगा और तेरे मुँहमें भी गिल्ली पड़ेगी।" उसके ऐसे वचन सुन, मृत्युके भयसे भीत होकर मित्रानन्दका उत्साह खेलमें न रह गया, इसलिये उसने कहा,—"यह गिल्ली मुर्देके मुँहमें पड़ कर अपवित्र हो गयी, इसलिये जाने दो—अब यह खेलही बन्द कर दिया जाये।" यह सुन, अमरदत्तने कहा,—"मेरे पास दूसरी गिल्ली है, उसीसे खेलो।" परन्तु इसपर भी मित्रानन्द खेलनेको राज़ी न हुआ और दोनों मित्र अपने-अपने घर चले गये।

दूसरे दिन मित्रानन्दको उदास और उसका चेहरा काला पड़ा हुआ देख, अमरदत्तने उससे पूछा,—"हे मित्रानन्द! तुम क्यों ऐसे दुःखित होरहे हो? तुम्हारे दुःखका कोई कारण भी है? यदि हो, तो मुझसे कह सुनाओ।" उसके इस प्रकार बड़ा आग्रह करके पूछनेपर मित्रानन्दने उस मृतककी कही हुई बातोंका ब्यौरा अपने मित्रको सुनाया। यह सुन, अमरदत्तने कहा,—"हे मित्र! मुर्दा तो कभी बातें नहीं करता, इसलिये मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि अवश्यही यह बात किसी वैतालने कही होगी। पर हाँ, कुछ ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता।" इसके बाद अमरदत्तने फिर उससे पूछा,—"अच्छा, मित्र! यह त[illegible]बत-

लाओ, कि तुम्हे उसकी बात सच्ची मालूम होती है या झूठी? अथवा तुम उसे दिल्लगी-मात्र समझते हो?" यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—"मुझे तो वह बात सच्ची ही मालूम पड़ती है।" इसपर अमरदत्तने कहा,—"यदि सच्ची हो, तो भी क्या हुआ? मनुष्यको चाहिये, कि अपने भाग्यका लिखा हुआ मेट डालनेके लिये भी पुरुषार्थ करे।" मित्रानन्दने कहा,—"जो बात दैवाधीन है, उसमें पुरुषार्थ क्या करेगा?" अमरदत्तने कहा,—"मित्र! क्या तुमने नहीं सुना है, कि ज्ञानगर्भ मन्त्रीने पुरुषार्थके ही द्वारा दैवज्ञकी बतलायी हुई अपनी जीवन नाशिनी आपत्तिसे छुटकारा पा लिया था।" मित्रानन्दने पूछा,—"वह ज्ञानगर्भ कौन था? और उसने किस प्रकार आपत्तिसे छुटकारा पाया था? यह सब हाल मुझे बतलाओ।" यह सुन, अमरदत्तने उसे यह कथा कह सुनायी,—

ज्ञानगर्भ मन्त्री की कथा

इसी भरतक्षेत्रमें धन-धान्यसे परिपूर्ण चम्पानामकी नगरी है। उसमें जितशत्रु नामके राजा राज्य करते थे। उनके मन्त्रीका नाम ज्ञानगर्भ था, जिसपर वे सदा प्रसन्न रहते थे और जो राज्यकी सारी चिन्ता अपने सिरपर लिये हुए था। मन्त्रीकी स्त्रीका नाम गुणावली था। उसीकी कोखसे उसके सुबुद्धि नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो बड़ा ही सुन्दर था। एक दिन राजा जितशत्रु सब मन्त्रियों और सामन्तोंके साथ सभामें बैठे हुए थे, उसी समय कोई अष्टाङ्ग ज्योतिषका जाननेवाला दैवज्ञ द्वारपाल द्वारा राजाकी आज्ञा मँगवाकर सभामें आया और राजाको आशीर्वाद देकर श्रेष्ठ आसनपर बैठ रहा। उस समय राजाने उससे पूछा,—"हे दैवज्ञ! तुमने कितना ज्ञान उपार्जन किया है?" उसने कहा,—"हे राजन्! मैं ज्योतिष-विद्याके प्रभावसे, लाभ-हानि, जीवन-मरण, गमन-आगमन और सुख-दुःखकी सभी बातें जान लेता हूँ।" तब

राजाने कहा,—"मेरे इस, परिवारमें यदि किसीके ऊपर कोई अद्भुत बात बीतनेवाली हो, तो बतलाओ ।" यह सुन, देवज्ञने कहा,—"मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि आपके इस ज्ञानगर्भ मन्त्रीपर पन्द्रह दिनके भीतर ही ऐसी विपत्ति आनेवाली है, जिससे वह अपने कुटुम्ब सहित मारा जायेगा ।" यह बात सुनकर राजा और समस्त राजकर्मचारियोंको बड़ा खेद हुआ । तदनन्तर दुःखित-हृदयसे मन्त्रीने उस देवज्ञको अपने घर एकान्तमें ले जाकर पूछा, -"हे भद्र ! यह तो बतलाओ, कि मेरे ऊपर वह विपद् किस प्रकार आनेवाली है ?" उसने जवाब दिया,—"यह विपद् तुम्हारे ऊपर तुम्हारे बड़े बेटेके करते आयेगी, ऐसा मुझे मालूम होता है ।" यह सुन, मन्त्रीने उसका सत्कार कर उसे विदा कर दिया ।

इसके बाद मन्त्रीने अपने पुत्रको बुलाकर कहा,—"हे पुत्र ! यदि तुम मेरी बात मानो, तो मेरे ऊपर आनेवाली प्राण-नाशिनी विपत्तिको अपनी ही विपत्ति मानो ।" यह सुन, पुत्रने अतिशय विनीत भावसे कहा,-"पिताजी ! आप जो कहिये, वह करनेके लिये मै तैयार हूँ ।" इसके बाद मन्त्रीने एक आदमीके समा आने लायक बड़ा सा सन्दूक मँगवाया और उसमें पानी तथा भोजनकी सामग्री सहित पुत्रको डालकर बाहरसे आठ ताले जड़ दिये । बादको वह सन्दूक राजाके हवाले कर उसने कहा,—"हे राजन् ! यही मेरा सर्वस्व है । इसे आप ख़ूब हिफ़ाज़तसे रखिये ।" यह सुन, राजाने कहा,—"हे मन्त्री ! तुम इस सन्दूकमें रखे हुए धनको अपनी इच्छाके अनुसार धर्म-कार्यमें लगा दो—तुम्हारे बिना मैं इस धनको लेकर क्या करूँगा ?" मन्त्रीने कहा,—"स्वामिन् ! सेवकोंका यही धर्म है, कि चाहे जान भलेही चली जाये, पर अपने स्वामीके साथ धोखाधड़ी न करें ।" इस प्रकार उसके बहुत आग्रह करने पर राजाने वह सन्दूक एक गुप्त स्थानमें रखवा दिया । तब मन्त्रीने जिनमन्दिरोंमें अष्टाहिका-उत्सव प्रारम्भ करवाये, श्रीसंघकी पूजा की, दीन-हीन मनुष्योंको दान दिया, अमारीकी आघोषणा करवायी और

आप अपने घरमें शान्ति-पाठ करने लगा। साथही शस्त्र तथा जिरह बख्तरोंसे सजे हुए वीरों और हाथी-घोड़ोंको घरके चारों तरफ रख-वालीके लिये तैनात कर गृह-रक्षाका भी प्रबन्ध कर डाला। तदनन्तर वह घरके मन्दिरमें बैठकर धर्म-ध्यान करने लगा। इसी तरह करते हुए पन्द्रहवाँ दिन आ पहुँचा। उस दिन एकाएक राजाके अन्तःपुरसे यह आवाज आयी,—“हे लोगो! दौड़ो, दौड़ो, यह देखो मन्त्रीका पुत्र सुबुद्धि राजकुमारीका वेणीदण्ड काटकर भागा जा रहा है।” यह बात सुन, राजाने एक बारगी क्रोधमें आकर विचार किया,—“मैंने उस दुष्ट मन्त्री-पुत्रका इतना आदर किया और उसने मेरे साथ ऐसी बेजा हर-कत की?” ऐसा विचार मनमें आतेही राजाने सारी सभाके साम-नेही कोतवालको आज्ञा दी, कि मन्त्री-पुत्रके इस अपराधके दण्ड-स्वरूप तुम अभी मन्त्रीको सपरिवार मृत्युके घाट उतार दो। उसके किसी नौकरको भी जीता न छोड़ना, क्योंकि उसके पुत्रने बहुत बड़ा अप-राध कर डाला है। यह कह राजाने मन्त्रीके घर पर सेना भेजवायी। उस समय मन्त्रीके सैनिकोंने इनकी राह रोकी। यह सब समाचार ध्यानमें मग्न होकर बैठे हुए [illegible] मालूम हो गया और उसने तत्काल बाहर आकर [illegible] मियोंको लड़नेसे मना करते हुए, राजाके सैनिकोंसे कहा,—“हे वीरो! तुमलोग एक बार मुझे राजाके पास ले चलो। उन लोगोंने ऐसाही किया। मन्त्री-को देख राजाका क्रोध कम हो गया। तब मन्त्रीने राजाके सामने जा, प्रणाम कर विनयपूर्वक कहा,—“हे महाराज! मैंने जो सन्दूक आपके यहाँ रखवा दिया था, उसके भीतरकी चीज निकलवाइये। इसके बाद आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें।” यह सुन राजाने कहा, क्या इतना बड़ा अपराध करके तुम मुझे धन देकर सन्तुष्ट करना चाहते हो?” मन्त्रीने कहा,—“महाराज! मेरे प्राण तो आपके अधीनही हैं, पहले एकबार उस सन्दूकको तो खोलकर देखिये।” उसके ऐसा आग्रह करने पर राजाने वह सन्दूक मँगवाकर उसके सब ताले तुड़वा

डाले। उसके अन्दर मन्त्रीका पुत्र सुबुद्धि बैठा हुआ था। उसके दाहिने हाथमें शस्त्र और बायें हाथमें वेणीदण्ड था ; पर उसके दोनों पैर बँधे हुए थे। उसकी यह हालत देख, राजाने आश्चर्यमें पड़कर पूछा,— "यह क्या मामला है?" मन्त्रीने कहा,— "महाराज! मैं क्या जानूं ? शायद आप कुछ जानते हों।" सच्ची बात जाने बिना ही आप अपने इस जन्म भरके सेवकको जड़से उखाड़ फेंकनेके लिये तैयार हो गये थे। यह सन्दूक मैंने आपके ही घर रख छोड़ा था। अब यदि उसके अन्दर यह करामात हो गयी, तो मेरा क्या अपराध है?" यह सुन राजाने लज्जित होकर कहा,—"हे मन्त्री! तुम मुझे इसका भेद बतलाओ।" मन्त्रीने कहा,—"स्वामिन्! हो सकता है, कि किसी भूत प्रेतने क्रोधित होकर मेरे इस निर्दोष पुत्र पर यह दोष लगानेके लिये यह काम किया हो। नहीं तो इस तरह सन्दूकमें बन्द करके रखे हुए आदमीकी ऐसी अवस्था क्योंकर हो सकती है?" यह सुन राजाने प्रसन्न होकर पुत्र सहित मन्त्रीका आदर-सत्कार किया। इसके बाद उन्होंने फिर पूछा,—"मन्त्री! तुमने यह बात क्योंकर जानी?" तब मन्त्रीने कहा,— [illegible] जा [illegible], यह [illegible] [illegible]ादमीके [illegible] [illegible]तिषीसे पूछा था, कि मेरे ऊपर कैसे विपद् आये[illegible] [illegible]ने कहा, कि तुम्हारे पुत्रके करते तुम पर आफ़त आयेगी। इसीलिये मैंने उसके बतलाये अनुसार यह तरकीब की। श्री जिनधर्मके प्रभावसे सारे विघ्न टल गये।" इसके बाद राजा और मन्त्री दोनोंने अपने-अपने पुत्रोंको अपनी जगह पर बहाल कर दीक्षा ले ली और तपस्या करते हुए सद्गति पायी,

ज्ञानगर्भ मन्त्रीकी कथा समाप्त।

"हे मित्र! जैसे मन्त्रीने अपने पराक्रम और यत्नसे अपनी विपत्ति का नाश किया है, वैसाही तुम भी करो और इस खेदको त्याग दो।"

उसकी यह बात सुन, मित्रानन्दने कहा,— "मित्र! अब तुम्हीं कहो, कि मैं क्या करूँ?" अमरदत्तने कहा,—"चलो, हमलोग यह देश छोड़ कर कहीं और चले जायें।" यह सुन, मित्रानन्दने अपने मित्रके हृदय की

परीक्षा लेनेके विचारसे कहा,—"तुमसे बाहर जाना नही बन सकता, क्योंकि तुम्हारा शरीर बड़ाही कोमल है। शवने मेरी जिस विपदकी कही है, वह तो न जाने कब सिर पर आयेगी, पर सुकुमारताके परदेशकी तकलीफोंके मारे तुम्हारा मरना तो बहुतही शीघ्र है।" यह सुन, अमरदत्तने कहा,—"मित्र! चाहे जो कुछ हो, पर तो सुख या दुख तुम्हारे साथ ही भोग करूँगा।" उसकी ऐसी सुनकर मित्रानन्दके हृदयका विकार जाता रहा और दोनोंके दिल गये। इसके बाद वे दोनों सलाह करके घरसे बाहर हुए और पाटलिपुत्र नगरमें आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने नगरके बाहर एक नन्दन समान मनोहर उद्यानमें ऊँची चहारदिवारीसे घिरा हुआ और ध्व पताकाओंसे सुशोभित एक सुन्दर प्रासाद देखा। उसे देखकर मित्रोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे पासवाली बावलीके जलमें हाथ, और मुँह धोकर प्रासादके अन्दर चले गये और उसकी सुन्दरता लगे। वहाँ अमरदत्तने एक पुतली देखी, जो रूपलावण्यमें ठीक दे नासी मालूम होती थी। उसे देखकर अमरदत्त चित्रलिखितकी अचल सा हो रहा और भूख, प्यास तथा थकावट भी भूल गया। में मध्याह्नका समय हो गया देखकर मित्रानन्दने कहा,— "भाई! नगरमें चलें, बहुत विलम्ब हो रहा है।" यह सुन, उसने कहा "हे मित्र! क्षणभर और ठहर जाओ, जिसमें मैं इस पुतलीको अ तरह देख लूँ।" उसकी यह बात मान, कुछ देर ठहरनेके बाद नन्दने फिर कहा,—"प्रिय मित्र! चलो, नगरमें चलकर कहीं ठीक-ठिकाना करें, खायें-पीयें, फिर यहीं चले आयेंगे।" यह सुन दत्तने कहा,—"यदि मैं यहाँसे टला, तो जरूर मर जाऊँगा।" यह मित्रानन्दने कहा,—"मित्र! इस पत्थरकी पुतली पर तुम्हारा अनुराग क्योंकर हो गया? यदि तुम्हें स्त्री-विलासकी ही इच्छा तो नगरमें चलकर भोजन करके अपनी इच्छा पूरी कर लेना।"

इसी प्रकार बार-बार कहने परभी जब वह वहाँसे न टला, तब

नन्द क्रोधके मारे बड़े ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगा। यह देख—अमरदत्त भी रोने लगा ; पर वहाँसे हटनेका नाम नहीं लिया। इतनेमें उस प्रासादका स्वामी सेठ रत्नसार भी वहाँ आ पहुँचा। उसने उन्हें देखकर कहा,—"अरे भाइयो ! तुमलोग इस प्रकार स्त्रीकी नाईं क्यों रो रहे हो ?" यह सुन, मित्रानन्दने पिताके समान उस सेठसे अपनी सारी रामकहानी आरम्भसेही कह सुनायी और मित्रकी वर्त्तमान स्थितिका हाल बतलाया। यह सुन, उस सेठने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया ; पर उसका उस पुतली परसे अनुराग नहीं दूर हुआ। यह देख, सेठको भी बड़ा खेद हुआ। उसने अपने मनमें विचार किया,—"जब पत्थर की बनी हुई नारी इस तरह मन हर लेती है, तब साक्षात् स्त्रीकी बात तो कहना ही क्या ? कहा भी है,—

> तावन्मौनी यतिर्ज्ञानी, सुतपस्वी जितेन्द्रियः ।
> यावन्न योषितां दृष्टि-गोचरं याति पूरुषः ॥ १ ॥

अर्थात्— "पुरुष जबतक स्त्रीको नहीं देखता, तभीतक वह मौनी, यति, ज्ञानी, तपस्वी और जितेन्द्रिय बना रहता है ।"

वह सेठ यही बात सोच रहा था, कि इतनेमें मित्रानन्दने उससे पूछा,— "हे तात ! इस विषम स्थितिमें मैं अब कौनसा उपाय करूँ ? इस बातका क्या जवाब दूँ, यह न सूझ पड़नेके कारण वह सेठ चुप्पी साधे रहा। इतनेमें मित्रानन्दने फिर कहा,— "सेठजी ! यदि मैं उस कारीगरका पता पा जाऊँ, जिसने यह पुतली गढ़ी है, तो मैं अपने मित्रकी इच्छा पूरी कर दूँ।" यह सुन, सेठने कहा,— "कोकण देशमें सोपारक नामक नगर है। वहींके शूर नामक कारीगरने यह पुतली गढ़ी है। यह प्रासाद और इसकी सारी चीज़ें मेरी बनवायी हुई हैं। इसीलिये मैं यह बात जानता हूँ।" यह कह उसने फिर कहा,—"यह हाल सुन कर, जो तुमने अपने मनमें विचारा हो सो मुझे कहो।" तब मित्रानन्दने कहा,—"सेठजी ! अगर आप मेरे मित्रकी रखवालीका

भार ले ले, तो मैं सोपारक जाकर उस कारीगरसे पूछूँ, कि उसने यह मूर्त्ति अपनी बुद्धिसे बनायी है अथवा किसीके रूपको देखकर उसीके अनुरूप गढ़ डाली है? यह बात मालूम होनेपर यदि उसने किसीको देखकर यह मूर्त्ति गढ़ी होगी, तो मैं उसका पता लगाकर अपने मित्रकी इच्छा पूर्ण करनेका प्रयत्न करूँगा।" यह सुन, सेठने अमरदत्तकी रक्षाका भार अपने ऊपर ले लिया। तब अमरदत्तने कहा,—"मित्र! मैं जिस समय यह बात जान जाऊँगा, कि तुम कष्टमें पड़े हो, उसी समय प्राण दे दूँगा।" मित्रानन्दने कहा,—"मित्र यदि मैं दो महीने तक न आऊँ, तो समझ लेना, कि मेरी मृत्यु हो गयी।"

इस प्रकार बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे उसे समझा-बुझाकर, अमरदत्तको सेठके हाथोंमें सौंप, दिन रात चलता हुआ मित्रानन्द क्रमसे सोपारकपुर पहुँच गया। वहाँ अपनी अगूठी बेचकर उसने योग्यताके अनुरूप वस्त्रादि लेकर धारण किये और हाथमें ताम्बूलादिक लिये हुए उस कारीगरके घर गया। कारीगरने उसे धनवान समझकर उसकी बड़ी आवभगत की। इसके बाद उसे उत्तम आसन पर बैठा कर उससे आनेका कारण पूछा। तब मित्रानन्दने कहा,—"भाई! मुझे तुमसे एक महल बनवाना है। यदि तुम्हारे पास तुम्हारी कारीगरीका कोई नमूना हो, अथवा तुमने कहीं प्रासाद बनाया हो, तो मुझे दिखलाओ।" इसपर सूत्रधारने कहा,—"सेठजी! पाटलिपुत्र-नगरके बाहरवाले उद्यानमें जो प्रासाद है, वह मेरा ही तैयार किया हुआ है। आपने उसे देखा है या नहीं?" मित्रानन्दने कहा,—"हाँ उसे तो मैंने हालहीमें देखा है, परन्तु उस प्रासादमें जो एक जगह एक पुतली है, वह तुमने किसीका रूप देखकर गढी है, या योंही अपनी कला-कुशलता का चमत्कार दिखलाया है।" कारीगरने कहा,—"अवन्ती नगरीके राजा महासेनकी पुत्री रत्नमञ्जरीका रूप देख करही मैंने यह पुतली गढी है।" यह सुन, मित्रानन्दने कारीगरसे कहा,—"बहुत अच्छा। अब मैं चलता हूँ और एक अच्छा दिन देखकर तुम्हें महलके काममें

हाथ लगानेके लिये बुलवाऊँगा।" यह कह, वह बाज़ारमें चला आया। वहाँ उसने अपने लिये जो अच्छे-अच्छे वस्त्र खरीदे थे, उन्हें बेच डाला और सफ़रकी तैयारी कर, निरन्तर चलता हुआ, क्रमसे एक दिन सन्ध्याके समय उज्जयिनी (अवन्ती) नगरीमें आ पहुँचा।

उज्जयिनीके नगर-द्वारपर बने हुए नगरदेवीके मन्दिरमें जाकर मित्रानन्द बैठाही था, कि उसने नगरमें इस प्रकार ढ्योंडी पिटती हुई सुनी,—"जो कोई आज रातके चारों पहरोंमें इस शवकी रखवाली करेगा, उसे ईश्वर सेठ हज़ार मुहरें देंगे।" यह सुन, मित्रानन्दने पासके ही एक प्रतिहारसे पूछा,—"भाई! इस रातभरकी रखवालीके लिये यह सेठ इतना धन क्यों दे रहा है? इसका कारण क्या है?" यह सुन, द्वारपालने कहा,—"भाई! इस समय इस नगरीमें महामारी फैली हुई है। सेठके घरका कोई आदमी महामारीसे ही मर गया है। लाश उठते-न-उठते सूर्यास्त होगया और सब नगरद्वार बन्द हो गये। अब रातभर इस लाशपर पहरा देनेको कोई तैयार ही नहीं होता; क्योंकि यह महामारीसे मरा है। इसीलिये सेठ इसकी रखवालीके लिये इतना धन दे रहा है।" यह सुन, मित्रानन्दने अपने मनमें विचार किया,—"बिना धनके मनुष्यको किसी काममें सिद्धि नहीं मिलती, इसलिये मैं दिल कड़ा करके यह धन हथिया लूँ, तो ठीक है।" ऐसा विचार कर, मित्रानन्दने साहस धारण किया और धनके लोभसे उस लाशकी रात भर रखवाली करना स्वीकार कर लिया। ईश्वर सेठने उसे आधा धन देकर मुर्देको उसके हवाले किया और आधा सवेरे देनेको कह कर अपने घर चला गया।

मित्रानन्द उस लाशको लेकर रातके समय बड़ी सावधानीके साथ उसकी रखवाली करने लगा। मध्यरात्रिके समय शाकिनी, भूत, वैताल आदि प्रकट होकर तरह-तरहके उपद्रव करने लगे; परन्तु उसने धीरताके साथ सब कुछ सहन करते हुए रात बिता दी और शवकी भली भाँति रक्षा की। इसके बाद जब सवेरा हुआ, तब उस मृतकके स्वजनोंने

आकर उसे श्मसानमें ले जाकर उसका अग्निसंस्कार किया। मित्रानन्दने बाक़ीका धन माँगा, तो ईश्वर सेठ साफ़ मना कर गया। तब मित्रानन्दने कहा,—"अच्छी बात है, यदि यहाँके राजा महासेन न्यायी होंगे, तो मुझे मेरा धन अवश्य ही मिल जायेगा।" यह कह, वह बाजारमें चला गया। वहाँ उसने सौ मुहरें खर्च कर उत्तमोत्तम वस्त्र खरीदे और बढ़िया वेश बनाये हुए वसन्ततिलका नामकी वेश्याके घर पहुँचा। उसे देखतेही वह उठ खड़ी हुई और उसका आदर-सत्कार करने लगी। उसी समय मित्रानन्दने उसे चार सौ मुहरें दे डालीं। उसकी ऐसी बढ़ी-चढ़ी उदारता देख, वसन्ततिलकाकी माँ बड़ीही हर्षित हुई और अपनी बेटीसे जाकर बोली,—"देखना, तू इस पुरुषको भली भाँति अपने वशमें करना। क्योंकि उसने एक मुश्त इतना धन दे डाला है अधिक क्या कहूँ? यह तो कल्पवृक्षही मालूम पड़ता है।" यह कह, उसने स्वयंही मित्रानन्दको नहलाया-धुलाया। इसके बाद सायंकालके समय उत्तमोत्तम शृङ्गारसे सजी हुई, रूप-लक्ष्मीके कारण देवाङ्गनाके समान बनी हुई, विषय-लालसासे मतवाली बनी हुई वसन्ततिलका मित्रानन्दके पास अपूर्व शय्याके ऊपर चली आयी और हाव भाव दिखलाती हुई मधुर वचन बोलने लगी। उस समय मित्रानन्दने अपने मनमें विचार किया,—"विषय-भोगके लोभमें पड़े हुए प्राणियोंकी कार्य-सिद्धि नहीं होती, इसलिये मुझे इस लालचमें नहीं पड़ना चाहिये।" यही सोच कर उसने उस वेश्यासे कहा,—"सुन्दरी! मुझे थोड़ी देर ध्यान करना है, इस लिये एक चौकी ले आओ।" वह तत्काल एक सोनेकी चौकी ले आयी, जिसपर मित्रानन्द पद्मासन मारे, वस्त्रसे अपना सारा शरीर ढाके, ढोंग बनाये बैठ रहा। इसी तरह रातका पहला पहर बीत गया। यह देख, वेश्याने उससे विषय-भोगकी प्रार्थना की, परन्तु वह कुछ भी नहीं बोला, योगीकी तरह मौन साधे ध्यानमग्न हो, बैठा रहा। इसी प्रकार उसने ध्यानमें ही आधी रात बिता दी। प्रातःकाल होतेही वह उठकर शौचादिके लिये गया। वेश्याने रातकी यह सारी कथा अपनी

अम्मासे जाकर कह सुनायी। सुन कर, वह बोली,—"वह जैसा करे, वैसा करने दे और युक्तिपूर्वक उसकी सेवा बजा।" वेश्याने वैसा ही किया। दूसरी रात भी मित्रानन्दने इसी तरह बिता दी। यह सुन कर उस कुट्टिनीने क्रोधके साथ उसकी दिल्लगी उड़ाते हुए कहा,—"वाह साहब! मेरी यह लड़की राजकुमारोंके भी हाथ आनी मुश्किल है और तुम इस प्रकार इसकी उपेक्षा कर रहे हो, इसका क्या कारण है?" यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—"माता! समय आनेपर मैं सब कुछ ठीक-ठिकानेके साथ कर दूँगा; पर पहले यह तो बतलाओ, तुम्हारा राजमहलमें जाना-आना होता है या नहीं?" वह बोली,—"मेरी यह पुत्री राजाके यहाँ चँवर डुलानेपर नौकर है, इसीसे मैं भी जब चाहूँ, तभी—रात हो या दिन सब समय—राजमहलमें आ-जा सकती हूँ। मेरे जाने-आनेमें कोई रोक-थाम नहीं होनेकी।" यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—"हे माता! तब तो तुम राजकुमारी रत्नमञ्जरीको अवश्यही पहचानती होगी?" वह बोली,—"वह तो मेरी पुत्रीकी सखा ही है।" मित्रानन्दने कहा,—"तब तो बुआ! तुम राजकुमारीसे जाकर यह कहो, कि हे सुन्दरी! लोगोंके मुँहसे जिस अमरदत्तके गुणोंका बखान सुनकर तुमने जिसपर प्रीति करनी आरम्भ की और जिसे पत्र लिख भेजा था, उसी अमरदत्तका मित्र यहाँ आया हुआ है।" वेश्याकी माँने यह बात स्वीकार कर ली और उसका सन्देसा लिये हुई राजकुमारीके पास आयी। राजकुमारीने कहा,—"बुआ! आओ, कोई नयी बात सुनाओ।" उसने कहा,—"हे राजकुमारी! आज मैं तुम्हारे पास तुम्हारे प्यारेका सँदेसा लेकर आयी हूँ।" यह सुन, आश्चर्यमें पड़कर राजकुमारीने कहा,—"मेरा प्यारा कौन है?" इसके उत्तरमें उस बुढ़ियाने मित्रानन्दकी कही हुई सब बातें कह सुनायीं। सुनकर राजकुमारीने अपने मनमें विचार किया,—"आज-तक तो इस रूप-रंगका कोई पुरुष मेरा वल्लभ नहीं हुआ; न मैंने किसी-को कभी पत्र लिखा। मुझे अमरदत्तका नामतक नहीं मालूम। यह सब किसी धूर्त्तकी चालबाज़ी मालूम पड़ती है। तो भी चाहे जो कुछ

हो, जिस मनुष्यने यह फन्द-फरेब रचा है, उसे आँखों देख लेना जरूरी है।" ऐसा विचार कर, उसने उस बुढियासे कहा,—"अच्छा, जो आदमी मेरे प्यारेका सँदेसा ले आया है, उसे आज खिड़कीकी राह मेरे पास ले आओ।" यह सुन, बुढ़िया बडी प्रसन्न हुई और मित्रानन्दसे आकर सब हाल कह सुनाया। इससे मित्रानन्दको भी बडा आनन्द हुआ।

रातके समय बुढ़िया मित्रानन्दको राजमहलके पास ले जाकर बोली,—" भद्र! यह सात किलोंसे घिरा हुआ राजमहल है। इसीके अन्दर राजकुमारीका कमरा है। यदि तुममें ऐसी शक्ति हो, तो इसके भीतर चले जाओ।" यह सुन, मित्रानन्दने उस बुढ़ियाको चले जानेकी आज्ञा दे दी और आप बन्दरकी तरह उछल कर सातों किले तड़प कर राजमहलके भीतर प्रवेश किया। उसको इस प्रकार सात क़िले लाँघकर आते देख, उस कुट्टिनीने अपने मनमें विचार किया,—"यह तो कोई बडा ही वीर पुरुष मालूम पडता है। इसके पराक्रमका तो कोई पार-वार ही नहीं है।" ऐसा ही विचार करती हुई वह अपने घर चली आयी। इधर ज्योंही मित्रानन्द राजमहलमें राजकुमारीके महलपर चढा, त्यों ही उसकी यह अनुपम वीरता देख, आश्चर्यमें पडी हुई राजकुमारी नींदका बहाना किये पड रही। उस वीर पुरुषने उसे सोयी हुई देख, उसके हाथसे राजाके नामके चिह्नसे अङ्कित कडा निकाल लिया और उसकी दाहिनी जाँघमें छुरीसे त्रिशूलका निशान बनाकर झटपट राजमहलसे निकलकर, एक देवमन्दिरमें जा, सो रहा। उसके चले जानेपर राजकुमारीने सोचा,—"यह विचित्र चरित्र देखकर तो यह कोई सामान्य मनुष्य नहीं मालूम पडता। यह मैंने बडी भारी मूर्खता की, जो उससे बोली तक नहीं।" इसी तरहके विचारमें डूबी हुई राजकुमारी रातके पिछले पहर निद्राकी गोदमें पड गयी।

प्रात काल होतेही वह वीर पुरुष (मित्रानन्द) राजमन्दिरके द्वारपर जाकर ज़ोर जोरसे पुकार कर कहने लगा,—" अरे बाबा! मेरे ऊपर बडा भारी अन्याय हो गया—बहुत बडा अन्याय!" राजाने जब यह

बात सुनी, तब एक द्वारपालके द्वारा उसे सभामें बुलवा मँगवाया। राजसभामें आतेही मित्रानन्दने राजाको प्रणाम कर फ़र्याद की,—“हे स्वामिन्! आप जैसा प्रचण्ड प्रतापशाली राजा होते हुए भी-ईश्वर सेठ-ने मुझ परदेशीको धोखा दे दिया।” राजाने पूछा,—“उसने तुम्हारे साथ कौनसा धोखा किया?” यह सुन मित्रानन्दने कहा,—“उसने मुझे सारी रात एक मुर्देकी रखवालीके लिये भाड़ेपर रखा; पर वह भाड़ेकी आधी रक़म देकरही रह गया। आधी देनेका नामही नहीं लेता।” यह सुन, राजाने क्रोधित होकर अपने सिपाहियोंको हुक्म दिया,—“तुमलोग अभी जाकर उस दुष्ट बनियेको बाँध लाओ।” राजाके इस हुक्मकी बात सुनकर ईश्वर सेठ स्वयंही रुपया लिये हुए राजसभामें आया और उसने उस परदेशीको पाँचसौ सुनहरी मुँहरे गिनकर दे दीं। इसके बाद सेठने राजासे कहा,—“हे महाराज! उस समय शोकातुर होनेके कारण मैं इस परदेशीको प्रतिज्ञानुसार धन नहीं दे सका। इसके बाद तीन दिन लोकाचारमें ही बीत गये, इसी लिये रुपये अदा करनेमें और भी देर हो गयी।” यह कह राजाको प्रसन्न कर, वह घर चला गया। तब राजाने मित्रानन्दसे शवकी रखवालीका हाल सुनानेके लिये कहा, जिसके उत्तरमें उसने कहा,—“हे राजन्! यदि सचमुच आपको यह बात जाननेका कौतूहल हो, तो सावधान होकर सुनिये। धनके लोभसे शवकी रखवाली करना स्वीकार कर, मैं हाथमें छूरी लिये, रातभर उसी मुर्देके पास बिना सोये ही बैठा रहा। रातके पहले पहरमें बड़े भयङ्कर सियारोंकी बोली सुनाई दी और तत्काल ही मेरे चारों ओर पीले रोंगटेवाले सियार जमा हो गये; पर इससे मुझे ज़रा भी भय नहीं मालूम हुआ। इसके बाद दूसरे पहरमें काले-काले और अतिशय भयङ्कर राक्षस प्रकट होकर ‘किल-किल’ शब्द करने लगे। पर ये भी मेरे सत्त्वके प्रभावसे नष्ट हो गये। तीसरे पहरमें “अरे दास! तू कहाँ जायेगा?” यह पूछती और हाथमें शस्त्र लिये हुई शाकिनियाँ दिखलाई पड़ीं। वे भी मेरे धर्मके आगे नष्ट

होगयीं। इसके बाद, हे राजन्! रातके चौथे पहरमें, दिव्य वस्त्र धारण किये, विविध आभूषणोंसे सुशोभित, देवाङ्गनाके समान रूपवती, मुक्तकेशी; भयङ्कर मुखवाली, हाथमें कर्त्रिका (कत्ता) लिये भय उत्पन्न करती हुई एक स्त्री मेरे पास आकर बोली,—"ठहर जा, रे दुष्ट! मैं अभी तुझे जहन्नुम भेजे देती हूँ।" उसे देखकर मैंने अपने मनमें विचार किया,— "हो न हो, यही महामारी है।" महाराजा! यह विचार मनमें आते ही मैंने बायें हाथसे उसे पकडा और दाहिने हाथसे छुरी मारनेके लिये उठायी। इतनेमें वह मेरे हाथको मरोड कर भागने लगी। बस मैंने उसे भागते-न-भागते उसकी दाहिनी जाँघमें छूरीसे जख्म कर दिया और इसी खैंचातानीमें उसके हाथका कडा मेरे हाथमें चला आया। इसी समय सूर्योदय हो आया।" उसकी ऐसी आश्चर्य-भरी कहानी सुनकर राजाने कहा,—"हे वीर पुरुष! तुमने उस महामारीके हाथसे जो कड लिया, वह मुझे दिखलाओ।" यह सुनतेही उसने झटपट अपने दुपट्टेके छोरमें बँधा हुआ वह कड निकाल कर राजाके हाथमें दे दिया। उस कडे पर अपना नाम देख, राजाने सोचा,— "ऐं। तो क्या मेरी पुत्री ही महामारी है? यह गहना तो उसीका है।" ऐसा विचार मनमें आतेही राजा शौचादिकके बहाने उठे और कन्याके महलोंमें चले आये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा, कि उनकी कन्या सोयी हुई है। उसका दाहिना हाथ खाली है,—उसमें कडा नहीं है। साथही उन्होंने उसकी जाँघमें जख्मपर पट्टी बँधी हुई भी देखी। यह सब देखकर राजाको तो ऐसा दुःख हुआ, मानों उनके सिरपर बिजली गिर पडी हो। उन्होंने सोचा,—"अहा! मेरे इस निर्मल कुलको इस दुष्टा कन्याने कलङ्कित कर दिया! चाहे जैसे हो इसका निग्रह करना अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो यह सारे नगरके लोगोंको मार डालेगी।" ऐसा विचार कर वे फिर सभामें लौट आये और मित्रानन्दसे बोले;— "भाई! यह तो बतलाओ, तुमने जो उस मुर्देकी रखवाली की, वह केवल साहसके ऊपर भरोसा करके की; अथवा तुम कोई मन्त्र भी

है ? इसलिये मुझे तो कुछ दुःख उठाकर भी इसका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। राज्यका लाभ तो सुलभ है; परन्तु ऐसा स्नेही मनुष्य मिलना बड़ा ही दुर्लभ है।" ऐसा विचार कर उसने कहा,— "हे भाग्यवान्! मेरे प्राण भी तुम्हारे अधीन हैं। मैं तुम्हारे साथ चलनेको तैयार हूँ। क्या तुमने नहीं सुना है, कि,—

"अंधो नरिंदचित्तं, वरसायापाणियं च महिला य।
तत्तो गच्छंति फुडं, जत्तो धुत्तेहिं निज्जंति।"

अर्थात्—"अन्धा मनुष्य, राजाका मन, बरसातका पानी और स्त्री इन्हें जिधर धूर्त्त लोग ले जाते हैं, उधर ही ये चले जाते हैं।

यह सुन, अपना मनोरथ सफल हुआ समझकर मित्रानन्दने राजकुमारीसे कहा,— "हे सुंदरी! जब मैं तुम्हारे सिरपर सरसोंके दाने छोड़ूं, तब तुम उनको फूँक मारना।" राजकुमारीने यह बात स्वीकार कर ली। इसके बाद उसने राजाके पास आकर कहा,— "राजन्! मैं इस महामारीको वशमें ला सकता हूँ, पर आप एक तेज चालका घोड़ा मँगवाकर तैयार रखिये, जिसमें मैं उसी पर चढ़ाकर रातोंरात आपके देशसे बाहर ले जा सकूँ। अगर कहीं राहमें सूर्योदय हो गया, तो वह वहीं रह जायगी। यह सुन, डरे हुए राजाने एक हवाकी सी तेज चाल वाला मनोभिष्ट नामक अच्छी नसलका घोड़ा तैयार करवा कर उसके सुपुर्द किया। इसके बाद सन्ध्याके समय राजाके सेवक राजकुमारीको राजाके हुक्मसे बाल पकड़ कर ले आये और मित्रानन्दके हवाले कर दिया। उस समय उसने ज्योंही उसके ऊपर सरसोंके दाने छोड़े, त्योंही वह फुफकार सी छोड़ने लगी। इस पर मित्रानन्दने उसे बड़े जोरसे ललकारा, जिससे वह शान्त हो गयी। इसके बाद उसने राजकुमारीको घोड़े पर बैठा, आगे रवाना कर दिया और आप उसके पीछे पीछे चला। राजा दरवाजे तक उसे पहुँचा कर महलोंमें लौट आये।

इसके बाद मार्गमें जाते-जाते राजकन्याने मित्रानन्दसे कहा,—

जानते हो ? उसने उत्तर दिया,— "हे महाराज ! बाप दादोंके समयसे ही मेरे घरमें तन्त्र-मन्त्र होता चला आया है। मैं मन्त्र भी जानता हूँ ।" यह सुन, राजाने सभासे सब लोगोंको हटाकर एकान्तमें मित्रानन्दसे पूछा,— "भाई ! मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है, कि मेरी ही पुत्री महामारीका अवतार है। इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिये तुम अपनी मन्त्र-शक्तिसे उसे दण्ड दो ।" मित्रानन्दने कहा,—"महाराज ! यह बात तो अनहोनी मालूम पड़ती है। आपके कुलमें उत्पन्न कन्या, भला महामारी कैसे होगी ?" राजाने कहा,— "भाई इसमें अनहोनी कुछ भी नहीं है। क्या मेघसे पैदा हुई बिजली प्राणोंका नाश नहीं कर देती ?" मित्रानन्दने फिर कहा,—"अच्छा, महाराज ! आप कृपाकर मुझे अपनी कन्याको दिखलाइये, जिसमें मैं देखकर इसबातकी जाँच कर लूँ, कि वह मेरे द्वारा साध्य है या नहीं ?" राजाने कहा,—"जाओ तुम वहीं जाकर देख आओ ।" तदनन्तर राजाके हुक्मके मुताबिक वह राजकुमारीके महलमें गया, उस समय राजकुमारीकी नींद टूट गयी थी और वह जगी हुई थी। उसे आते देख, राजकुमारीने सोचा,— "यह तो वही मनुष्य मालूम पड़ता है, जिसने मेरा कड़ा छीन लिया था और छूरीसे मेरी जंघामें घाव कर दिया था। परन्तु यह बेधड़क यहाँ चला आ रहा है, इससे तो मालूम पड़ता है,कि इसे राजाकी आज्ञा प्राप्त हो चुकी है।" ऐसा विचार कर उसने उसको बैठनेके लिये आसन दिया। आसन पर बैठकर उसने कहा,—"राजकुमारी ! मैंने तुम्हारे ऊपर महामारी होनेका बड़ा भारी कलङ्क लगा दिया है, जिससे आज ही राजा तुमको मेरे हवाले करने वाले हैं। इसलिये यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँ और अपने मित्र अमरदत्तसे मिला दूँ। यदि तुम्हें यह बात नहीं पसन्द हो, तो कहो, मैं इतना हो जानेपर भी तुम्हारे ऊपरसे कलङ्क दूर कर यहाँसे चला जाऊँ ।" यह सुन, उसके गुणोंसे प्रसन्न बनी हुई राजकन्याने सोचा,— "अहा ! यह मनुष्य मेरे ऊपर कितना प्रेम रखता

करायी। इसके बाद उसमें आग लगायी गयी। अमरदत्त चिताके पास आकर खड़ा हो रहा। उस समय सेठने उसे रोकते हुए कहा,—"भाई! आज भर ठहर जाओ, क्योंकि आजही अवधिका अन्तिम दिन है।" सेठकी यह बात सुन, और-और लोगोंने भी उसे चितामें कूदनेसे रोका और सबके सब वहीं रह गये। इतनेमें दिनके पिछले पहर मित्रानन्द रत्नमञ्जरीको लिये हुए वहाँ आ पहुचा। उसे आते हुए देख, अमरदत्त बेतहाशा दौड़ा हुआ उसके गले आ लगा। उस समय एक दूसरेसे मिलकर उन दोनों मित्रोंको जो आनन्द हुआ, उसे वे ही दोनों जान सकते हैं, दूसरा कोई कहनेको समर्थ नहीं है। इसके बाद मित्रानन्दने कहा,—"हे मित्र! लो, मैं बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलकर तुम्हारे लिये तुम्हारी इस मनमोहिनीको लेता आया हूँ।" यह सुन, अमरदत्तने कहा,—"तुमने अपना नाम सार्थक कर दिया, क्योंकि तुमने अपने मित्रको सचमुच आनन्द दिया। इसके बाद वहाँपर ईंधन और चिताको दूर कर पाँच लोकपालोंको साक्षी बनाकर उसी अग्निके सामने शुभ समयमे मित्रानन्दने उन दोनोंका ब्याह करा दिया। दोनोंकी योग्य जोड़ी मिल गयी, यह देख, पुरजनोंको भी बड़ा आनन्द हुआ। रत्नमजरीका रूप देख, कुछ लोगोंने कहा,—"इस स्त्रीकी पुतली देखकर यदि यह मनुष्य मोहित हुआ, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।" इस प्रकार उन दोनोंका विवाह हो जानेके बाद उसी स्थान पर अमरदत्तको भाग्यसंयोगसे जो प्राप्त हुआ सो हे सभासदो! तुम लोग ध्यान देकर सुनो—

उसी समय पाटलिपुत्रके राजाकी मृत्यु हो गयी। उनके कोई पुत्र नहीं होनेके कारण राजपुरुषोंने पाँच दिव्योंको अधिवासित किया। प्रातःकाल वे पाँचों दिव्य नगरके सभी तिराहों, चौराहों और चौक वगैरह स्थानोंमें घूमते हुए वहाँ आये, जहाँ अमरदत्त था। उस समय घोड़े आपसे आप हिनहिना उठे, हाथी चिंघाड़ने लगे, छत्र आपसे आप खुल गया, चँवर स्वय ही ढुलने लगे और जलसे भरा हुआ सुवर्ण-

"हे सुन्दर ! तुम भी आकर इसी घोड़े पर बैठ जाओ। ऐसी अच्छी सवारी रहते हुए भी तुम पाँव प्यादे क्यों चलते हो ?" यह सुन, मित्रानन्दने कहा,—"जबतक मैं इस राज्यकी सीमासे बाहर नहीं हो जाता, तबतक मैं पैदलही चलूँगा।" उसके ऐसा कहने पर कुछ देर ठहर कर राजकुमारीने फिर कहा,—"हे भद्र ! अब हमलोग अपने देशकी सीमासे बाहर हो गये, अब तुम भी आकर इसी घोड़े पर बैठ जाओ।" मित्रानन्दने कहा,—"सुन्दरी ! मेरे नहीं बैठनेके कई कारण हैं।" उसने पूछा,—"कौनसा कारण है ?" वह बोला,—"सुन्दरी ! मैं तुम्हें अपने लिये नहीं ले जा रहा हूँ ; बल्कि अपने मित्र अमरदत्तके लिये।" ऐसा कह उसने अपने मित्रकी सारी कथा उसे सुनाते हुए फिरसे कहा,—"हे भद्रे ! इसीलिये मेरा तुम्हारे साथ एक आसन वा शय्या पर बैठना उचित नहीं है।" मित्रानन्दकी ये बातें सुन, विस्मित होकर राजकुमारीने अपने मनमें विचार किया,—"ओह ! इस मनुष्यका चरित्र तो बड़ा ही अलौकिक है। भला जिसके लिये लोग अपने बाप, मा, भाई और मित्रके साथ धोखाधड़ी किये बिना नहीं रहते, वैसी सुन्दर रूपवाली स्त्री पाकर भी यह अपने मनमें उसकी अभिलाषा नहीं करता, यह तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है। यह अवश्य ही कोई महात्मा है। अपने कार्यकी सिद्धिके लिये तो सब लोग दुःख उठानेको तैयार रहते हैं; पर दूसरेके लिये दुःख उठाना किसी बिरले ही पुरुषका काम है।" ऐसा विचार करती हुई राजकुमारी उसके गुणोंपर लट्टू हो गयी। क्रमशः वे दोनों पाटलिपुत्र नगरके पास आ पहुँचे।

इधर दो महीनेकी अवधि बीत जाने पर भी जब मित्रानन्द नहीं आया, तब अमरदत्तने रत्नसार सेठसे कहा,—"हे तात ! मेरा मित्र तो आजतक नहीं आया, इसलिये आप कृपाकर मेरे लिये लकड़ियोंकी एक चिता तैयार कराइये, जिसमें दुःखसे जलता हुआ मैं प्रवेश कर जाऊँ।" यह सुन, सेठको बड़ा दुःख हुआ; परन्तु लाचार उसका बड़ा आग्रह देख, उसने वहाँके कुछ लोगोंके साथ नगरके बाहर जाकर एक चिता तैयार

कलश लेकर हाथीने आपही आप आकर उसके मस्तक पर राज्याभिषेक किया और उसे सूँड़से उठाकर अपनी पीठपर बैठा लिया। इसके बाद बहुतसे मनुष्योंसे घिरा हुआ, पाँच प्रकारके बाजोंके शब्दसे मन-ही-मन परम आनन्द अनुभव करता हुआ अमरदत्त नगरमें आया। उस समय पुर-नारियाँ उसे देखनेके लिये घिर आयीं और दम्पतिकी सुन्दरता देख आपसमें कहने लगीं,—"अहा! इस राजाका रूप कैसा अपूर्व है!" दूसरी स्त्री बोली,—"इस सुन्दरीका सा रूप तो शायद देवलोकमें भी नहीं होता होगा!" तीसरी बोली,—"यह स्त्री बड़ी ही भाग्यवती है; क्योंकि इसने ऐसा गुण और रूपसे सुशोभित स्वामी पाया है।" चौथी बोली,—"यह पुरुष बड़ाही पुण्यात्मा है, जो इसने परदेशमें आकर भी देवाङ्गनाकी सी अनुपम स्त्री प्राप्त की।" और कोई दूसरी स्त्री बोली,—"इसके मित्रकी जितनी प्रशंसा की जाय, कम है; क्योंकि उसने जी-तोड़ परिश्रम करके अपने मित्रके लिये ऐसी सुन्दरी और मृग-लोचनी स्त्री ढूँढ़ निकाली।" फिर दूसरी बोली,—"यह सेठ भी कम बड़ाईके योग्य नहीं है; क्योंकि इस भाग्यवान्ने कुल और शील जाने बिना ही इसे अपने पुत्रकी तरह रखा।" इसी प्रकारकी पुर-स्त्रियोंकी बातें सुनता हुआ अमरदत्त राजमहलके द्वार पर आया और हाथीसे नीचे उतर, राज-मण्डलसे सेवित होकर राजसभामें जा, सिंहासन पर बैठ रहा। रानी रत्नमञ्जरी और मित्र मित्रानन्द उसके सामनेही बैठे। और-और लोग भी अपने-अपने योग्य स्थानोंपर बैठ गये। इसके बाद मन्त्री और सामन्तोंने मिल-जुलकर उसका राज्याभिषेक करके प्रणाम किया। राजा होने पर उसने रत्नमञ्जरीको पटरानी बनाया, बुद्धिमान् मित्रानन्दको सारे राज्यकी मुद्राओंका अधिकारी बनाया और सेठ रत्नसारको पिताकी जगह पर माना। इस प्रकार उचित व्यवस्था कर कृतज्ञोंमें शिरोमणि अमरदत्त राजा न्याय-पूर्वक अपने अखण्डित राज्यका पालन करने लगा।

मित्रानन्द राजकाजमें फँसे रहने पर भी अपनी मृत्युकी सूचना देनेवाली उस लाशकी बातको नहीं भूलता था। इसीसे वह मन-ही-मन

सुख-चैन नहीं पाता था। एक दिन उसने राजा अमरदत्तसे निवेदन किया,—"हे राजन् ! उस शवकी वह बात, जो उसने मेरी मृत्युके विषयमें कही थी, मुझे कभी नहीं भूलती। उसीके लिये तो मैंने अपना देश छोड़ रखा है।" यह सुन, राजाने कहा,—"हे मित्र ! तुम खेद न करो; वह सब भूतलीला मात्र थी।" मित्रानन्दने कहा,—"निकटताके कारण यहाँ रहनेपर भी मेरा मन दुःखित होता रहता है, इसलिये मुझे कुछ दूर भेज दो।" यह सुन, राजाने कुछ विचार करनेके बाद कहा,—"हे मित्र ! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो तुम कुछ विश्वासी मनुष्योंके साथ वसन्तपुर चले जाओ।" इसके बाद मित्रानन्द तैयार होकर वसन्तपुरकी ओर चला। राजाने अपने आदमियोंको भी उसके साथ रवाना कर दिया। साथ ही उन्हें जाते समय यह भी कहा, कि "तुममेंसे कोई एक आदमी वसन्तपुर पहुँचनेके बाद यहाँ आकर मित्रानन्दका कुशल-समाचार मुझे सुना जाना।" उन आदमियोंने "बहुत अच्छा" कहकर राजाकी आज्ञा स्वीकार कर ली।

इधर राजा अमरदत्त मित्रके वियोगसे विह्वल होते हुए भी पुण्योंके प्रभावसे प्राप्त राजलक्ष्मीको रानीके साथ भोगते रहे। बहुत दिन बीत जानेपर भी राजाके भेजे हुए आदमियोंमें से कोई लौटकर नहीं आया, इसलिये राजाने कुछ अन्य मनुष्योंको उधरकी ओर भेजा। कुछ दिन बाद वे लौट आये और राजासे बोले,—"हे स्वामिन् ! हम लोग वसन्तपुर तक जाकर लौट आये, पर कहीं मित्रानन्द नहीं नजर आये, न उनका कुछ समाचार कहीं सुननेमें आया।" यह सुन, अपने मनमें परम व्याकुल होकर अपनी रानीसे कहा,—"प्रिये ! अब मैं क्या करूँ ? मित्रका तो कुछ पताही नहीं लगता।" रानी बोली,—"हे स्वामी ! यदि कोई ज्ञानी पुरुष यहाँ आ जाये, तो संशय दूर हो, और तो कोई उपाय इस संशयके दूर होनेका नहीं मालूम पडता।" वे दोनों इस तरहकी बातें करही रहे थे, कि अकस्मात् बागके मालीने आकर कहा,—"हे राजन् ! चार प्रकारके ज्ञानको धारण करनेवाले श्रीधर्मघोष नामक सूरि,

श्रीमान्‌के नगरसे बाहरवाले उद्यानमें, जिसका नाम अशोकतिलक है, पधारे हैं और लोगोंको धर्मका उपदेश कर रहे हैं।" यह सुनतेही राजाने उस मालीको पाँचों अंगोंके आभूषण इनाममें दिये। वे जिनकी राह देख रहे थे, उन्हीं गुरुके आगमनकी बात सुन उनके चित्तमें बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई। इसके बाद वे बहुतसी सामग्रियाँ साथ लिये, पटरानी समेत गुरुकी वन्दना करने गये। वहाँ पहुँच राजाने खड्ग, छत्र, आदि राज्यके चिह्नोंको दूर फेंक, गुरुकी तीन बार प्रदक्षिणा और उत्तरासङ्ग कर, विधि-पूर्वक उनकी वन्दना की। इसके बाद वे परिवार सहित उचित स्थान पर बैठे। गुरु महाराजने कहा,—"हे राजन् बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये, कि सब दुःखोंका नाश करनेवाले और सब सुखोंके देनेवाले धर्मकी सेवा करें।"

इसी समय अशोकदत्त नामक एक बड़े भारी सेठने गुरुसे पूछा,—"हे पूजनीय! मेरे अशोकश्री नामकी एक पुत्री है। वह न मालूम किस कर्मके दोषसे शरीरसे बहुत ही दुःखी होरही है? कृपाकर बतलाइये, कि बड़े-बड़े उपचार करनेपर भी उसका रोग तनिक भी कम क्यों नहीं होता?" सूरिने कहा,—"सेठजी! तुम्हारी यह पुत्री पूर्व भवमें भूतशाल नामक नगरके भूतदेव नामक सेठकी कुसुमवती नामक स्त्रीथी। एक दिन उसके घरमें रखा हुआ दूध बिल्ली पी गयी। यह देख, कुसुमवतीने क्रोधमें आकर अपनी देवमती नामक पुत्रवधूसे कहा,—"अरी, क्या तेरे सिर डाकिनी सवार हो गयी है, जो तू इस प्रकार दूधसे बेखबर हो रही?" यह सुन, वह बेचारी बालिका डर गयी और थर-थर काँपने लगी। यह हाल देख, उसी समय उसीके घरके पास खड़ी एक चंडालकी स्त्रीने, जो डाकिनीका मन्त्र जानती थी, बहाना पाकर उस बहूके शरीरमें डाकिनी प्रविष्ट करदी, जिससे वह बड़ा दुःख पाने लगी। बहुतेरे वैद्योंने उसकी चिकित्सा की; पर वह किसीसे अच्छी नहीं हुई। एक दिन एक योगी वहाँ आ पहुँचा। उसने मंत्रके बलसे अग्निमें अपना यन्त्र तपाया। बस तत्कालही वेदनाके मारे तड़पती हुई वह चण्डा-

लिनी चाल खोले वहाँ आ पहुँची। योगीने पूछा,—"तूने इस वेचारी वहूके शरीरमें क्यों डाकिनी प्रविष्ट कर दी?" वह बोली,—"इसकी सासने ऐसीही बात इसे कही थी, जिसे सुनकर यह वेचारी डरके मारे थर-थर काँपने लगी थी। बस यही मौका देखकर मैंने इसके शरीरमें डाकिनी प्रविष्ट कर दी।" यह सुनकर, योगीने अपने मन्त्रके बलसे उस डाकिनीको वहूके शरीरसे बाहर निकाल डाला। यह समाचार पाकर उस नगरके राजाने उस चण्डालकी स्त्रीको देश-निकाला दे दिया और लोग कुसुमावतीकी सासको काल-जिह्वा कहने लगे। इस तरह बुरा नाम धराकर वह वेचारी संसारसे विरक्त हो गयी और एक साध्वीसे दीक्षा ग्रहण कर, शुभ-भाव-युक्त हो, चारित्र पालन करती हुई मरकर स्वर्ग चली गयी। वहींसे च्युत होकर वह तुम्हारी पुत्री हुई है। उसने पूर्व भवमें जो दुष्ट वचन कहा था, उसको उसने गुरुसे नहीं विचरवाया, इसीसे वह इस समय आकाशदेवीके दोषसे दूषित हो रही है। इसलिये सेठजी! तुम अपनी पुत्रीको यहाँ ले आओ। मेरा वचन सुनकर उसे जातिस्मरण उत्पन्न होगा, जिससे उसे पूर्व भवकी बातें स्पष्ट दिखायी देने लगेंगी और वह तत्काल दोषसे मुक्त हो जायेगी। सूरिके ऐसे वचन सुन, सेठ तुरत ही अपनी पुत्रीको गुरुके पास ले आया। उसी समय गुरुके प्रभावसे आकाशदेवी जाती रहीं, अपना चरित्र सुनकर उसे जातिस्मरण हो आया और पूर्व भवकी बातें मालूम कर बोली,—"हे प्रभु! आपने जो कुछ कहा, वह ठीक है। अब मुझे इस संसारमें रहनेको जी नहीं चाहता, इसलिये मुझे दीक्षा दे दीजिये।" इसपर गुरुने कहा,— "हे सुन्दरी! अभी तुम्हें अपने कर्मोंके फल भोगने बाकी हैं, इसीलिये तुम उन्हें भोग लेनेके बाद चारित्र ग्रहण करना।"

यह सुनकर उस सेठने गुरुकी वन्दना कर, कुछ धर्मकी बातें करनी अङ्गीकार कर, पुत्रीके साथ घरकी राह ली।

यह सब हाल सुनकर राजाने सोचा,— "देखना है, कि इस

संसारमें हमारे इन गुरु महाराजका ज्ञान बड़ा ही अद्भुत है। इन्होंने इस सेठकी लड़कीके पूर्व जन्मकी बात आँखों देखी बातकी तरह साफ-साफ बतला दी। ऐसा विचार कर राजाने गुरुसे पूछा, "हे भगवन्! कृपाकर मेरे प्राणप्रिय मित्र मित्रानन्दका समाचार मुझे सुनाइये।" यह सुन, गुरुने कहा,—

"हे राजन्! तुम्हारा वह मित्र तुम्हारे पाससे चलकर क्रमशः जल-दुर्गका उलङ्घन कर, स्थल दुर्गमें गया। वहीं अरण्यमें किसी पर्वतसे जहाँ नदी झरती थी, वहीं तुम्हारा मित्र अपने सब साथियों समेत भोजन करने बैठा। सब सेवक भी भोजन करने लगे। इसी समय अकस्मात् भीलोंने उन पर धावा कर दिया और उन प्रचण्ड भीलोंके सामने सब वीर परास्त हो गये। यह हाल देख, डरके मारे मित्रानन्द अकेला भाग गया। उसके सेवकोंमेंसे भी कुछ लोग भाग गये और कुछ मरकर वहीं खेत रहे। जो भागे, वे शर्मके मारे फिर नहीं लौटे और जो मरे, वे वहीं पड़े रहे। उधर तुम्हारा मित्र भागता-भागता जङ्गलमें एक जगह सरोवर देख, उसका जल पी, एक बड़के पेड़के नीचे सो रहा, इतनेमें उस पेड़के कोटरमेंसे निकलकर एक काले नागने उसे काट खाया। थोड़ी ही देरमें कोई तपस्वी वहाँ आया। उसने तुम्हारे मित्रकी वह अवस्था देख, जलको मन्त्रित करके उसके अंगोंपर छिड़क दिया। इससे उसकी जान लौट आयी। तब योगीने पूछा,—"हे भाई! तुम अकेले कहाँ जा रहे हो?" इस पर उसने अपनी राम-कहानी ज्योंकी त्यों कह सुनायी। सुनकर तपस्वी अपने स्थानको चले गये। मित्रानन्दने सोचा,—"यह देखो, मैं मृत्युका कारण उपस्थित हो जानेपर भी नहीं मरा और झूठमूठ हठ करके मित्रका भी साथ छोड़ आया। अच्छा, चलो, मित्रके ही पास चलूं।" ऐसा विचार कर वह तुम्हारे पास आने लगा। रास्तेमें उसे चोरोंने पकड़ लिया और उसको अपने गाँवमें ले गये। इसके बाद उन्होंने उसको गुलामों-का व्यापार करने वालोंके हाथ वेंच दिया। वे व्यापारी पारसकुल नामक

परदेशको चले जा रहे थे। जाते-जाते वे उज्जयिनी नगरके बाहर बागीचेमें रातको टिक रहे। आधी रातके समय बन्धन कुछ शिथिल होनेके कारण मित्रानन्दने उससे शीघ्र छुटकारा पा लिया और भागते-भागते नगर की मोरीकी राहसे नगरमें प्रवेश किया। उस समय उस नगरीमें चोरोंका बड़ा उपद्रव जारी था, इसलिये चोरोंका दमन करनेके निमित्त राजाने कोतवाल पर कड़ी ताकीद कर रखी थी। दैवयोगसे स्वयं कोतवाल-ने ही मित्रानन्दको इस प्रकार चोरोंकी तरह शहरमें घुसते देख लिया। अतएव उसने तुम्हारे मित्रकी मुश्कें कसवा कर, बेंतों और घूंसोंसे उसकी पूरी तरह मरम्मत करा, अपने सेवकोंके हाथमें वध करनेके लिये सौंप दिया और कहा,—"इसे क्षिप्रा-नदीके तीरपर ले जाकर बड़के पेड़से लटकाकर मार डालो, जिसमें औरोंकी आँखे खुल जायें।" सेवकोंके साथ जाते हुए तुम्हारे मित्रने विचार किया,—"उस दिन मुर्देने जो बात कही थी, वह आज सच निकली। शास्त्रमें कहा है, कि

यत्र वा तत्र वा यातु, यद्वा तद्वा करोत्वसौ।
तथापि मुच्यते प्राणी, न पूर्वकृतकर्मणा॥ १॥

विभवो निर्धनत्वं च, बन्धनं मरणं तथा।
येन यत्र यदा लभ्यं, तस्य तत्तत्तदा भवेत्॥ २॥

याति दूरमसौ जीवोऽपायस्थानाद्भयद्रुत।
तत्रैवानीयते भूयो ऽसिनवप्रौढकर्मणा॥ ३॥

अर्थात्—"प्राणी चाहे जहाँ जाये या जो कुछ करे, परन्तु पूर्वमें किये हुए कर्मसे उसका छुटकारा होना असम्भव है। वैभव, निर्धनता, बन्धन और मरण—ये चारों चीजें जिस प्राणीको, जिस स्थान पर और जिस समय मिलने वाली होती हैं, उसको, उसी स्थान पर और उसी समय प्राप्त हुआ करती हैं। दुःखके स्थानसे डरकर प्राणी चाहे जितनी दूर भागजाये, परन्तु उदित कर्मोंके प्रभावसे वह फिर वहीं आ जाता है।"

इस प्रकार विचार करते हुए मित्रानन्दको कोतवालके सेवकोंने निरपराधही वड़के पेड़में लटका कर फाँसी दे दी, जिससे वह मृत्युको प्राप्त हो गया। तदनन्तर एक दिन ग्वालोंके लड़के गिल्ली-डण्डा खेलते हुए वहाँ आ पहुंचे और पूर्व कर्मके योगसे उनकी गिल्ली तुम्हारे मित्रके मुखमें चली गयी।"

इस प्रकार गुरु महाराजके मुखसे मित्रका वृत्तान्त श्रवण कर, उसके गुणोंका स्मरण करते हुए राजा अमरदत्त बड़े ज़ोर-ज़ोरसे सिसकने लगे और रत्नमञ्जरी देवी भी उसके गुणोंको याद करके बड़ी दुःखित हुई। उन दोनोंको विलाप करते देखकर गुरुने कहा,—"दुःख छोड़ कर संसारके स्वरूपकी चिन्ता करो। इस चार प्रकारकी गतिवाले संसारमें प्राणियोंको वास्तविक सुख तो लेशमात्र नहीं होता और दुःख बराबर ही मिलता रहता है। संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं, जिसे मरणकी वेदना न सहन करनी पड़ी हो। चक्रवर्त्ती और वासुदेवके से महापुरुषोंको भी मृत्युने नहीं छोड़ा। इसलिये हे राजन्! शोक छोड़ो और धर्म-कर्ममें लग जाओ, जिसमें फिर इस तरहका दुःख न हो।" राजाने फिर पूछा,—"हे भगवन्! मैं धर्म करूँगा; पर आप यह तो बतलाइये, कि मित्रानन्द मरकर कहाँ पैदा हुआ है।" सूरिने कहा,— "हे राजन्! तुम्हारी इस रानीकी कोखमें मित्रानन्दका जीव पुत्ररूपसे आया है; क्योंकि उसने मरते समय इसी तरहकी चिन्ता की थी। समय पूरा होने पर वह पुत्र संसारमें उत्पन्न होगा। उसका नाम कमलगुप्त रखना। वह पहले कुमार-पदवी पाकर फिर राजा होगा।"

यह सुन, राजाने पूछा,—"हे महात्मा! मित्रानन्दकी बिना किसी अपराधके ही चोरकी तरह मृत्यु क्यों हुई? रत्नमञ्जरी रानीको महामारी कलङ्क क्यों लगा? मुझे बाल्यावस्थासे ही बन्धु-वियोग क्यों अनुभव करना पड़ा? और हम दोनोंमें इतना अधिक स्नेह होनेका क्या कारण है?"

राजाके ये प्रश्न सुन, मुनिने अपने ज्ञानके द्वारा उन बातोंको

मालूम कर कहा,— "हे राजन्! सुनो—इस भवसे तीन भव पहले तुम क्षेमङ्कर नामके एक कृषक थे। तुम्हारी पत्नीका नाम सत्यश्री था। तुम्हारे यहाँ चण्डसेन नामका एक नौकर था। वह नौकर अपने स्वामी पर बडी भक्ति तथा प्रीति रखता और साथही बडा विनयी था। एक दिन उस नौकरने अपने खेतमें काम करते हुए पास वाले किसी खेतमें एक मुसाफ़िरको अनाजकी बालें तोडते देखा। यह देख तुम्हारे उस नौकरने कहा,—"रहो, मैं इसी चोरको पकड़ कर वृक्षसे लटकाये देता हूँ।" यह सुनकर भी उस क्षेत्रके स्वामीने उसे कुछ नहीं कहा। यह देख, उस मुसाफिरने, उस नौकरकी बातोंसे मन-ही-मन दु:खित होकर विचार किया,—"खेतका मालिक तो कुछ बोलता ही नहीं और यह पापी दूसरे खेतमें रहता हुआ भी कैसे कठोर वचन बोल रहा है?" ऐसा विचार करता हुआ वह अपने घर चला गया। इस प्रकार उस कर्मकरने कठोर वचन बोलकर दुःखदायी कर्मका उपार्जन किया।

एक दिन भोजन करते समय जल्दबाजीके मारे उस कृषककी पुत्र-वधूके गलेमें कौर अटक गया। इसपर उस कृषककी पत्नी सत्यश्रीने कहा,—"अरी, राक्षसी! तू छोटे-छोटे कौर क्यों नहीं खाती, जिससे गलेमें न अँटके?" इसके बाद एक दिन उस कृषकने नौकरसे कहा,—"हे भृत्य! आज तुम्हें एक गाँवमें एक जरूरी कामके लिये जाना है, इस लिये तुम वहीं जाओ।" इसपर उस नौकरने कहा,—"आज तो मैं अपने स्वजनोंसे मिलनेके लिये जाना चाहता हूँ, इसलिये आज तो नहीं जाऊँगा" यह सुन, कृषकने बिगड कर कहा,—"आज तो तुम्हें अपने स्वजनोंसे मिलनेके लिये नहीं जाना होगा।" यह सुनकर उस नौकरको दुःख तो जरूर हुआ पर लाचार अपने स्वजनोंसे मिलने न जाकर वहीं रह गया। दूसरे किसी दिन उस कृषकके घरपर दो मुनि भिक्षा करने आये। कृषकने अपनी स्त्रीसे कहा,—"इन मुनियोंको दान दो।" यह सुन, वह मन-ही मन बडी हर्षित हुई और भाग्य-योगसे ऐसे सुपात्रोंका आना हुआ,

यही सोचकर शुभ भावनाओंसे युक्त हो, सुन्दर अन्न-जलसे उनको सन्तुष्ट किया। यह देख, पास ही खड़े उस नौकरने सोचा,—"ये स्त्री-पुरुष धन्य हैं, जिन्होंने अपने घर आये हुए महामुनियोंका इस प्रकार भक्ति-पूर्वक आदर-सत्कार किया।" इसी समय एकाएक उन तीनोंके सिर पर बिजली गिर पड़ी, जिससे वे तीनों एकही साथ मर गये और सौधर्म नामक पहले देव-लोकमें अत्यन्त प्रीतियुक्त देव हुए। वहाँसे च्युत होकर क्षेमङ्करका जीव तो तुम्हारे शरीरमें आया, सत्यश्री रानी रत्नमंजरी हुई और वह नौकरही तुम्हारा मित्र मित्रानन्द था, जो जीव पूर्व भवमें जैसा कर्म बाँधता है, उसको इस भवमें वैसाही प्राप्त होता है। पूर्व भवमें जो कर्म हँस-हँस कर बाँधा जाता है, उसका फल इस भवमें रो-रोकर भोगना पड़ता हैं।" इस प्रकार अपने पूर्व भवकी कथा सुन कर राजा और रानी तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़े। इसी समय उन्हें जाति-स्मरण हो आया और वे अपने पूर्व भवका सारा हाल प्रत्यक्ष देखने लगे। इसके बाद होशमें आनेपर राजाने कहा,—"हे भगवन्! ज्ञानरूपी सूर्यके समान आपने जो कुछ कहा, वह मैंने भी प्रत्यक्ष देख लिया। अब कृपाकर मुझे वह धर्म बतलाइये, जिससे धर्ममें मेरी योग्यता बढ़े।"

गुरुने कहा,—"हे राजन्! जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो, तब तुम चारित्र ग्रहण कर लेना। अभी तुमको श्रावक-धर्म ग्रहण करना चाहिये।" यह सुनकर राजाने रानीके साथ-ही-साथ बारह प्रकारका श्रावक-धर्म ग्रहण किया। इसके बाद राजाने गुरुसे पूछा,—"उस समय जिस मुर्देने मित्रानन्दको वह बात कही थी, वह कहनेवाला कौन था?" सूरिने कहा,—"वह अनाजकी बालोंका चोर मुसाफ़िर क्रमशः मृत्यु होनेपर संसारमें भ्रमण करता हुआ उस बट-वृक्षपर जाकर प्रेत हो गया। उसने जब उस दिन मित्रानन्दको देखा, तब पूर्वजन्मका वैर याद हो जानेके कारण उस मुर्देके मुखमें उतर कर वैसा वचन बोल गया।" यह सुन, राजा अमरदत्तके सारे सन्देह दूर हो गये और वे रानी सहित सूरिको प्रणाम कर घर चले गये। गुरु भी अन्यत्र विहार कर गये।

इसके बाद समय पूरा होनेपर रानी रत्नमञ्जरीके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम वही रखा गया, जो गुरुने बतलाया था। धात्रीसे पालित होता हुआ वह राजकुमार क्रमश बाल्यावस्था बिताकर, बहत्तर कलाओंका अभ्यास कर, राज्यका भार सँभालने योग्य हो गया। इसी समय एक दिन वही गुरु फिर वहाँ पधारे। मालीने आकर राजासे गुरुके आगमनकी बात कही। बस उसी समय राजाने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप, रानीके साथ ही वैराग्यकी दीक्षा ग्रहण कर ली। धर्मघोष सूरिने राजा और रानीको प्रव्रज्या देकर प्रतिबोधके निमित्त सभाके समक्ष इस प्रकारकी शिक्षा दी,—"इस संसार-रूपी समुद्रको तरनेके लिये यह दीक्षा नौकाके समान है और बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है। इसे प्राप्त कर जो जीव विषयोंके लोभमें पड़ता है, वह जिनरक्षितकी तरह घोर ससार-सागरमें पड़ता और जो प्राणी प्रार्थना करने पर भी विषयसे विमुख रहता है, वह जिनपालितके समान सुखी होता है।" यह सुन, राजर्षि अमरदत्तने गुरुसे पूछा,—"जिनरक्षित और जिन पालितने किस प्रकार सुख और दु ख पाया, इसका हाल कृपाकर बतलाइये।" यह सुन, गुरुने सिद्धान्त ग्रन्थोंमें कही हुई उनकी कथा इस प्रकार कह सुनायी:—

जिनरक्षित और जिनपालितकी कथा

चम्पापुरीमें जितशत्रु नामके राजा थे। उनकी रानीका नाम धारिणी था। उसी नगरमें माकन्दी नामका एक धनी सेठ रहता था। वह शान्त, सरल हृदय, और उदार बुद्धिवाला मनुष्य था। उसकी स्त्रीका नाम भद्रा था। उसके दो लड़के थे, जिनमें एकका नाम जिनरक्षित और दूसरेका जिनपालित था। वे जब युवावस्थाको प्राप्त हुए, तब जहाज पर चढ़कर परदेश जाने और धन कमाने लगे। इस प्रकार उन्होंने ग्यारह बार समुद्र-यात्रा सानन्द सम्पन्न की और धन भी खूब कमाया।

गयी और उनके शरीरसे अशुभ पुद्गल निकाल कर, शुभ पुद्गलोंका प्रक्षेप कर, उन दोनोंके साथ मनमाने तौरसे विषय-सुख भोगने लगी। वह उन दोनोंको सदा अमृत-फल खानेको देती थी। इसी तरह वे कुछ दिनों तक वहाँ बड़े सुखसे रहे। एक दिन देवीने उनसे आकर कहा,— 'लवण-समुद्रके अधिष्ठाता सुस्थित नामक देवने मुझे आज्ञा दी है, कि तुम इस समुद्रको इक्कीस बार इसके अन्दरसे कूड़ा-कचरा निकाल कर शुद्ध करदो। समुद्रमें जो कुछ तृण, काष्ठ और अन्य अपवित्र पदार्थ हो, उन सबको निकाल कर किसी एकान्त स्थानमें फेंक दो।' उनका यह हुक्म पाकर मैं अब वहीं जा रही हूँ। तुम दोनों आनन्द यहीं पड़े रहो। यही सुन्दर फल खाकर तुम अपना पेट भरना। कदाचित यहाँ अकेले रहते-रहते तुम्हारा जी उचट जाये, तो तुम क्रीडा करनेके निमित्त पूर्व दिशामें जो वन है, उसीमें चले जाना। उस वनमें निरन्तर ग्रीष्म और वर्षा—ये दो ऋतुएँ छायी रहती हैं। वहाँ दो ऋतुएँ होनेके कारण तुम्हारा जी खूब लगेगा। पर यदि वहाँ भी तुम्हारा मन न लगे, तो मैं आज्ञा देती हूँ, कि तुम उत्तर दिशावाले वनमें चला जाना, जहाँ शरद् और हेमन्त, ये दो ऋतुएँ सदा बनी रहती हैं और अगर वहाँ भी मनको तुष्टि न प्राप्त हो, तो पश्चिम दिशावाले वनमें चले जाना, वहाँ शिशिर और वसन्त—ये दो ऋतुएँ निरन्तर वर्त्तमान रहती हैं'। वहाँ जाकर मनमानी मौज करना, परन्तु दक्षिण दिशावाले वनमें तो हर्गिज न जाना, क्योंकि वहाँ बड़ा भारी दृष्टिविष नामका एक काला सर्प रहता है।"

यह कह, वह देवी चली गयी। उसके जाने बाद वे दोनों सेठके बेटे देवीके बतलाये हुए तीनों वनोंमें आनन्दसे विहार करने लगे। एक दिन उन दोनोंने सोचा,— "देवीने हमें दक्षिण-दिशाके वनमें नहीं जानेके लिये इतना जोर देकर क्यों कहा? इसका कारण क्या है?" इसलिये चलो, एक बार चलकर देखें तो सही, कि वहाँ क्या है?" ऐसा विचार कर वे सशङ्कित-चित्तसे उस वनमें गये। वहाँ पहुँचते ही

इसके बाद जब वे बारहवीं बार धन कमानेके लिये जलके मार्गसे जानेको तैयार हुए, तब उनके पिताने कहा,—"पुत्रो! अपने घरमें धनकी कोई कमी नहीं है। तुम लोग जैसे चाहो, इस धनको दान और भोगमें ख़र्च करो। ग्यारह बार तो तुम लोग क्षेम-कुशलसे यात्रा कर आये; पर कहीं इस बार विघ्न हुआ, तो ठीक नहीं होगा, इसलिये बहुत लोभ करना उचित नहीं। यदि मेरी बात मानो, तो तुम लोग घरही रहो।" पिताकी यह बात सुन, उन दोनोंने कहा,—"पिताजी! ऐसी बात न कहिये। इस बारकी यात्रा भी आपकी कृपासे सकुशलही बीतेगी।" यह कह कर उन दोनोंने किरानेका बहुतसा माल जहाज़ पर लादा और जल, ईंधन इत्यादि सामग्रियोंके साथ जहाज़ पर सवार हो, समुद्रकी राह चल पड़े। क्रमशः वे मध्य समुद्रमें आ पहुँचे। इतनेमें मेघ घिर आनेसे अन्धकार होने लगा, आकाशमें बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी और बड़े ज़ोरकी आँधी चलने लगी। दैव-योगसे वह जहाज़ क्षण भरमें टूट गया। जहाज़ पर जितने लोग सवार थे, वे सबके सब डूब गये। उस समय जहाज़के स्वामी जिनपालित और जिनरक्षितको एक तख्ता हाथ लग गया, जिसे उन्होंने बड़ी मज़बूतीसे पकड़ लिया। उसेही पकड़े हुए वे तीसरे दिन रत्नद्वीपमें आ निकले। वहाँ पहुँच कर वे नारियलके फल खा-खाकर जीवन-निर्वाह करने लगे और नारियलका तेल शरीरमें लगाकर सुन्दर देहवाले होकर वहीं रहने लगे।

एक दिन कठोर, निर्दय और तीक्ष्ण खड्ग हाथमें लिये, उस द्वीपकी अधिष्ठात्री देवीने उनके पास आकर कहा,—"यदि तुम मेरे साथ विषय-भोग करो, तब तो तुम यहाँ कुशलसे रह सकोगे, नहीं तो मैं इसी खड्गसे तुम्हारे सिर काट डालूँगी।" यह सुन, उन्होंने भयभीत होकर कहा,—"हे देवी! अपने जहाज़के टूट जानेसे हम यहाँ तुम्हारी शरणमें आ पहुँचे हैं। अब जो कुछ तुम्हारी आज्ञा होगी, वह करनेके लिये हम तैयार हैं।" यह सुन, प्रसन्न होकर वह देवी उनको अपने घर ले

उनकी नाकमें कड़ी दुर्गन्ध पहुँची। वे दुपट्टेसे नाक बन्द किये आगे बढ़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मनुष्यकी हड्डियोंका ढेर देखा। उसे देखकर उन्हें बड़ा डर हुआ। तो भी वे आगे जाकर जङ्गलकी सैर करने लगे। इतनेमें एक आदमी फाँसीसे लटका हुआ विलाप करता दिखाई दिया। उन्होंने उसके पास जाकर पूछा,—"हे भाई! तुम कौन हो? तुम्हारी ऐसी दशा किसने की? यहाँ जो चारों ओर मनुष्योंके मुर्दे दिखाई देते हैं, उसका क्या कारण है?" यह सुन, वह सूलीपर लटका हुआ मनुष्य बोला,—"मैं काकन्दी-नगरका रहनेवाला, जातिका बनियाँ हूँ। दैवयोगसे मार्गमें जहाज़ टूट जानेसे मैं एक तख्ता पकड़े हुए रत्नद्वीपमें आ निकला। वहाँकी विषय-भोगके लिये मतवाली बनी हुई देवीने मुझे विषय-भोगके लिये रख छोड़ा। कुछ दिन बीतने पर उसने थोड़ेसे अपराधके कारण मुझे इस प्रकार शूली पर लटका दिया। ये सब मुर्दे भी उसीके मारे हुए हैं। मालूम होता है तुम भी उसी दुष्टा देवीके चक्करमें आ फँसे हो। भला यह तो बतलाओ, तुम यहाँ कैसे आये?" इसके उत्तरमें उन दोनोंने भी अपनी सारी राम-कहानी उसे सुना कर पूछा,—"भाई! अब यह तो बताओ, कि हम यहाँसे किसी प्रकार जीते-जागते निकल भी सकते हैं या नहीं?" उसने कहा,—"हाँ एक उपाय है। यहाँसे पूर्वकी ओर एक वन है, जिसमें शैलक नामक एक यक्ष रहता है। वह पर्वके दिन अश्वका रूप बनाकर पूछता है, कि मैं किसकी रक्षा करूँ? किसे विपद्के मुँहसे बचाऊँ? तुम दोनों उसी यक्षकी भक्ति पूर्वक आराधना करो। जिस दिन वह तुमसे आकर पूछे, कि किसकी रक्षा करूँ? उस दिन तुम उससे कहना, कि हमारी रक्षा करो। इस प्रकार वह तुम्हारी रक्षा करनेको प्रस्तुत हो जायेगा।" यह कह, वह उलटा टँगा हुआ मनुष्य मर गया।

तदनन्तर वे दोनों भाई उस मनुष्यके बतलाये हुए वनमें आकर मनोहर पुष्पोंसे उस यक्षकी पूजा-अर्चा करने लगे। इसी प्रकार करते



अरे! तुम लोग क्यों मुझे इस तरह छोड़कर भागे जा रहे हो? अगर तुम्हें जानेकी इच्छा ही हो, तो मेरे साथ चलो, नहीं तो मैं खड्गसे तुम्हारा सिर उतार लूंगी। (पृष्ठ १०७)

हुए पर्वका दिन आ पहुँचा। उस दिन यक्षने आकर पूछा,—"बोलो, मैं किसकी रक्षा करूँ? किसे आपत्तिसे बचाऊँ?" इतनेमें उन दोनोंने झटपट कहा,—"हे यक्षराज! हमें दुःख सागरमें डूबनेसे बचाओ।" यह सुन, शैलकने कहा,—"मैं तुम्हें दुःखसे जरूर उबारूँगा पर तुम सावधान होकर मेरी एक बात सुनो। मैं जब तुम्हें यहाँसे ले चलूँगा, तब वह देवी भी तुम्हारे पीछे पीछे आयेगी और मीठे-मीठे वचन सुनायेगी। उस समय यदि तुम उसकी चिकनी-चुपडी बातोंसे मनमें पसीज उठोगे, तो वह जरूर ही तुम्हें उठाकर समुद्रमें फेंक देगी और यदि उसकी ज़रा भी परवा न किये हुए, राग-रहित होकर मेरे पीछे-पीछे चलते रहोगे, तो मैं तुम्हें निश्चय ही निर्विघ्न चम्पानगरीमें पहुँचा दूँगा और क्या कहूँ? यदि वह देवी आये, तो तुम उसके साथ चार आँखे भी न करना। वह डराने-धमकानेके लिये कुछ भी कहे, तो उसे सुन कर डरना नहीं। यदि तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो सको, तो आओ, अभी मेरी पीठ पर सवार हो जाओ।"

यक्षकी इस बातको दोनों भाइयोंने स्वीकार कर लिया। इसके बाद वे दोनों उस अश्वरूपी यक्षकी पीठपर सवार हो गये। वह अश्वरूपी यक्ष उन्हें समुद्रके ऊपर-ही-ऊपर आकाशमें ले उडा।

इधर देवी अपने हाथका काम पूरा कर अपने स्थानपर आयी और अपने मन्दिरमें उन दोनोंको न देखकर उपर्युक्त सब वनोंमें उन्हें ढूँढने लगी, पर वे कहीं नहीं दिखाई दिये। इसके बाद अपने ज्ञानसे यह मालूम कर, कि वे चम्पापुरीकी ओर चले जा रहे हैं, वह क्रोधके साथ खड्ग हाथमें लिये दौड पडी। जब वह दौडते-दौडते उन लोगोंके पास पहुँच गयी, तब उन्हें घोडेकी पीठपर चढकर जाते देख, बोली,—"अरे! तुम लोग क्यों मुझे इस तरह छोडकर भागे जा रहे हो? तुम्हें जानेकी इच्छा ही हो, तो मेरे साथ चलो, नहीं तो मैं इसी तुम्हारे सिर उतार लूँगी।" देवीकी यह बात सुन, यक्षने उन कहा, "जब तक तुम दोनों मेरी पीठपर हो, तब तक तुम्हें कोई

नहीं है।" यह धैर्य-वचन सुन, दोनों भाइयोंके चित्तमें बड़ी शान्ति आयी। तब देवी अनुकूल वचन बोलने लगी,— "मेरे प्राण-प्यारों! तुम लोग मुझे इस तरह अकेली छोड़ कर कहाँ चले जा रहे हो?" इस दीन-वचनसे भी उनके चित्त चंचल नहीं हुए। तब उसने अकेले जिनरक्षितसे कहा,—"जिन-रक्षित! तुम मेरे परम प्रिय हो। तुम्हारे ऊपर मेरा स्नेह निश्चल है। अब मैं तुम्हारे न रहने पर किसके साथ विषय-सुख भोगूँगी? तुम्हारे वियोगमें मैं ज़रूर मर जाऊँगी। खैर एक बार मेरी ओर देख तो लो, जिसमें मैं मरते समय भी तो थोड़ी शान्ति पा जाऊँ।" उसके इन माया-युक्त वचनोंको सुनकर जिनरक्षित-को बड़ा दुःख हुआ और उसने देवीके साथ आँखें चार कीं। बस शैलक यक्षने उसे तत्काल अपनी पीठ परसे उतारकर नीचे फेंक दिया। देवीने उसे समुद्रके जलमें फेंक डालनेके पहले त्रिशूलसे बींधकर कहा;— "रे पापी! ले, मेरे साथ धोखेबाज़ी करनेका फल भोग।" यह कह, उसने उसे खड्गसे चीर डाला। इसके बाद वह माया-जाल फैलाकर जिन-पालितको फँसाने आयी। यह देख, यक्षने कहा,— "यदि तूने इसकी बातों पर ज़रा भी ध्यान दिया, तो तेरी गति भी जिनरक्षितके ही समान होगी।" यक्षकी यह बात सुन, वह और भी दृढ़ हो गया और उसकी कपट-रचनाकी उपेक्षा कर, यक्षकी सहायतासे सकुशल चम्पापुरी पहुँच गया। वह भूतनी निराश होकर पीछे लौट गयी। यक्ष भी उसे उसके घर पहुँचाकर पीछे लौट गया। उस समय जिनपालितने उससे अपने अपराधोंकी क्षमा माँगी और विनय-पूर्ण वचनोंसे उसकी प्रशंसा की।

अपने घर पहुँच कर जिनपालित अपने स्वजनोंसे मिला और बड़े शोक भरे स्वरमें अपने भाईके मरनेका हाल उन्हें कह सुनाया। सेठ माकन्दी अपने पुत्र की मरण क्रिया कर, एकही पुत्र और अन्य स्वजनों-के साथ गृहधर्मका पालन करने लगा। एक दिन श्रीमहावीरस्वामी-ने उस पुरीके उद्यानमें पदार्पण किया। माकन्दी और जिनपालित आदि प्रभुकी वन्दना करनेके लिये आये और भगवान्‌की देशना श्रवण

कर, ज्ञान लाभकर, संयम ग्रहण करनेकी इच्छासे दोनोंने ही श्रीजिनेश्वरको प्रणाम किया। इसके बाद वे घर चले आये। तदनन्तर सेठ माकन्दीने पुत्रको घरका कारबार सौंपकर जिनपालितके साथ श्रीवीर प्रभुके पास आकर दीक्षा ग्रहण की। जिनपालित साधुपिताके साथ कठिन तपस्या करते हुए आत्मकार्यका साधन करने लगा।

जिनपालित—जिनरक्षित कथा समाप्त।

यह कथा सुनकर राजर्षि अमरदत्तने श्रीधर्मघोष सूरिसे इस कथा का उपनय पूछा। इसके उत्तरमें गुरुने कहा,— "उस सेठके दोनों पुत्रोंके स्थानमें इस ससारके समस्त जीवोंको जानो। रत्नद्वीपकी उस देवीको अविरति (माया) जानो। इसी अविरतिके कारण मनुष्योंको दु:ख होता है, वे भव-भ्रमण करते रहते हैं। वह मृतकोंका समूह उसीकी करनीका फल था। शूली पर लटकाए हुए मनुष्यके स्थानमें हितकी बात बतलानेवाले गुरुको जानना। जिसप्रकार उस शूलीपर चढ़े हुए मनुष्यने रत्नद्वीपकी देवीका स्वरूप अपने अनुभव किये हुए अनुसार बतलाया था, उसी प्रकार गुरु भी अविरतिके द्वारा उत्पन्न होनेवाले दु:खको पूर्वमें अनुभव किये अनुसार और आगे जैसा कुछ जीवको अनुभव होगा, वैसा बतला देते हैं। जिस तरह उस शूली पर टँगे हुए मनुष्यने रत्नद्वीपकी देवीका स्वरूप अपने अनुभव किये हुए अनुसार बतलाया था, उसी प्रकार गुरु भी अविरतिके द्वारा उत्पन्न होने वाले दु:खको पूर्वमें अनुभव किये अनुसार और आगे जैसा कुछ जीवको अनुभव होगा वैसा बतला देते हैं। जिस तरह उस शूली पर टँगे हुये मनुष्यने दोनों सेठ-सुतोंको यह बतलाया था, कि शैलक यक्ष तुम्हें इस दु:खसे उबारेगा, उसी तरह गुरु भी संयमको उद्धारकर्त्ता बतलाते हैं। समुद्रके स्थानमें इसी ससारको समझना। जिसप्रकार रत्नद्वीपकी उस देवीके फेरमें पड़ा हुआ जिनरक्षित नाशको प्राप्त हुआ, उसी प्रकार अविरतिके वशमें पड़कर मनुष्य नाशको प्राप्त हो जाता है, ऐसा समझना। जैसे देवीकी बातकी परवा न कर, यक्षके आज्ञा-

धीन रहता हुआ जिनपालित क्रमशः अपनी नगरीमें आ पहुँचा, उसी प्रकार जीव अविरतिका त्याग कर, पवित्र चारित्रमें निश्चल हो रहता है और समस्त कर्मोंका क्षय कर थोड़ेही कालमें मोक्ष सुखका अधिकारी होता है। इसलिये हे राजर्षि! चारित्र अङ्गीकार करने बाद लोकमें मनको प्रवृत्त नहीं होने देना चाहिये।"

गुरुके ऐसे वचन सुन, राजर्षि बड़े आदरसे अतिचारसे रहित संयमका पालन करने लगे। गुरुने रत्नमञ्जरीको साध्वी प्रवर्त्तिनीको सौंपा वह वहाँ रहकर निरन्तर तप और संयमका पालन करने लगी। क्रमशः वे दोनों निर्मल तपस्या कर, मनोहर चारित्रका पालन कर, मोक्षपदको प्राप्त हुए।

अमरदत्त—मित्रानन्द-कथा समाप्त।

इस प्रकार स्वयंप्रभ मुनिके मुँहसे धर्मदेशना श्रवणकर स्तिमितसागर राजाको बड़ा बोध प्राप्त हुआ। इसके बाद उन्होंने अपने पुत्र अनन्तवीर्यको राज्यपर स्थापित कर, कुमार अपराजितको युवराजकी पदवी प्रदान की और आप उन्हीं मुनीश्वरसे दीक्षा ग्रहण कर ली। उन्होंने दृढ़तासे दीक्षाका पालन तो किया, परन्तु अन्तमें मन-ही-मन संयममें कुछ विराधना कर दी, इसलिये वे मरकर अधोलोकमें भवनपति—जातिमें चमरेन्द्र नामक असुरोंके अधिपति हुए।

कुमार अपराजित और राजा अनन्तवीर्य राज्य करने लगे। इसी समय किसी विद्याधरसे उनकी मैत्री हो गयी। उस विद्याधरने उन्हें आकाशगामिनी आदि विद्याएँ सिखलायीं और उनकी साधनाकी विधि भी बतला दी। राजाके बर्बरी और चिलाती नामकी दो दासियाँ थीं। वे गीत और नाट्यकलामें बड़ी निपुण थीं। इसलिये उनके गीत नाट्यसे प्रसन्न रहनेवाले अपराजित और अनन्तवीर्य निरन्तर नाच-गानके ही रङ्गमें डूबे रहते थे। एक दिन वे दोनों भाई जिस समय गीत-नाट्यके रसमें डूबे हुए थे, उसी समय स्वेच्छाचारी नारद वहाँ आ पहुँचे। उस समय नाचने-गानेकी धुनमें पड़े हुए उन दोनों भाइयोंने खड़े होकर

या और तरहसे नारदके प्रति सम्मान नहीं प्रकट किया। इससे क्रोधित होकर नारदने विचार किया,— "ऐं! इन दोनों भाइयोंका मन दासियोंके नाचने-गानेमें इतना मोहित हो गया है, कि मेरा यहाँ आना भी इन्हें नहीं मालूम हुआ? अच्छा, रहो, मैं किसी बलवान् राजासे इन नृत्य-गीत-कलामें होशियार दासियोंका हरण करवाये देता हूँ।" ऐसा विचार कर, तीनों लोकमें स्वेच्छापूर्वक विचरण करने वाले और लड़ाई-झगड़ा करनेमें बड़ी प्रीति रखनेवाले नारद ऋषि विद्याधरोंके राजा और तीन खण्डोंके स्वामी दमितारि नामक प्रतिवासुदेवके पास गये। मुनिको देखते ही राजा तत्काल उठ खड़े हुए और उनके सामने जा, सत्कार-पूर्वक उन्हें आसनपर बैठाकर पूछा,— "हे मुनि! पृथ्वी पर आपने कोई आश्चर्य-जनक बात देखी हो, तो कहिये।" नारदने कहा,—"हे राजेन्द्र! सुनो। मैं सुभगा नगरीमें राजा अनन्तवीर्यके पास गया हुआ था। उनके यहाँ बर्बरी और चिलाती नामकी दो दासियोंका नाट्य मैंने देखा, जिससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। हे राजन्! यदि तुम्हारे यहाँ वैसी गीत-नाट्यमें कुशल स्त्रियाँ नहीं रहीं, तो तुम्हारा विद्याबल किस कामका? और तुम्हारा यह इतना बड़ा राज्य ही किस कामका है? तुम्हारी यह सारी समृद्धि व्यर्थ ही है।" यह कह, मुनि अन्यत्र चले गये।

इसके बाद प्रतिवासुदेव राजा दमितारिने अभिमानके मारे तत्काल ही राजा अनन्तवीर्यकी राजधानीमें एक दूत भेज कर कहलवाया, कि—"सब प्रकारके रत्न राजाधिराजोंके ही आश्रयमें रहते हैं। इसलिये तुम्हारे यहाँ गीत-नाट्यमें जो दो कुशल दासियाँ हैं, उन्हें शीघ्र ही मेरे पास भेज दो। इस विषयमें तनिक भी विलम्ब न करो।" दूतकी यह बात सुन, अपराजित और अनन्तवीर्यने कहा,—"हे दूत! तुमने जो कुछ कहा, सो ठीक है, परन्तु हम लोग इन दासियोंके भेजनेके बारेमें पीछे विचार कर जैसा उचित समझेंगे, करेंगे। अभी तो तुम अपने स्वामीके पास लौट जाओ।" यह कह, उन्होंने उस दूतको

स्थान: कर दिया और दोनों भाइयोंने परस्पर विचार किया,—"यह राजा दमितारि विद्याके बलसे कहीं हमलोगोंको हरा न देवे, इसलिये हमलोगोंको चाहिये, कि उसके पहलेही विद्याका साधन कर उसका गर्व चूर-चूर कर डालें।" वे दोनों भाई इस प्रकार विचार कर ही रहे थे, कि उनके पूर्व भवकी विद्याएँ उन्हें आपसे आप याद हो आयीं और उनके पास आकर बोलीं,—"तुम लोग तो हमें सिद्ध कर ही चुके हो, अब हमारे लिये नये सिरेसे साधना करनेकी कोई ज़रूरत नहीं है।" यह कह, वे सब उन दोनोंके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं। उस समय वे दोनों भी विद्याओंके प्रभावसे बड़े बलवान् विद्याधर हो गये। इसके बाद उन्होंने चन्दन, पुष्प इत्यादिसे उन विद्याओंका पूजन किया।

इसी समय राजा दमितारिके दूतने उनके पास लौट आकर कहा,—"अरे, क्या तुम्हे मौत सवार है, जो तुमने अभी तक प्रभुके पास उन दासियोंको नहीं भेजा?"

यह सुन, दोनों भाइयोंने कहा,—"भला स्वामीका काम कैसे बाक़ी रह जाता! हमलोग उन्हें भेज चुके।"

यह कह, उन्होंने दूतको शान्त कर दिया। इसके बाद उन दोनों भाइयोंने राजा दमितारिकी पुत्री स्वर्णश्रीके साथ विवाह करनेके लोभसे स्वयं दासियोंके रूप धारण कर, तत्काल राजा दमितारिके पास आ पहुँचे। तदनन्तर अपनी कला-कुशलता दिखलाकर उन्होंने राजाको प्रसन्न कर दिया। राजाने उनसे कहा,—"दासियों! तुम दोनों मेरी कनकश्री नामक कन्याके पास रहो और उसका दिल बहलाया करो।" यह सुन, उन दोनोंने बहुत अच्छा, कह कर अपने मनमें विचार किया,—"जैसे कोई बिल्लीको दूधकी रखवाली सौंप दे, वैसेही इस राजाने अपनी कन्याको हमारे हवाले कर दिया है।" यही सोचते-विचारते हुए वे दोनों दासीका रूप धारण किये अद्वितीय रूपवती राजकुमारी कनकश्रीके पास आये। उसका रूप देखकर उन्होंने

सोचा,—"अहा! विधाताने सारी सुन्दरता और समस्त उपमान-द्रव्योंको एकत्र करके ही इस कन्याका रूप बनाया है, ऐसा मालूम पड़ता है। इसका सा रूप तो शायद दुनियाँमें दूसरा नहीं हैं।" ऐसा विचार कर उन्होंने मधुरता तथा हास्य-रससे भरे हुए मनोहर वचन और देशी भाषाओंसे मिले-जुले वाक्योंका प्रयोग कर उस कन्याको पुकारा। उस समय राजकन्या कनकश्रीने उनके वचनोंकी चतुराई देख, उनका अत्यन्त आदर किया और उन्हें आसन आदि देकर उनका भली भाँति सत्कार किया। इसके बाद उसने पूछा,—"अनन्तवीर्यका रूप कैसा है?" यह सुन, दासीका वेश बनाये हुए अपराजितने *अनन्तवीर्यके गुणोंका इस प्रकार बखान करना आरम्भ किया,*—"हे राजकुमारी! अनन्तवीर्यके चातुर्य, रूप, सौन्दर्य, गाम्भीर्य, औदार्य और धैर्य आदि गुणोंका वर्णन एक जिह्वासे हो नहीं सकता। तीनों लोकमें राजा अनन्तवीर्यका सा गुणवान और रूपवान् पुरुष दूसरा नहीं है। बिना भाग्य अच्छा हुए उनका नाम तो सुनाई ही नहीं देता, फिर उनके रूप-लावण्यका दर्शन करना तो कहाँसे हो सकता है?" उनके गुणोंका ऐसा वर्णन सुनकर राजकुमारी कनकश्रीके रोंगटे खड़े हो गये। उनके गुण-वर्णनसे मुग्ध बनी हुई राजकुमारीको देख कर दासीका रूप धारण किये हुए अपराजितने कहा,—"हे राजकुमारी! यदि तुम्हें उनका दर्शन करनेकी अभिलाषा हो, तो मैं अभी दिखला दे सकती हूँ।"

यह सुन, उसने कहा,—"यदि ऐसा हो, तो फिर क्या बात है? यदि एक बार मैं उनका रूप देख पाऊँ, तो फिर मेरा जीवन सफल हो जाये।" उसकी यह बात सुन, उन दोनोंने अपना असली रूप प्रकट कर राजकुमारीको दिखलाया, जिसे देख, हर्षित हो राजकुमारीने कहा,—"अब मैं तुम्हारी आज्ञाके अधीन हूँ।" यह सुन, अनन्तवीर्यने कहा,—"यदि ऐसी बात है, तो चलो, हम अपनी नगरीमें चलें।" राजकुमारीने कहा,—"तुमने बहुत ही ठीक कहा; परन्तु मेरे पिता बड़े बलवान्

हैं, वे तुम्हें अवश्य ही हरा देंगे।” इसके उत्तरमें उन्होंने कहा,—“इसके लिये तुम कुछ चिन्ता न करो। वे हमारे सामने युद्धमें क्षणभर भी न ठहर सकेंगे।” उनके ऐसे वचन सुनकर उनके स्नेह-पाशमें बँधी हुई तथा उनके रूप-सौन्दर्यसे मोहित राजकुमारी कनकश्री उनके साथ जानेको तैयार हो गयी।

इसके बाद राजा अनन्तवीर्यने अपनी विद्याके प्रभावसे विमान रच कर, उसी पर आरूढ़ हो, आकाशमार्गसे जाते-जाते सभामें बैठे हुए राजा दमितारि और उनके सब सभासदोंको सुना-सुना कर कहा,—“हे मन्त्रियो ! सेनापतियो ! और सामन्तो ! सुनो—देखो, मैं तुम्हारे स्वामीकी पुत्री कनकश्रीको हरणकर अपने साथ लिये जा रहा हूँ। कहीं तुम पीछे यह न कह देना, कि हमें पहलेसे ख़बर नहीं थी।” ऐसा कहते हुए राजा अनन्तवीर्य अपने भाईके साथ उस कन्यारत्नको लिये हुए आकाशकी राह चले गये। राजा दमितारिने उनकी बात सुन, अत्यन्त क्रोधित हो, आक्रोशके साथ कहा,—“हे वीरो ! इस दुष्टको जल्दी गिरफ्तार कर लो। अभी पकड़ लो।” इसप्रकार अपने स्वामीकी बात सुन, विद्याधरोंने बड़े ज़ोरसे ललकारा,—“अरे दुरात्मा ! ठहर जा। तू हमारे स्वामीकी पुत्रीको कहाँ लिये जा रहा है ?” यह कहते हुए वे शस्त्र धारण किये उनके पीछे दौड़े। उनको इसप्रकार अपने पीछे-पीछे आते देख, राजा अनन्तवीर्यने उन्हें उसी तरह क्षण भरमें तितर-बितर कर डाला, जैसे हवा तृणोंके समूहको बात-की-बातमें उड़ा ले जाती है। अपने सैनिकोंको हारकर लौटा हुआ जानकर राजा दमितारि स्वयं राजा अनन्तवीर्यकी ओर चले। मार्गमें जाते-जाते जब राजा अनन्तवीर्यकी दृष्टि राजा दमितारि पर पड़ी, तब वे थोड़ी देरके लिये विमानको खड़ा करके उनकी सेनाको देखने लगे। उन्होंने देखा, कि उस सैन्यके समूहमें कल्पान्तकालके समुद्रकी तरह फैले हुए हाथी, घोड़े और पैदल सिपाहियोंकी क़तारें लगी हैं और उनका विकट शब्द आकाशको गुँजा रहा है। वह सैन्य देखकर ज्योंही अनन्तवीर्य युद्ध

करनेको तैयार हुए, त्योंही उस सैन्य सागर पर निगाह पडते ही कनकश्री बेतरह व्याकुल हो गयी। उसने अनन्तवीर्यको आश्वासन देकर तत्काल अपने सैनिकोंको इकट्ठा किया। इसके बाद राजा दमितारि और अनन्तवीर्यके सैनिक परस्पर युद्ध करने लगे। दोनों ओरके सिपाही खूब जी होमकर लडे। अन्तमें राजा दमितारिके सिपाहियोंने अनन्तवीर्यके सैनिकोंको पराजित कर दिया। यह देखकर अनन्तवीर्य कुछ चिन्तामें पड गये। इतनेमें उनके सौभाग्यसे तत्काल देवाधिष्ठित वनमाला, गदा, खड्ग, कौस्तुभमणि, पाँचजन्य शंख और शार्ङ्ग-धनुष—ये छ रत्न उत्पन्न हुए। यह देख, राजा अनन्तवीर्यने उत्साहित हो, पाँचजन्य शंखको मुँहके पास ले जाकर पूरी ताकत लगाकर बजाया, जिसकी प्रचण्ड ध्वनि श्रवण कर तत्काल ही शत्रुसेना मूर्च्छित हो गयी और उनकी अपनी सेनाका बल बढ गया। यह देख, राजा दमितारि स्वयं युद्ध करनेको तैयार हुए। राजा अनन्तवीर्य भी अपराजितके साथ बख्तर पहन कर, रथारूढ़ हो, शस्त्र हाथमें ले, उनसे लडनेको अग्रसर हुए। दोनों ओरसे घमासान लडाई हुई—बहुतेरे वीर मारे गये। मरे हुए हाथी-घोडोंकी तो गिनती ही नहीं रही। लहूकी नदीसी बह चली। राजा दमितारिके छोडे हुए सभी अस्त्रोंको अनन्तवीर्य काट डालते थे। इसलिये प्रतिवासुदेवने महातीक्ष्ण और देदीप्यमान चक्र अनन्तवीर्य पर चलाया। वह चक्र वासुदेवके हृदयमें तुम्बडीकी तरह हलका चोट करके रह गया और उन्हींके हाथमें आकर स्थित हो गया। तब विष्णुने वह चक्र हाथमें ले, प्रतिवासुदेवसे कहा,—"हे राजा दमितारि! तुम युद्धसे हाथ खींच, मेरी सेवा करना स्वीकार करो और सुखसे जाकर राज्य करो, व्यर्थ ही अपनी जान न गँवाओ। तुम कनकश्रीके पिता हो, इसीलिये मैं तुम्हे छोडे देता हूँ।" यह सुन राजा दमितारिने कहा,—"इन विचारोंको दिलसे दूर कर तुम खुशीसे चक्र चलाओ, नहीं तो मैं इसी खड्गसे चक्र और तुम दोनोंका सफाया कर डालूँगा।" यह कह, वे खड्ग उठाये हुए उन्हें मारने दौडे। इसी

समय खड्ग और ढाल हाथमें धारण किये हुए अनन्तवीर्यने अपने सामने चले आते हुए दमितारिके ऊपर चक्र चलाकर उन्हें मार गिराया। उसी समय देव-यक्षादिकोंने अनन्तवीर्यके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुए सबको सुना-सुनाकर ऊँचे स्वरसे कहा,—"यह अनन्तवीर्य अर्धविजयके स्वामी वासुदेव और इनके भाई अपराजित बलदेव हुए हैं। इसलिये इनकी चिरकाल जय हो।" इसके बाद सब विद्याधर-वीरोंने वासुदेवको प्रणाम कर, उनकी अधीनता स्वीकार ली और वासुदेवने भी उनका भली भाँति सत्कार किया।

तदनन्तर राजा अनन्तवीर्य और अपराजित सब विद्याधरोंके साथ मनोहर विमानपर चढ़कर अपने नगरकी ओर चले। मार्गमें जाते-जाते जब वे कनकाचल-पर्वतके समीप (मार्गमें मेरु-पर्वत किस तरह आया?) आये, तब विद्याधरोंने उनसे कहा,— "हे स्वामी इस महागिरिके ऊपर जिनेश्वरके चैत्य हैं। इसलिये वहाँ चलकर भगवान्‌को प्रणाम कर आगे बढ़ना चाहिये। कारण, तीर्थका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। यह सुन, तत्काल ही अपराजित और अनन्तवीर्य विमानसे उतरकर हर्ष और भक्तिके साथ तीर्थकी वन्दना करनेके बाद चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगे। इसी समय उन्होंने चैत्यके मध्यमें कीर्त्तिधर नामक महामुनिको देखा। उस समय विद्याधरोंने कहा,—"हे स्वामी! ये महामुनि साल भरका उपवास लेकर कर्मोंका क्षय कर केवल-ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, इसलिये आप इनके चरणोंकी वन्दना कीजिये।" यह सुनतेही उन्होंने परिवार सहित बड़े आनन्दके साथ उन केवलीकी वन्दना की और शुद्ध पृथ्वीपर बैठकर केवलीकी मनोहर वाणी श्रवण करने लगे। केवली ने कहा,—

मिथ्यात्वमविरतिश्च, कषाया दुःखदायिनः।
प्रमादा दुष्टयोगाश्च, पञ्चैते बन्धकारणम्॥ १॥

अर्थात्— "मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और दुष्ट योग ये पाँचों बन्धनके कारण और परिणाममें दुःख देनेवाले हैं।"

"हे भव्य प्राणियो! ये पाँचों सांसारिक जीवोंके कर्मबन्धके कारण

हैं। पहला कारण मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वका अर्थ सत्य-देव, सत्य-गुरु और सत्य-धर्मके ऊपर श्रद्धा न होना है। दूसरा कारण अविरतिका तनिक भी त्याग नहीं करना है। तीसरा-कारण कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभ करना है। चौथा कारण प्रमाद, जिसके चार भेद हैं। इनमें पहला प्रमाद, काष्ठ तथा अन्नसे उत्पन्न दोनों प्रकारके मद्योंका-सेवन करना है। दूसरा प्रमाद है,—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श—ये पाँच इन्द्रियोंके विषय। तीसरा प्रमाद है,- निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानर्द्धि—ये पाँच प्रकारकी निद्राएं। चौथा प्रमाद है,—राज कथा, देश-कथा, स्त्री कथा और भक्त (भोजन) कथा—ये चार प्रकारकी विकथाएं। ये चारों प्रकारके प्रमाद चौथे बन्धके कारण होते हैं। दुष्ट योगका अर्थ है—मन, वचन और कायाके अशुभ व्यापार। ये पाँचवें बन्धके कारण होते हैं। इन सब पाप-बन्धोंके कारणोंका त्यागकर, मोक्षके सुख देनेवाले धर्ममें मति करनी चाहिये।"

इस प्रकारकी देशना श्रवणकर, राजा दमितारिकी पुत्री कनकश्रीने विनय-पूर्वक कीर्त्तिधर मुनिसे पूछा,—"हे मुने! मेरा अपने भाई-बन्धोंसे जो वियोग हुआ और मेरे पिताकी मृत्यु हो गयी। इसका क्या कारण है? कृपाकर बतलाइये।" यह सुन, मुनिने कहा,—"हे भद्रे! तुम अपने बन्धु-वियोग और पिताकी मृत्यु आदिके कारण सुनो,—

"धातकीखण्ड नामक द्वीपमें जो पूर्व भरतक्षेत्रमें, शङ्खपुर नामका नगर है, वह बड़ी समृद्धिवाला है। उस नगरमें श्रीदत्ता नामकी एक निर्धन स्त्री रहती थी, जिसके कोई सन्तान नहीं थी। वह दूसरोंके घर काम-धन्धा करके अपना पेट पालती थी। एक बार उसने दरिद्रतासे पीड़ित होनेपर भी मुनिसे धर्म श्रवणकर धर्मचक्रवाल नामक तप किया। उस तपमें पहले और पीछे "अट्ठम" करना होता है और मध्यमें सैंतीस उपवास करने होते हैं। इसके बाद तप सम्पूर्ण होने पर शक्तिके अनुसार देव और गुरुकी भक्ति करनी होती है। उस बेचारीने ठीक विधिके अनुसार तप कर, पारणाके दिन सब किसीको मनोहर

भोजन आदि दिया। जिन-जिन गृहस्थोंके यहाँ वह काम किया करती थी, उन लोगोंने भी उसकी तपस्या देखकर, उसे वे जितना भोजन-वस्त्र सदा देते थे, उससे दुगुना दे डाला। इससे उसके पास कुछ धन जुड़ गया। एक दिन उसके घरकी एक दीवार गिर पड़ी, जिसमेंसे बहुत धन निकला। उस धनको लेकर उसने उद्यापन (उजमना) प्रारम्भ किया तथा जिनचैत्योंकी विशेष पूजा की। अन्तमें उसने साधर्मिकवात्सल्य किया। उसी दिन उसके घर पर महीने भरसे उपवास किये हुए सुव्रत नामक महामुनि पधारे। श्रीदत्ताने तत्काल उन्हें बड़ी भक्तिके साथ शुद्ध भोजन कराया और पीछे भक्तिपूर्वक मुनिकी वन्दना की। इस प्रकार धर्मका प्रत्यक्ष फल देखकर उसने मन-ही-मन हर्षित होते हुए मुनिसे धर्मका रहस्य पूछा। मुनिने कहा,—"हे भद्रे! इस समय यहाँ पर धर्मका विचार करनेका नहीं है। यदि तुम्हें धर्मका रहस्य जानना हो, तो अवसरके समय उपाश्रयमें आकर विस्तारपूर्वक धर्मदेशना श्रवण करो।" यह कह, अपने स्थानपर जाकर, मुनिने विधिपूर्वक पारणा किया। इसके बाद जिस समय मुनि स्वाध्याय-ध्यान कर बैठे हुए थे, उसी समय मौक़ा देखकर नगरवासी लोगोंके साथ-ही-साथ श्रीदत्ता भी उपाश्रयमें आ पहुँची और मुनिको प्रणाम कर, उचित स्थानमें बैठ रही। मुनिने उसे धर्मलाभरूपी आशीर्वाद दिया। तदनन्तर श्रीदत्ता और नगर-निवासियोंके प्रतिबोधके लिये उन्होंने धर्म-देशना आरंभ की। उसमें उन्होंने कहा,—

"अयमर्थो परोऽनर्थ-इति निश्चयशालिना।
भावनीया अस्थिमज्जा, धर्मेणैव विवेकिना ॥ १ ॥"

अर्थात्—"यही अर्थ है और सब अनर्थ है—इस प्रकारके निश्चयसे शोभित विवेकी पुरुष धर्मसे ही अपनी अस्थिमज्जाको भावित कर रखते हैं, अर्थात् यही सोच रखते हैं, कि अस्थिमज्जा-पर्यन्त धर्मका प्रचार करने योग्य है।"

"विवेकी पुरुषोंको अपने मनमें यह विचार करना चाहिये, कि परमार्थ-वृत्ति करके (यदि ठीक-ठीक देखिये तो) धर्मका आराधन करना ही आत्मकार्य है। इसके सिवा और सब सांसारिक व्यापार अनर्थके

मूल साक्षात् अनर्थके रूप ही हैं। ऐसा निश्चय करके उत्तम जीवोंको अपनी अस्थि-मज्जाको भी धर्मसे ही वासित करना चाहिये।"

यह सुन श्रीदत्ताने पूछा,—"हे भगवन्! धर्म तो अरूपी है, उससे अस्थि-मज्जा कैसे वासित की जा सकती है?" यह सुन, सुव्रत मुनिने श्रीदत्ता तथा अन्य पुरजनोंको वाञ्छित अर्थको सिद्ध करनेवाली यह कथा कह सुनायी,—

नरसिंह राजर्षि की कथा

"उज्जियनी-नगरीमें जितशत्रु नामके राजा थे। उनकी स्त्रीका नाम धारिणी था। उनके पुत्रका नाम नरसिंह था। जब वह राज-कुमार क्रमशः सब कलाओंका अभ्यास कर युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसका विवाह बत्तीस मनोहर रूपवती कन्याओंके साथ कर दिया। एक समयकी बात है, कि जाडेके दिनोंमें एक जंगली हाथी नगरमें आकर उपद्रव करने लगा। वह हाथी मदके मारे मतवाला हो रहा था, उसका रङ्ग शङ्खकी तरह सफेद था, उसका शरीर पर्वत-की तरह बडे भारी डील-डौलवाला था। वह यमराजकी तरह लोगों-को दुःख दे रहा था। उस हाथीको देखकर डरे हुए लोगोंने राजाके पास जाकर फर्याद की। यह सुनकर राजाने उसका उपद्रव दूर करने-के लिये स्वयं अपनी सेना भेजी, पर जब वह बलवती सेना भी उस जंगली हाथीका उपद्रव न रोक सकी, तब राजा स्वयं तैयार हुए और वीरोंकी सेना साथ ले, उस हाथीकी तरफ जाने लगे। इसी समय राजकुमार नरसिंहने उन्हें रोका और आपही सैन्य समेत उस हाथीको मर्दन करनेके लिये चल पडे। पास पहुँचकर राजकुमारने उस नौ हाथ लम्बे, सात हाथ ऊँचे, तीन हाथ चौडे, लम्बे दाँत और लम्बी सूँडवाले, छोटी पूँछवाले, मधुकी भाँति पीले-पीले लोचनोंवाले और सारे शरीरमें एक सौ [illegible] देखा। तदनन्तर

गजकी विद्यामें निपुण कुमारने कभी सामने जाकर, कभी पीछे हट-कर और कभी उछलकर उस हाथीको हैरान कर मारा और अन्तमें उसे वशमें कर लिया। तदनन्तर उस ऐरावत जैसे हाथी पर सवार हो नरसिंहकुमार इन्द्रकी शोभा धारण किये हुए उसे फ़ीलख़ानेमें ले आये और उसे आलान-स्तम्भसें बाँध दिया। उसके बाद हाथीसे नीचे उतर कर उन्होंने उस हाथीको आरती उतारी और विनयसे नम्र बने हुए पिताके पास आये। पिताने हर्षपूर्वक उनको आलिंगन कर अपने मनमें विचार किया,—"मेरा यह पुत्र राज्यका भार वहन करनेमें पूर्णरूपसे समर्थ हो गया है, इसलिये इसीके ऊपर राज्यका भार सौंप कर मुझे संयमका ही राज्य स्वीकार करना चाहिये।" ऐसा विचार कर राजाने सब मन्त्रियों, सामन्तों और पुरजनोंके सामने शुभमुहूर्त्तमें नरसिंहकुमारको अपनी गद्दी पर बैठा दिया और आपने जयन्धर गुरुसे दीक्षा ले ली।

राज्य पाकर राजा नरसिंह बड़े न्यायके साथ प्रजाका पालन करने लगे। एक समयकी बात है, कि एक बड़ा भारी मायावी चोर, जो किसीको दिखलाई नहीं देता था और किसीसे पकड़ा नहीं जाता था, उस नगरमें आया और उसने कितनेही घरोंमें कई बार चोरी की। नगरके महाजनोंने यह बात राजाके कान तक पहुँचायी। राजाने उस चोरको पकड़ कर दण्ड देनेके लिये कोतवालको हुक्म दिया; पर वह चोर कोतवालसे नहीं पकड़ा गया। उलटा और भी नगरवालोंको तंग करने लगा। इस पर महाजनोंने फिर राजाके पास फ़र्याद की,—"हे देव! इस दुष्ट चोरने आपके समस्त नगरमें हलचलसी मचा रखी है। वह रातको ज़बरदस्ती जवान और ख़ूबसूरत औरतोंको पकड़ ले जाता है। इसलिये आप कृपाकर हमें ऐसी कोई जगह बत-लाइये जहाँ हम इस उपद्रवसे बचे रहें।" उनकी ऐसी बातें सुन, क्रोधसे थर-थर काँपते हुए राजाने कोतवालको बुलाकर कहा,—"रे दुष्ट! तू बैठा-बैठा मनमानी तनख़्वाह खाया करता है और नगरकी रक्षा

नहीं करता ? इसका क्या कारण है ?" इसपर महाजनोंने कहा,—"हे नाथ! इसमेंइस बेचारेका क्या दोष है ? वह चोर तो एक पूरी पलटनके गिरफ्तार करने पर भी गिरफ्तार होनेवाला नहीं है।" यह सुन, राजाने महाजनोंसे कहा,—"अच्छा, देखो, मैं इसका उचित उपाय करता हूँ।" यह कह, राजाने महाजनोंको विदा कर दिया।

इसके बाद राजा भिखारीका रूप बनाये, उस चोरकी तलाशमें महलसे बाहर निकले और अनेक शंकास्थानों और गुप्तस्थानोंमें घूमने लगे। पहले दिन वे नगरके बाहर बहुत घूमा किये, पर किसी जगह वह चोर न दिखाई दिया। दूसरे दिन सन्ध्या समय राजा नगरके बाहर एक वृक्षके नीचे बैठे हुए थे, इसी समय उन्होंने एक गेरुआ वस्त्र पहने तथा रास्तेकी धूल सारे अङ्गमें लपेटे हुए त्रिदण्डीको आते देखा। उसके पास आनेपर राजाने उसको प्रणाम किया। त्रिदण्डीने पूछा,—"अरे! तू कहाँसे आ रहा है और कहाँ जायेगा ? तेरा मतलब क्या है ?" यह सुन, भिखारीका वेश बनाये हुए राजाने कहा,—"भगवन्! मैं द्रव्यके लिये बहुतसे देश घूम आया, पर मुझे कहीं धन नहीं मिला। इससे मैं बहुत ही चिन्ताग्रस्त हो रहा हूँ।" यह सुन, उस त्रिदण्डीने कहा,—"बटोही भाई! यह तो कहो, तुमने धनकी खोजमें किन किन देशोंकी सैर की ?" राजाने कहा,—"यों तो मैं बहुतसे देशोंमें घूमा हूँ, तो भी जो थोड़े-बहुत नाम मुझे याद हैं, वे तुम्हें बतलाये देता हूँ। हे त्रिदण्डी! मैंने वह लाट-देश भी देखा है, जहाँकी स्त्रियाँ एकही वस्त्र पहनती हैं। उस देशके प्रायः सभी लोग मधुर-भाषी हैं और केशको 'वाल' कहते हैं। मैंने सौराष्ट्र-देश भी देखा है। वहाँ लम्बे केशोंवाली, मधुर स्वरवाली तथा कम्बल पहननेवाली अहीरोंकी स्त्रियाँ दिखाई देती हैं। इसके सिवा मैंने कङ्कण-देश भी देखा है। वहाँ शालि-धानही विशेष कर खाया जाता है। नागर-बेलके पान और केलोंसे सारा देश भरा हुआ है। इसी तरह मैंने गुजरात, मेदपाट और मालव इत्यादि बहुतसे देशोंमें भ्रमण किया, वहाँके

और साथही बोली,—"तुम थोड़ी देर इसी पलङ्ग पर बैठो । यहाँका सब कुछ तुम्हारा ही है। मेरा पापी भाई अपने पापोंके फलसे ही इस तरह मारा गया।" यह कह, उस चोरकी बहनने उस भूगर्भ-मन्दिरका द्वार बन्द कर दिया। उस समय राजाने चोरकी बहनको बार-बार अपनी ओर कनखियोंसे देख, सशङ्कित होकर सोचा,—"इस दुष्टाका विश्वास करना ठीक नहीं। बिना विचारे एकदम इसके पलङ्ग पर बैठना तो और भी अनुचित है। हो सकता है, कि इसमें भी कोई कपट हो।" ऐसा विचार कर वे शय्याके ऊपर तकिया रखकर दीवेकी ऊँजियालीसे हट कर अँधेरेमें खड़े हो रहे। इतनेमें यह कल-काँटोंपर खड़ी हुई शय्या रस्सी खींचतेही टूट गयी और उसपर रखा हुआ तकिया शय्याके नीचेवाले गहरे अन्धकूपमें गिर पड़ा। राजा सारी कपट-रचना समझ गये। चोरकी बहनने तकियेके कुएँमें गिरनेकी आवाज़ सुनकर अपने मनमें यही समझा, कि शय्यापर बैठा हुआ पुरुष कुएँमें गिर पड़ा। यही सोचकर उसने हँसते और ताली पीटते हुए कहा,—"बहुत ठीक हुआ। अपने भाईकी जान लेनेवालेको मैंने भी जहन्नुम भेज दिया।" यह सुन, राजाने उसके पीछेसे आकर उसके बाल पकड़ लिये और कहा,—"अरी राँड़! ले इस करनीका मज़ा तू भी देख और अपने भाईके पास जा।" यह सुनते ही वह रोने-गिड़गिड़ाने लगी। राजाको दया आ गयी। उन्होंने उसे छोड़ दिया। इसके बाद उस पातालगृहका द्वार खोल कर राजा अपने घर चले आये।

प्रातःकाल राजाने नगर भरके लोगोंको वहाँ ले जाकर जो-जो चीज़ें जिसकी थीं, उसे दे डालीं और उस पाताल-गृहको एकदम ढहा दिया। जिन स्त्रियोंको वह चोर हरण करके वहाँ ले गया था, उन्हें भी लोग राजाके हुक्मसे अपने-अपने घर ले गये। परन्तु उन स्त्रियों पर उस चोरने जादू कर रखा था, इसलिये उनका मन अपने घर पर नहीं लगता था और वे चंचल हो-होकर उसी स्थानपर चली जाया करती थीं।

लोगोंने जब यह बात राजासे कही, तब उन्होंने एक जादू-टोनेके जानने-वाले वैद्यको बुलाकर इसका उपाय पूछा। यह सुन, वैद्यने कहा,—"हे राजन्! उस चोरने इन स्त्रियोंको कोई ऐसा चूर्ण खिला दिया है, जिससे ये परवश हो गयी हैं। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं भी इन्हें कोई चूर्ण खिला दूँ, जिससे ये फिर अपनी असली हालतमें आ जायें।" राजाने हुक्म दे दिया। वैद्यने उन स्त्रियोंको अपना चूर्ण खिलाकर उनपरसे जादूका असर उतार डाला, परन्तु उनमेंसे एक स्त्री ज्यों-की त्यों रही। इसपर राजाने फिर उसी वैद्यको बुलाकर इसका कारण पूछा। वैद्यने कहा,—"हे राजन्! उस चोरके दिये हुए चूर्णका प्रभाव किसी-किसी स्त्रीकी त्वचा तक और किसी-किसीके मांस-रुधिर तक ही पहुँचा था, पर इस स्त्रीकी अस्थि-मज्जामें भी वह प्रवेश कर गया है, इसीलिये उन पर तो मेरी दवा कारगर हुई, परन्तु इसपर उसका कुछ असर नहीं हो सकता।" यह सुन, राजाने पूछा,—"तो क्या इसके लिये कोई और उपाय नहीं है?" वैद्यने कहा,—"यदि उसी चोरकी हड्डी घिसकर इसे पिला दी जाये, तो यह भी अपने स्वभावको प्राप्त हो जायेगी, अन्यथा नहीं।" यह सुन, राजाने वैसाही किया। वह स्त्री भी जादूके प्रभावसे छुटकारा पा गयी। सब लोग सुखी हो गये, राजा नरसिंह भी बड़े सुखसे राज्य करने लगे।

इसके बाद फिर वही जयन्धर आचार्य वहाँ पधारे। इन्हींसे राजाके पिता जितशत्रुने दीक्षा ली थी। उनके आगमनका समाचार सुनकर राजा नरसिंह उनकी वन्दना करने गये और उनसे धर्म-कथा श्रवण कर, प्रतिबोध प्राप्त कर, अपने पुत्र गुणसागरको राज्यपर बैठाया और वैराग्य-युक्त होकर चारित्र ग्रहण कर लिया। इसके बाद उग्र तपस्या कर, कर्मका क्षय करनेके अनन्तर राजर्षि नरसिंहने मोक्ष-पदवी प्राप्त कर ली।

नरसिंह राजर्षि-कथा समाप्त।

इस प्रकारकी कथा सुनाकर साधु सुव्रतने श्रीदत्तासे कहा,—“हे भद्रे! जिस प्रकार उस योगी-वेश-धारी चोरके चूर्णके प्रभावसे उस स्त्रीकी अस्थि-मज्जा भी वासित हो गयी थी, उसी प्रकार तुम भी कल्प-वृक्ष तथा चिन्तामणिकी भाँति वाञ्छित फलके देनेवाले तथा जिसका फल तुमने साक्षात् देख लिया है, उसी धर्मसे अपनी आत्माको वासित कर लो और अपने चित्तमें धर्मके ऊपर निश्चल प्रीति उत्पन्न कर लो।” यह सुन, श्रीदत्ताने उन्हीं मुनिवरसे शुद्ध समकित सहित श्रावक-धर्म ले लिया। मुनि अन्यत्र विहार करने चले गये। श्रीदत्ता घर जाकर विधि-पूर्वक धर्मका पालन करने लगी।

एक दिन कर्म-परिणामके प्रभावसे श्रीदत्ताके मनमें यह सन्देह हुआ, कि मैं इतने प्रयत्नसे जिनधर्मका पालन कर रही हूँ; पर न मालूम, इसका कोई फल होगा या नहीं? इसी प्रकार सन्देह करती हुई एक दिन श्रीदत्ता आयु पूरी होनेपर मृत्युको प्राप्त हुई। इसके बाद वह कहाँ उत्पन्न हुई, उसका हाल सुनो,——

“इसी विजयमें वैताढ्य-पर्वतके ऊपर सुरमन्दिर नामक नगरमें कनक पूज्य नामके राजा राज्य करते थे। उनकी स्त्रीका नाम वायुवेगा था। उनके कीर्त्तिधर नामका एक पुत्र भी था। वही मैं हूँ। मेरी स्त्रीका नाम अनल-वेगा था। उसने हस्ती, कुम्भ और वृषभ—ये तीन स्वप्न देखकर दमितारि नामक पुत्र प्रसव किया। वह प्रतिवासुदेव हुआ। जब दमितारि युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब मैंने उसका विवाह कितनीही कन्याओंके साथ कर दिया। इसके बाद मैंने उसे राज्यपर बैठाकर चारित्र ग्रहण किया। दमितारिकी एक स्त्रीका नाम मदिरा था। उसीके गर्भसे श्रीदत्ताके जीवका अवतार हुआ। वही तुम कनकश्री कहला रही हो। पूर्व भवमें तुमने एक बार धर्मके विषयमें सन्देह किया था। इसीलिये तुम्हें बन्धु-वियोगादिक दुःख प्राप्त हुए।”

इस प्रकार कनकश्रीने जब अपने पितामह मुनिके मुँहसे अपने पूर्व भवका वृत्तान्त सुना, तब उसे संसारसे वैराग्य हो गया और उसने हाथ

जोड़कर अपराजित तथा अनन्तवीर्यसे कहा,—"हे श्रेष्ठ पुरुषो! यदि तुम आज्ञा दो, तो मैं चारित्र ग्रहण कर लूं।" उन्होंने कहा,—"एक बार सुभगापुरीमें चलो। वहाँ जानेपर स्वयप्रभ नामक जिनेश्वरसे दीक्षा ग्रहण कर लेना।" यह सुनकर कनकश्री सन्तुष्ट हो गयी। बलदेव और वासुदेव भी उन कीर्त्तिधर मुनिको प्रणाम कर, विमानपर बैठे हुए उस कन्याके सहित अपनी पुरीमें चले आये

एक बार श्रीस्वयंप्रभ तीर्थङ्कर पृथ्वीपर विहार करते हुए सुभगापुरीमें आये। उसी समय बलदेव और केशवने वहाँ आकर, प्रभुकी वन्दना कर, कनकश्री सहित धर्म श्रवण किया। कनकश्री पहलेसे तो विरक्त थी ही, जिनेश्वरकी वाणी श्रवणकर उसे और भी वैराग्य हो आया और उसे व्रत ग्रहण करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। बलदेव और वासुदेवने बड़े हर्षके साथ उसका दीक्षा-महोत्सव किया। दीक्षा ग्रहण कर, कनकश्री, एकावली आदि उत्कृष्ट तप करने लगी। तदनन्तर शुक्ल-ध्यान करती, चार घाती कर्मोंका क्षयकर, केवल-ज्ञान प्राप्त कर उसने मोक्ष पा लिया।

अपराजित नामक बलदेवकी स्त्रीका नाम विरता था। उसीके गर्भसे उसके सुमति नामकी पुत्री उत्पन्न हुई थी। वह बचपनसे ही जीवाजीवादिक तत्त्वोंके जाननेमें निपुण, तप-कर्ममें उद्यमशील और श्रीजिनधर्ममें प्रीति रखनेवाली थी। एक दिन उपवास और पारणामें समता रखनेवाले इन्द्रियोंके दमन करनेवाले और क्षमा गुणसे शोभित वरदत्त नामक मुनि उसके घर आये। उस समय वह उपवासके अन्तमें पारणा करनेके लिये थालमें मनोहर भोजन परोसे हुए थी। उसीमें से उसने शुभ-भावनासे युक्त होकर मुनिको भोजन कराया। उसी समय उत्तम मुनिको दान करनेके प्रभावसे उसे तत्काल उसकी भक्तिसे रञ्जित देवोंने पाँच दिव्य प्रकट किये। मुनि अपने स्थानको चले गये। यह आश्चर्य देख, बलदेव और वासुदेव विचार करने लगे,—"यह कन्या बड़ी पुण्यशालिनी है, इसलिये धन्य है।" ऐसा विचार कर, उन्होंने कन्याको विवाह

योग्य हुई देख, मन्त्रियोंके साथ विचार कर, बड़े आनन्दके साथ स्वयंवर-मण्डप रचाया। इसके बाद चारों दिशाओंमें पत्र भेज कर उन्होंने सब राजाओंको बुलवाया। स्वयंवरके समय सब लोग आकर मण्डपमें बैठ रहे। इसके बाद कन्या भी सब श्रृङ्गार किये, हाथमें वर-माला लिये शुभमुहूर्त्तमें मण्डपमें आयी। इतनेमें उसके पूर्व भवकी बहन-देवता, जिसको उसने पूर्व भवमें अपनेको प्रतिबोध देनेका संकेत किया था, आ पहुँची और उसको व्रत लेनेके लिये प्रतिबोध देने लगी। इससे वह प्रतिबोध प्राप्त कर, दृढ़ वैराग्यवती हो गयी। बस, स्वयंवरमें आये हुए सब राजा लोगोंसे विदा माँगकर, वह बलदेव और केशवकी सम्मति ले, पाँच सौ कन्याओं सहित संयम अङ्गीकार कर, सुव्रता नामक अपनी गुरुआनीके पास आकर रहने लगी। तदनन्तर निर्मल तपस्या कर, क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हो, केवल-ज्ञान प्राप्त कर, भव्य प्राणियोंको प्रतिबोध देकर सुमति साध्वी होकर मोक्षको प्राप्त हुई।

अनन्तवीर्य वासुदेव, चौरासी लाख पूर्वका आयुष्य पूर्ण कर; मरणको प्राप्त हो, निकाचित कर्मके योगसे, बयालीस हज़ार वर्षके आयुष्यवाले नरकमें जाकर नारकी हुए। राजा अपराजित बहुत दिनों तक बन्धुसे वियोग हो जानेके कारण अत्यन्त शोकाकुल रहे। उस समय धर्ममें निपुण एक मन्त्रीने उनसे कहा,—“हे स्वामिन्! जब आप जैसे महापुरुष भी मोहरूपी पिशाचसे छले जाते हैं, तब धैर्य-गुण किसके पास जाकर रहेगा?” यह सुन, बलदेवका दुःख बहुत कुछ दूर हुआ। एक दिन यशोधर नामक गुणधर महाराज वहाँ आ पधारे। उनके आगमनका वृत्तान्त श्रवण कर, राजा अपराजित सोलह हज़ार राजाओंके साथ उनकी वन्दना करने गये। वहाँ पहुँच, गणधरकी वन्दना कर, वे लोग हाथ जोड़े हुए, उचित स्थानों पर बैठ गये। उस समय गणधर महाराजने इस प्रकार देशना दी,—“इष्ट जनोंके वियोगसे उत्पन्न होनेवाले शोकको सत्पुरुषगणोंको चाहिये, कि त्याग दें; क्योंकि पूर्वाचार्योंने इसको पिशाचकी उपमा दी है। इष्ट-वियोग-रूपी महारोगसे

पीडित प्राणियोंको सुश्रुतमें* वतलाये हुए श्रेष्ठ धर्मौषधका सेवन करना चाहिये।" इस प्रकार गणधरकी देशना श्रवण कर, अपराजित वलदेव, शोक त्याग कर, गणधरकी वन्दना कर घर आये और अपने पुत्रको राजगद्दी पर बैठा कर राजाओंके समूहके साथ उन्हीं गणधरसे दीक्षा ले ली। इसके बाद बहुत दिनों तक कठोर तपस्या करनेके पश्चात् अनशन-व्रतका अवलम्बन कर, शुभ ध्यान करते हुए, मृत्युको प्राप्त होकर अच्युत देवलोकमें जा देवेन्द्र हुए।

इस जम्बुद्वीपके भरतक्षेत्रमें वैताढ्य-पर्वतके ऊपर उसकी दक्षिण श्रेणीमें गगन-वल्लभ नामका नगर है। उसमें किसी समय मेघवाहन नामक विद्याधरोंके राजा राज्य करते थे। उनकी रूप-लावण्यमयी भार्याका नाम मेघमालिनी था। अनन्तवीर्यका जीव ऊपर कहे हुए नरकमेंसे निकलकर उसी रानीकी कोखमें आया और समय आनेपर वही मेघनादके नामसे उनका पुत्र प्रसिद्ध हुआ। क्रमशः वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ। उसके पिताने उसकी शादी बहुतसी राजकन्याओंके साथ कर दी। कुछ काल व्यतीत होनेपर राजाने उसीको अपना राज्य देकर आप दीक्षा ग्रहण कर ली।

राजा मेघनाद, दोनो श्रेणियोंके स्वामी हुए। उन्होंने वैताढ्य-पर्वत पर वसे हुए एक सौ दस नगरोंको अपने पुत्रोंके बीच बाँट दिया। एक दिन राजा मेघनादने मेरु पर्वतके ऊपर जाकर शाश्वती जिन-प्रतिमाओं और प्रज्ञप्ति-विद्याकी पूजा की। इतनेमें वहाँ स्वर्गवासी देवगण आ पहुँचे। वहीं अपराजितका जो जीव अच्युतेन्द्र हो गया था, वह भी आया। अच्युतेन्द्रने मेघनादको देख, स्नेहसे अपने पास बुला, उनको पूर्व भवका सारा वृत्तान्त सुनाकर धर्मका प्रतिबोध दिया। इसके बाद वे (अच्युतेन्द्र) अपने स्थानको चले गये। परन्तु मेघनाद खेचरेन्द्रने

* इसी नामका एक वैद्यक ग्रन्थ है। दूसरे पक्षमें सु अर्थात् उत्तम श्रुत अर्थात् सुना हुआ—आगम।

उनके उपदेशसे वैराग्य-लाभ कर, अमरसूरि नामक गुरुसे दीक्षा ग्रहण कर ली और नन्दन-वनमें जाकर उग्रतप करने लगे।

अश्वग्रीव प्रतिवासुदेवके पुत्र असुरकुमारमें उत्पन्न हुआ था। उसने मुनि मेघनादको देख, पूर्व भवका वैर याद कर, एक रातको प्रतिमाके पास रहनेवाले मुनिके प्रति बड़े-बड़े उपद्रव किये ; पर तो भी मुनि अपने ध्यानसे विचलित नहीं हुए। प्रातःकाल वे प्रतिमाको प्रणामकर, पृथ्वी-तलपर विहार करने चले गये। अन्तमें उन्होंने समाधि-मरण पाया और अच्युत-देवलोकमें जाकर देवता हुए।



चौथा प्रस्ताव

इसी जम्बुद्वीपके पूर्व, महाविदेह-क्षेत्रमें, शीतोदा नदीके किनारे, मङ्गलावती नामक विजयमें, सिद्धान्त ग्रन्थोंमें वर्णित रत्न-सञ्चया नामकी शाश्वती नगरी वर्त्तमान है। वहींपर प्रजाका क्षेम करनेवाले क्षेमङ्कर नामके राजा राज्य करते थे। वे छद्मवेशमें रहनेवाले तीर्थङ्कर थे। उनके रत्नमाला नामकी रानी थी। एक समयकी बात है, कि अपराजितका जीव बाईस सागरोपमका आयुष्य सम्पूर्णकर, अच्युत देवलोकके इन्द्रपदसे चूकर रत्नमालाकी कोखमें पुत्र-रूपमें आ उत्पन्न हुआ। उस समय सुख-पूर्वक शय्यापर सोयी हुई रानीने रातको हाथीसे आरम्भ कर, निर्धूम अग्निपर्यन्त चौदह महास्वप्न देखे। पन्द्रहवीं-बार उसने वज्रका दर्शन किया। उस स्वप्नकी बातको हृदयमें धारण किये हुए उसने प्रात काल अपने स्वामीसे सारा हाल कह सुनाया। तब राजा क्षेमङ्करने उन स्वप्नोंकी बातपर मन-ही-मन विचार कर कहा,—"हे प्रिये! इन स्वप्नोंके प्रभावसे तुम्हें बडा पराक्रमी पुत्र होगा।" यह सुनकर रानी बडी हर्षित हुई। इसके बाद समय पूरा होनेपर रानीने शुभ ग्रह-लग्नके समय पुत्र रत्न प्रसव किया। तत्काल दासियोंने राजाके पास जाकर पुत्र-जन्मकी बधाइयाँ दीं। राजाने हर्षकी अधिकतासे दासियोंको इतना धन दान कर दिया, जिससे उनकी जीवन-पर्यन्त जीविकाका निर्वाह होता रहे। तदनन्तर राजाने पुत्र-जन्मका उत्सव बडी धूमधामसे मनाया। रानीने पन्द्रहवाँ स्वप्न वज्रका देखा

था, इसलिये राजाने कुमारका नाम वज्रायुध रखा। क्रमशः धात्रियों से लालित-पालित होते हुए राजकुमार आठ वर्षके हुए, तब राजाने उन्हें कलाओंका अभ्यास करनेके लिये कलाचार्यके पास भेज दिया। धीरे-धीरे कुमारने सब कलाएँ सीख लीं और युवावस्थाको प्राप्त हुए, तब राजाने अनुपम रूपवती लक्ष्मीवती नामक राजकुमारीके साथ उनका व्याह बड़ी धूमधामसे कर दिया।

इसके बाद कितनाही समय बीत गया। तब अनन्तवीर्यका जीव अच्युत-देवलोकसे च्युत होकर कुमार वज्रायुधकी पत्नी लक्ष्मीवतीकी कोखमें पुत्र-रूपसे उत्पन्न हुआ। समय पूरा होनेपर उसका जन्म हुआ। उसका नाम सहस्रायुध रखा गया। क्रमशः कलाओंका अभ्यास करते हुए वह युवावस्थाको प्राप्त हुआ। उसका विवाह राजकन्या कनकश्री के साथ हुआ। उसीके साथ रहकर भोग-विलास करते हुए उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम शतबल रखा गया।

एक दिन राजा क्षेमङ्कर अपने पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रके साथ सभा-मण्डपमें श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए थे। इसी समय वहाँ ईशान-कल्प-वासी मिथ्यात्वके कारण मोह-प्राप्त चित्रचूड़ नामका कोई देव आया। उसने राजा क्षेमङ्करके पास आकर कहा,— "हे राजन्! जगत्में न कोई देव है, न गुरु है, न पुण्य है, न पाप है, न जीव है और न परलोक ही है।" उसकी यह नास्तिकता भरी बात सुन, कुमार वज्रायुधने उससे कहा,— "देव! तुम्हारी यह नास्तिकताकी बातें उचित नहीं; क्योंकि इसके तुम्हीं स्वयं प्रमाण हो। यदि तुमने पूर्व भवमें कोई पुण्य नहीं किया होता, तो देवत्वको नहीं प्राप्त होते। पहले तुम मनुष्य थे, अब देव हो। इससे यह सिद्ध होता है, कि जीव है। यदि जीव न होता, तो शुभाशुभ कर्मोंका उपार्जन कौन करता? और उन कर्मोंका भोग किसे होता?" इस प्रकार वज्रायुधकुमारने उसको जीवका अस्तित्व सिद्ध करके दिखलाया और उसके अन्य संशयोंको भी हेतु, युक्ति और दृष्टान्तोंसे छिन्न-भिन्न कर डाला, जिससे उसे बोध हो

गया। तब देवताने प्रसन्न होकर कहा,— "हे कुमार ! आपने मेरा बहुत बडा उपकार किया, जो मुझे नास्तिकताके कारण भवसागरमें डूबनेसे बचा लिया।" यह कह, उसने कुमारसे समकित सहित श्रीजिनधर्म अङ्गीकार कर कहा,— "हे धर्मके उपकारक ! मैं आपकी कुछ भलाई करना चाहता हूँ । इसलिये कहिये, मैं क्या करूँ ? देवका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता।" उसके ऐसा कहने पर भी जब कुमारने पूरी निस्पृहता दिखलायी, तब देवने स्वयं बहुत आग्रह करके उनको एक आभूषण दिया और उन्हें प्रणाम कर स्वर्गमें चला गया। वहाँ पहुँच कर उसने ईशानेन्द्रसे यह सब हाल कह सुनाया। यह सुन, वज्रायुधके गुणोंसे प्रसन्न होकर ईशानेन्द्रने यह जान लिया, कि कुमार भरतक्षेत्रके सोलहवें तीर्थङ्कर होनेवाले हैं और अपने स्थानपर बैठे हुएही उन्होंने कुमार वज्रायुधकी पूजा की।

एक दिन वसन्त ऋतुके जमानेमें सुदर्शना नामकी एक दासीने श्री वज्रायुधकुमारको फूल देकर कहा,—"हे देव ! लक्ष्मीवती देवी आपके साथ सुरनिपात नामक उद्यानमें क्रीडा करनेकी इच्छा कर रही है।" यह सुन, कुमार वज्रायुधने प्रेमपूर्ण हो, तत्काल अपनी सातसौ रानियोंके साथ उसी उद्यान की यात्रा कर दी। वहाँ अनेक प्रजा-जनोंको तरह-तरहकी क्रीडाओंमें लगे हुए देखकर वे स्वयं भी रानियोंके साथ-साथ क्रीडा वापीमें प्रवेश कर जल क्रीडा करने लगे। इसी समय एक नवीन घटना घटी।

पहले अपराजितके भवमें वज्रायुध कुमारने जिस दमितारि नामक प्रतिवासुदेवको हराया था, वह संसारमें परिभ्रमण करते हुए, बहुत दिनों तक तपस्याका अनुष्ठान करनेके पश्चात् व्यन्तर जातिका देव हो गया था। उसने वज्रायुधकुमारको जलक्रीडा करते देख, पूर्व भवके द्वेषसे प्रेरित हो, उनका विनाश करनेकी इच्छासे एक बडा सा पर्वत उखाड कर उसी बावलीमें फेंका और उसके नीचे पडे हुए कुमारको बडी मजबूतीसे नागपाशमें बाँध लिया। कुमार वज्रायुध चक्रवर्ती

होनेवाले थे, इसलिये उनमें बड़ा बल था। वे दो हज़ार यक्षों द्वारा अधिष्ठित थे। इसलिये वे तत्काल उस नागपाशको काट, पर्वतको चूर-चूर कर, बेदाग शरीर लिये हुए वापीसे बाहर निकले और सब रानियोंके साथ वनमें क्रीड़ा करने लगे। इसी समय इन्द्र, महाविदेह में तीर्थङ्करकी वन्दना कर, शाश्वत तीर्थकी यात्रा करनेके लिये नन्दीश्वर-द्वीपकी ओर चले जा रहे थे। उन्होंने वज्रायुधको पर्वत तोड़, नागपाश काटकर बावलीसे बाहर निकलते देख लिया। यह देख, आश्चर्यमें आ, इन्द्रने अपने ज्ञानका उपयोग कर यह जान लिया, कि वे भावीतीर्थङ्कर हैं। यह जान, उन्होंने भक्तिपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार उनकी स्तुति की,—"हे कुमारेन्द्र! तुम धन्य हो। क्योंकि तुम्हीं इस भरतक्षेत्रमें कल्याण और शान्तिके देनेवाले श्रीशान्तिनाथके नामसे सोलहवें तीर्थङ्कर होनेवाले हो।" इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र नन्दीश्वर-द्वीप चले गये। इसके बाद कुमार भी क्रीड़ा कर अपने परिवार सहित घर आये।

एक दिन पंचम देवलोक-वासी लोकान्तिक देवने आकर राजा क्षेमङ्करसे कहा,—"स्वामिन्! अब आप धर्मतीर्थका अवलम्बन करें।' यह सुन, अपना दीक्षा-काल निकट जान, क्षेमङ्कर राजाने वज्रायुध कुमारको राजगद्दी पर बैठाकर सांवत्सरिक दान किया। वर्षके अन्तमें चारित्र ग्रहण कर, कुछ समय तक छद्मवेशमें विहार करते हुए घाती कर्मोंका क्षय कर, वे केवल-ज्ञानको प्राप्त हुए। इसके बाद उन्होंने देवताओंका समवसरण रचाया। उसमें बैठकर जिनेश्वर क्षेमङ्करने इसप्रकार देशना दी,— "हे भव्य प्राणियों! चिन्तामणि, कल्पवृक्ष और कामधेनुकी तरह धर्मकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये। साथ ही इस धर्म की श्रुत, शील और दया आदिसे भली भाँति परीक्षा करनी चाहिये; क्योंकि बिना परीक्षा के यह आदर-योग्य नहीं। जैसे कि वैद्यकमें दूध पीना बहुत गुणकारक बतलाया गया है, यह सुन कर यदि कोई मूर्ख आकका दूध पी जाये, तो उसकी आँतें सड़ जायेंगी

और बहुत खराब बीमारी पैदा हो जायेगी। इधर यदि कोई बुद्धिमान विचार कर गायका दूध पीये, तो वह उसके बलको बढ़ायेगा और उससे उसकी पुष्टि होगी। इसी प्रकार मनुष्यको विचारके साथ धर्म का आदर करना चाहिये। यदि बिना विचारे दूसरी तरहका कार्य किया जाये, तो अमृताम्रका विनाश करनेवाले राजादिककी भाँति वह बहुत बड़ा दोष उत्पन्न करता है। अर्थात् जैसे अमृत फलवाले आम्रवृक्ष का विनाश करनेवाले राजा आदिको पश्चाताप हुआ, उसीतरह उसको भी पश्चाताप होता है। यह सुन, सभाके सब लोगोंने जिनेश्वरसे पूछा, "हे प्रभु! बिना विचारे काम करनेके कारण उन लोगोंको कैसे दोष हुआ, सो कृपाकर कहिये।" यह सुन, तीर्थङ्करने कहा,—"हे भव्य जनो! उनकी कथा इस प्रकार है, सुनो'—

"मालव-देशमें उज्जयिनी नामकी नगरी है। वह सारी पृथ्वीमें प्रसिद्ध है। उसमें जितशत्रु नामके राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम विजयश्री था। अपनी उस पटरानीके साथ विषय-सुख भोगते हुए राजा सुखसे राज्य कर रहे थे। एक दिन राजा सभामें बैठे हुए थे। इसी समय द्वारपालने आकर विनय-पूर्वक कहा,—"हे स्वामिन्! आपके मन्दिरके द्वारपर देखनेमें राजकुमारोंकी तरह रूप—रंगवाले चार पुरुष आये हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं।" यह सुन, राजाने कहा,—"हे प्रतिहार! उन्हें शीघ्रही अन्दर ले आओ" इसके बाद द्वारपाल उन चारों पुरुषोंको राजसभामें ले आया। वे राजा को प्रणाम कर विनयसे नम्र बने हुए खड़े रहे। राजाने उन्हें बैठनेके लिये आसन आदि देकर सम्मानित किया और उन्हें देखकर मन-ही-मन यह सोचकर, कि ये तो मेरे ही वशके मालूम पड़ते हैं, उन्हें पान आदि देकर उनका और भी आदर किया तथा पूछा,—"तुम लोग कहाँसे आ रहे हो और क्या चाहते हो?" यह सुन, उनमें जो सबसे छोटा था, वह बोला,—"हे देव! उत्तर-प्रदेशमें सुवर्ण-तिलक नामक एक श्रेष्ठ नगर है। उसमें वैरी मर्दन नामके राजा थे, जिनकी स्त्रीका

नाम चारुरूपवती था। उनकी कोखसे क्रमशः चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम क्रमसे देवराज, वत्सराज, दुर्लभराज और कीर्त्तिराज थे। पिताने चारों पुत्रोंको कलाभ्यास कराया और जब वे जवान हुए, तब उनकी शादी उनके अनुरूप कन्याओंके साथ कर दी। अन्तमें राजाको बड़ी भारी व्याधि हो गयी और उन्होंने अपने बड़े बेटे देवराजको गद्दी पर बैठा, उन्हें हित-शिक्षा दे, स्वर्ग-लोककी यात्रा की। देवराजने कुछ ही दिनों तक राज्यका पालन किया था, कि इसी बीच उसके बलवान् चाचाओंने इकट्ठा होकर बल-पूर्वक देवराजका राज्य छीन लिया और उसे तथा उसके छोटे भाइयोंको देश-निकाला दे दिया। हे देव! वही देवराज, अपने भाइयोंके साथ आपकी सेवामें आया हुआ है।" यह सुनकर हर्षित होते हुए राजाने कहा,—"तुमलोगोंने मेरे पास आकर बहुत ही अच्छा काम किया; क्योंकि सत्पुरुषोंको सत्पुरुषोंकाही आश्रय ग्रहण करना चाहिये।" यह कह, राजाने प्रतिहारीको आज्ञा देकर उनके लिये सब सामग्रियों सहित बड़े भारी महल की व्यवस्था कर दी। इसके बाद स्वामीकी भक्ति करनेमें कुशल उन चारों सेवकोंको राजाने प्रसन्नता-पूर्वक अपना अङ्ग-रक्षक बनाया। वे भी क्रमसे रातको एक-एक पहरकी बारीसे शस्त्र-बद्ध होकर सोये हुए राजाके शरीरकी रक्षा करने लगे। एक दिन गरमीके दिनोंमें देवराज, राजाकी आज्ञा लेकर, पासही के एक गाँवमें किसी कामके लिये गया। वहाँका काम पूरा कर, जब वह पीछे लौटने लगा, तब आधी रात तै करते-न-करते बड़ी भयंकर आँधी आयी, प्रचण्ड वायुसे धूल उड़ने लगी, बड़ी बालू उड़-उड़कर आँखोंमें पड़ने लगी, पत्तों और तृणोंसे सारा आसमान भर गया, साथही बूँदे पड़ने लगीं, बादल गरजने लगे और नेत्रोंको सन्ताप देनेवाली बिजली चमकने लगी। उस समय अन्धड़-पानीसे डरकर देवराजने एक वट-वृक्षका आश्रय ग्रहण कर लिया और वहीं खड़ा हो रहा। इतनेमें उस वृक्षपर कुछ शब्द होने लगा। उसने सोचा,—"इस वृक्ष पर कौन है और वह क्या बोल रहा है? यह सुनना चाहिये।"



उसने हाथसे उन बूँदोंको पोंछ दिया। इसी समय एकाएक राजाकी नींद टूट गयी और उन्होंने देवराजको रानीके स्तनोंपर हाथ फेरते देखा पृष्ठ १३८

स्त्री अथवा धनके द्रोहका होगा, नहीं तो इनको इतना क्रोध हरगिज नहीं होता, परन्तु मेरे बडे भाई ऐसा कोई काम करेंगे, यह तो बिलकुल अनहोनीसी बात मालूम पडती है। कहा भी है,—

"ये भवन्त्युत्तमा लोके, स्वप्रकृत्यैव ते ध्रुवम् ।
अभ्यर्थीकुर्वते मृत्यु, प्रपद्यन्ते न चोत्पथम् ॥ १ ॥
भीता जनापवादस्य, ये भवन्ति जितेन्द्रिया ।
अकार्यं नैव कुर्वन्ति, ते महामुनयो यथा ॥ २ ॥

अर्थात्—"इस लोकमें जो लोग स्वभावसे ही उत्तम हैं, वे मृत्युका भले ही आलिंगन कर लें, पर कुमार्गका अवलम्बन कभी नहीं करते। जो जितेन्द्रिय पुरुष लोकापवादसे डरते हैं, व महानुभावोंकी भाँति कुकर्म नहीं करते।"

यही विचार कर वत्सराजने सोचा,—"राजाने तो आज्ञा दे डाली, परन्तु मैं कुकृत्य क्यों करूँ ? पर उनकी आज्ञा भी तो टालने लायक नहीं। इसलिये कुछ देर कर दूँ, तो ठीक है; क्योंकि काल-विलम्ब करनेसे अशुभका निवारण हो जाता है, ऐसा विद्वानोंका कथन है।" इसी प्रकार सोच विचार कर उसने राजाके पास आकर कहा,—"स्वामिन्! अभीतक तो देवराज जगाही हुआ है। उसे जागतेमें कोई नहीं मार सकता। इसलिये जब वह सो जायगा, तब मैं उसे मार डालूँगा।" यह सुन, राजाने उसकी बात सच मान ली। फिर वत्सराजने कहा,—"प्रभो! अच्छा हो, यदि समय बितानेके लिये आप कोई कहानी कह सुनाइये अथवा मैं कहूँ और आप चित्त देकर सुनें। राजाने कहा,—"भाई! तुम्हीं कथा कह सुनाओ।" राजाकी यह आज्ञा पाकर वत्सराजने उन्हें यह कथा सुनायी,—

"इसी भरत-क्षेत्रमें पाटलिपुत्र नामका नगर है। वहाँ प्रतापी, विनयादि गुणोंसे विभूषित पृथ्वीराज नामका राजा राज्य करता था। उसकी प्राणप्रिया पत्नीका नाम सुभगा था। उसी नगरमें रत्नसार नामका एक सेठ रहता था, जो बड़ेही निर्मल आचारवाला, सद्विचारयुक्त

और कृपाका आधारभूत था। उसकी स्त्रीका नाम ऋजुका था, उसके गर्भसे उत्पन्न धनदत्त नामक एक पुत्र उस सेठके था, जो बड़ाही पवित्र-चरित्र था। सेठका वह बालक कलाओंका अभ्यास करता हुआ बालक-पनसे युवावस्थाको प्राप्त हुआ। एक दिन वह बढ़िया पोशाक पहन मित्रों और बन्धुओंको साथ ले अपने घरसे बाहर हुआ और किसी कामके लिये कहीं चला जा रहा था। इसी समय किसीने उसे रास्तेमें जाते देख, कहा,—"यह सेठका बालक धन्य है, जो इस प्रकार मनमानी मौज़ें उड़ा रहा है।" यह सुन, किसी दूसरेने कहा,—"अरे मूर्ख! मुफ्तमें इतनी तारीफ़ क्यों कर रहा है? जो अपने बापके धनपर मौज़ करते हैं, वे तो कुपुरुष कहे जाते हैं। जो अपनी भुजाओंके प्रतापसे उपार्जन की हुई लक्ष्मीका उपभोग करता है और दान भी देता है, वही प्रशंसाके योग्य है। कहा भी है, कि—

"मातुः स्तन्यं पितुर्वित्तं, परेभ्यः क्रीडयार्थनम्।
पातुं भोक्तुं च लातुं च, बाल्य एवोचितं यतः॥ १॥

अर्थात्—"माताका स्तन-पान करना, पिताके द्रव्यका उपभोग करना अथवा दूसरोंसे क्रीड़ाके लिये कोई चीज़ लेना, यह बालकोंको ही शोभा देता है।"

उसकी यह बात सुन, उस सेठके लड़केने सोचा,—"यद्यपि ये लोग यह बातें डाहके मारे कह रहे हैं; तथापि बातें मेरे हितकी हैं। अतएव अब मैं देशान्तरको जाकर धन कमाऊँ। तभी सत्पुरुष कह-लाऊँगा, अन्यथा नहीं।" ऐसा विचार कर, उसने अपना विचार अपने मित्रोंपर प्रकट किया। मित्रोंने भी उसके विचारकी प्रशंसा की। सबके पीछे उसने अपने घर जाकर, पिताके चरणोंमें प्रणाम कर, बड़े आग्रहके साथ कहा,—"पिताजी! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं धन कमानेके लिये परदेश जाऊँ।" यह बात सुन, वह सेठ ऐसा दुखी हुआ, मानों उसे वज्र मार गया हो और बोला,—"बेटा! मेरे घरमें आपही काफ़ी धन है, उसे मज़ेसे खाओ-खर्चो और दान भी दो। तुम्हें

उपार्जन करनेकी क्या फिक्र पड़ी है? परदेशमें समय पर खानेको नहीं मिलता, कभी-कभी तो पानी भी मयस्सर नहीं होता। आराम से सोने बैठनेका सुभीता नहीं होता। इधर तुम्हारा शरीर बड़ा कोमल है। इसलिये परदेश जाना ठीक नहीं।" पिताकी यह बात सुन, पुत्रने फिर कहा,—"पिताजी! तुम्हारी उपार्जन की हुई लक्ष्मी मेरी माताके समान है। अतएव लड़कपनके सिवा और किसी अवस्थामें वह मेरे भोगने योग्य नहीं।"

इसी तरहकी बड़ी आग्रह-भरी बातें कहकर उसने पिताकी आज्ञा प्राप्त कर ली और वाहन आदि सारी सामग्रियाँ तैयार कर, काम लायक़ किरानेकी चीजें ले, खाने-पीनेकी भी चीजें साथ ले, पिताकी दी हुई शिक्षाओंको चित्तमें भली भाँति धारण कर, एक शुभ दिवसको सारे क़ाफिलेके साथ, यात्रा कर दी। इसके बाद निरन्तर चलता हुआ वह सेठका पुत्र अपने काफिलेके साथ कितनेही दिन बाद श्रीपुर नामक नगरमें पहुँचा। वहाँ किसी सरोवरके पास काफिलेका पड़ाव पड़ा। क़ाफिलेका सरदार एक खूबसूरत तम्बूके अन्दर डेरा डालकर रहा। इसी समय एक मनुष्य, जिसकी देह काँप रही थी और आँखें डरके मारे काम नहीं देती थीं, सेठके पुत्रकी शरणमें आया।

धनदत्तने उससे कहा,—"भाई! तुम डरो मत। केवल यही कह दो, कि तुम कौनसा अपराध करके मेरे पास आये हो।" उसने ऐसा पूछाही था कि इतनेमें 'मारो-मारो'की आवाज करते, शस्त्रधारी रक्षक वहाँ आ पहुँचे और क़ाफ़िलेके सरदारसे बोले,—"सेठजी! यह मनुष्य यहाँके राजाका नौकर है और उनका एक बढ़िया सा गहना लेकर जूएमें हार आया है। उस गहनेकी खोज करते हुए हमलोगोंने पता लग जाने-पर राजासे जाकर कहा, तब उन्होंने जुआरीसे वह गहना लेकर हुक्म दिया, कि इस चोरको पूरी सजा दो, यह राजद्रोही है, इसे हरगिज न छोड़ो। उस समय दयालु मन्त्रियोंने राजासे कहा, कि "इस गहनेके चोरको सम्प्रति कारागृहमें डाल दो।" यह सुन, राजाने भी उसे

क़ैदख़ाने भिजवा दिया। एक दिन रातके पिछले पहरमें क़ैदख़ाना तोड़, वहाँके पहरेदारको मार, यह चोर वहाँसे निकल भागा। हम लोग यह ख़बर पातेही उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। इसी समय यह चोर इस सरोवरके पास घने जङ्गलमें जा दबका। अब यह वहाँसे निकलकर आपकी शरणमें आया है, इसलिये आप इस राज-द्रोहीको कदापि अपनी शरणमें न रखिये।" पहरेदारोंकी यह बात सुन, क़ाफ़िला-सरदारने कहा,—"हे राजपुरुषो! तुम लोगोंने जो बात कही, वह तो ठीक है; पर अच्छे मनुष्य कभी शरणमें आये हुए मनुष्यको नहीं त्यागते।" सिपाहियोंने कहा,—"आप चाहे जो कहें; पर हमलोग तो राजाकी आज्ञाके अनुसार काम करते हैं, हमें दूसरा कुछ नहीं मालूम।" तब सार्थपतिने कहा,—"अच्छा, तो मैं राजाके पास चलकर अपनी बातें कह सुनाता हूँ।" यह कह, वह राजाके पास गया और एक अमूल्य रत्नोंका हार, राजाकी भेंट कर उनके निकट बैठ रहा। राजाने उसका बड़ा आदर-मान कर, पूछा,—"हे सार्थपति! तुम कहाँसे चले आ रहे हो?" इसपर उसने उन्हें अपना सारा हाल सुनाकर कहा,—"हे महा-राज! यदि आपका गहना आपको मिल गया हो, तो मेरी शरणमें आये हुए इस चोरको आप माफ़ कर दें।" राजाने कहा,—"गहना मिल जाने पर भी यह वध करनेही योग्य था। तो भी मैं तुम्हारी प्रार्थना सुनकर, इसे छोड़े देता हूँ।" यह सुन, राजाको प्रणामकर, यह कहते हुए, कि आपने मेरे ऊपर बड़ी भारी कृपा की, वह उस चोरको साथ लिये हुए अपने स्थानको चला गया। राजाके आदमियोंके कहे अनुसार सिपाही अपने-अपने स्थानपर चले गये। इसके बाद उस सेठके बेटेने उस चोरको भोजन आदि करानेके बाद कहा,—"देखो, अब आजसे तुम किसी दिन चोरी न करना।" यह सुन, चोरी न करनेका निश्चय कर, उसने सेठसे कहा,—"सेठजी! अब आजसे मैं आपकी कृपासे कभी चोरी न करूंगा और परलोकमें हित करनेवाले व्रतको ग्रहण करूंगा; परन्तु मेरे पास एक साधुका दिया हुआ, बड़े विकट प्रभावशाली भूतोंका

निग्रह करनेवाला एक मन्त्र है, उसे आप ले लें। मेरी यह प्रार्थना अवश्य ही मान लें।" यह सुन, परोपकारके साधन-रूप उस मन्त्रको उसने ग्रहण कर लिया। उसे मन्त्र देकर,वह चोर भी अपने घर चला गया।

इसके बाद धनदत्त सार्थवाह वहाँसे चलकर क्रमसे कादम्बरी नामकी अटवीमें पहुँचा। वहाँ एक बडी भारी नदीके किनारे काफिलेका पडाव डाला गया। जब सब मनुष्य भोजनादि तैयार करनेमें लग गये, तब एक स्थानपर बैठे हुए सार्थपतिने एक शिकारीको देखा। उसके शरीरका रंग काला, आँखें लाल-लाल और हाथमें धनुष-बाण थे। उसके साथ बहुतसे कुत्ते भी थे। तो भी न जाने वह किस दुःखके कारण रो रहा था। उसे देख, आश्चर्यमें पडे हुए सार्थपतिने सोचा,—"यह कैसी बात है?" ऐसा मनमें आते ही उसने बडे आग्रहसे उस शिकारीसे पूछा,—"तुम क्यों रो रहे हो? इसका कारण बतलाओ।" उसने कहा,—"हे भद्र! मेरे दुःखका कारण सुनिये। इसी पर्वतके ऊपर गिरिकुण्डिका नामका एक गाँव है। उसमें सिंहचण्ड नामके शूरवीर ग्राम्याधिपति रहते हैं। उनकी पत्नीका नाम सिंहवती है। इस समय वह भूतकी सतायी हुई बेतरह दुःख पा रही है। उसके बचनेकी कोई आशा नहीं है और यदि वह मरी, तो हमारे स्वामी भी निश्चयही उसके वियोगमें प्राण-त्याग कर देंगे। उन्होंने उसके लिये लाखों उपाय किये; पर तो भी उसको अपने शरीरकी सुध नहीं होती। हे सार्थपति! मैं इसी अफसोसके मारे रो रहा हूँ।" यह सुन, सार्थपतिने कहा,—"हे व्याध! यदि मैं उस स्त्रीको एक बार देख पाऊँ, तो मेरे पास जो मन्त्र है, उसका प्रयोग देखूँ। कदाचित् मन्त्र चल गया, तो चल ही गया।" यह सुन, उस भीलने उसी दम अपने मालिकके पास जाकर यह बात कही। इसके बादही वह गाँवका मालिक अपनी स्त्रीको लिये हुए उसके पास आ पहुँचा। सार्थपतिने उसी समय उस स्त्रीसे आँखें मिला, मन्त्रका जाप कर, उसका दोष दूर कर दिया। इस प्रकार उसके द्वारा अपनी स्त्रीको जीवन दान मिलते देख, ग्राम-पतिको बडा आनन्द

हुआ और वह सार्थपतिसे विदा माँग कर अपने घर चला गया। इसके बाद धनदत्त भी अपने क़ाफ़िलेके साथ वहाँसे कूचकर, धीरे-धीरे चलता हुआ समुद्रके पास ही 'गम्भीर' नामके बन्दरगाहमें पहुँचा। वहाँ वह कुछ दिनोंतक रहा भी; परन्तु इच्छानुसार लाभ नहीं हुआ, इसलिये उसने एक जहाज़ ख़रीदा और उसे तैयार कर, समुद्रको पूज, देशान्तर-के योग्य सब तरहके किरानेका सामान उसपर लादकर समुद्रमें ज्वार आनेपर उस जहाज़पर सवार हो गया। इसके बाद अनुकूल वायु पाकर वह जहाज़ बड़े वेगसे चलता हुआ बीच समुद्रमें आ पहुँचा। इत-नेमें उस सेठ-पुत्रने आकाश-मार्गसे आते हुए एक अच्छेसे तोतेको देखा। उसके मुँहमें आम्र-फल था। उसीको ढोते-ढोते वह इतना हैरान हो गया था, कि समुद्रमें गिराही चाहता था। यह देख, सेठने जहाज़के ख़लासियोंको एक लम्बा चौड़ा कपड़ा फैलाकर उसी पर उस तोतेको ले लेनेका हुक्म दिया। ख़लासी जब उस तोतेको इसी प्रकार पकड़कर ले आये, तब उसे हवा-पानीसे स्वस्थकर उसने उसे बुलवानेकी चेष्टा की, तब वह तोता, अपने मुँहका फल नीचे गिरा, मनुष्यकी सी बोलीमें बोला,—"हे सार्थनाथ! आपने आजतक जितने उपकारके काम किये हैं, उन सबमें मेरा यह जीवन-दान सबसे बढ़कर है। मुझे जिलाकर आपने मेरे बूढ़े और अन्धे मा-बापको भी जिला लिया है। इस महान् उपकारका मैं आपको क्या बदला दूँ? अच्छा, तो इस समय मेरा लाया हुआ यह आम्र-फल ही स्वीकार कीजिये।" सार्थवाहने कहा,—"हे शुक-राज! मैं इस आम्र-फलको लेकर क्या करूँगा? तुम्हीं इसे खा लो और इसके सिवा मैं तुम्हें ईख और अंगूर वग़ैरह और भी चीज़ें खानेको देता हूँ, उन्हें भी खा डालो।" यह सुन, तोतेने कहा,—"हे सार्थपति! यह फल बड़ा ही गुणकारी और दुर्लभ है। इस फलका वृत्तान्त मैं आपको सुनाता हूँ, सुनिये,—

"इसी भरतक्षेत्रमें विन्ध्य नामक एक बड़ा भारी पर्वत है। उसीके पास विन्ध्याटवी नामक एक प्रसिद्ध जंगल है। उसी जंगलमें एक

पेडपर एक तोतेका जोडा रहता था। मैं उन्हींका पुत्र हूँ। क्रमसे मेरे माँ बाप बहुत बूढे हो गये और अब उनकी आँखोंसे जरा भी नहीं दीखता। इसलिये मैं ही उनके लिये आहार ला दिया करता हूँ। एक दिन मैं उस जगलके एक आमके पेडपर बैठा हुआ था, कि इतनेमें दो मुनि वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने चारों ओर देख, सन्नाटा पाकर आपसमें बातें करनी शुरू कीं। उनकी बातोंका सार यह था, कि—समुद्रके मध्यमें कपिशैल नामक पर्वतके शिखरपर एक निरन्तर फलनेवाला आम्र-वृक्ष है। उसका एक फल एक बार कोई खाले, तो उसके शरीर-की सारी व्याधियाँ नष्ट हो जायें और उसे अकाल-मृत्यु या बुढापेका डर न रहे। साथही उसे उत्तम सौभाग्य, श्रेष्ठ रूप और देदीप्यमान कान्तिकी भी प्राप्ति हो। उन मुनियोंकी यह बातें सुन, मैंने अपने मनमें विचार किया, कि मुनियोंकी बात कदापि झूठी नहीं हो सकती, इस-लिये मैं चलकर यदि वह फल ले आऊँ, तो मेरे बापकी गयी जवानी फिर लौट आये और उनकी आँखें भी पहलेकी सी अच्छी हो जायें। हे सार्थेश! मैं इसी विचारसे इस फलको लेता आया हूँ। अब तो इसे आपही ले लीजिये, मैं दूसरा फल लाकर अपने माँ-बापको दूँगा।"

तोतेकी यह बात सुन, सेठने बडे आग्रहसे उस फलको ले लिया। तोता फिर आसमानमें उड गया। इसके बाद सेठने अपने मनमें विचार किया,—"मैं यह फल क्यों खाऊँ? अच्छा हो, यदि मैं इसे किसी राजाको दे डालूँ, जिससे बहुतसे मनुष्योंका उपकार हो। पर यदि मैं इसे नहीं खाऊँ तो फिर क्या करूँ?" इसी तरह सोच विचार कर उसने उस आम्र-फलको अपने पास छिपाकर रख लिया।

कुछ ही दिनोंमें वह जहाज सामने वाले तटपर आ लगा। सेठका बालक जहाजसे नीचे उतरा और भेंट लिये हुए राजाके पास गया। और-और चीजोंके साथ-साथ उसने यह आम्र-फलभी राजाको भेंट किया। उसे देख, आश्चर्यके साथ राजाने पूछा,—"सेठजी! यह फल कैसा है।" यह सुन, उसने उस फलका पूरा-पूरा हाल कह सुनाया। सब कुछ

सुनकर राजाने सन्तुष्ट होकर उसका सारा कर माफ़ कर दिया। 'श्रीमानकी मेरे ऊपर अपार दया है', कहता हुआ सेठ अपने जहाज़ पर चला आया। इसके बाद अपने जहाज़के कुल सामान वेंच, नये सामानोंसे जहाज़ भर वह फिर समुद्रकी राह उसी गम्भीर नगरमें आ पहुँचा, जो कादम्बरी नामकी अटवीमें बसा हुआ था। वहीं वह सेठ सब लोगोंके साथ ठहर गया। रातके समय क़ाफ़िलेवाले व्यापारी मालको चारों ओरसे घेरकर सोये और एक-एक पहरकी बारीसे जागते हुए पहरा देने लगे। रातके पिछले पहर 'मारो-मारो' की आवाज़ लगाते हुए भीलोंने उनपर अकस्मात् धावा बोल दिया। उस समय सार्थवाह भी बख़्तर पहने वीरोंको साथ लिये हुए, उनसे लड़नेको तैयार हो गया। इसी समय सार्थेशके भाटने कहा,—"हे स्थिरचित्तवाले धनदत्त! तुम्हारी जय हो।" इसी समय भीलोंके सरदारने भाटके मुँहसे अपने पूर्वके उपकारी धनदत्तका नाम सुन, मन-ही-मन शङ्कित होकर, सब भीलोंको लड़ाई करनेसे रोक दिया और अपने हथियार नीचे डाल कर सार्थवाहसे मिलने आया। धनदत्तने भी उसे पहचानकर बड़ी ख़ातिरके साथ कहा,—"हे कृतज्ञ-शिरोमणि! कहो, कुशलसे हो न?" अब तो दोनों एक दूसरेके गले-गले मिले और एक साथ एकही आसन पर बैठ रहे। सार्थवाहने उसे पान वग़ैरह देकर सम्मानित किया। इसके बाद जब सार्थेशने उससे क्षेम-कुशल पूँछा, तब वह बार-बार अपनेको धिक्कार देता हुआ बोला,—"ओह! मैं अनजानतेमें कैसा बुरा काम करने जा रहा था! मेरा अपराध क्षमा कीजिये और कृपाकर मेरे गाँवको चलिये।" यह कह, वह बड़े आग्रहके साथ सार्थवाहको सारे क़ाफ़िलेके साथ अपने गाँवमें ले आया। अनन्तर उसे अपने घरमें ले जाकर उसने सबको नहलाया-धुलाया, खिलाया-पिलाया और वस्त्रादिसे सम्मानितकर, मोती और हाथी-दाँतकी बनी अच्छी-अच्छी चीज़ोंको भेंट देकर सेठका भली भाँति सत्कार किया। सेठने भी उसे प्रेमभरे वचनोंसे सन्तुष्ट कर, उसकी दी हुई चीज़ें ले, उससे विदा माँगकर प्रस्थान किया

और सकुशल अपने नगरमें आ पहुँचा। इसके बाद उसने बड़ी धूमधाम-के साथ अपने नगरमें प्रवेश किया और अपने उपार्जन किये हुए धनमेंसे सत्पात्रोंको दानकर बहुतसे दीनोंका उद्धार किया। बहुतसे पुण्य-स्थानोंकी मरम्मत करा, जिन चैत्य बनवा, उनमें प्रतिमाओंकी स्थापना कर, तथा ऐसे ही अन्यान्य सैकड़ों सत्कर्म करके उसने अपने मनो-वाञ्छित समस्त सुखोंको भोगना आरम्भ किया। एक दिन वहाँ क्रमश. विहार करते हुए कोई सूरि महाराज आ पधारे। उसी समय सेठ धन-दत्त उनके पास जा पहुँचा और उनसे धर्मकी बातें सुन, वैराग्य पाकर, चारित्र ग्रहण कर लिया। इसके बाद उग्र तपस्या करके अपने समस्त कर्मोंका क्षय कर, उसने क्रमश. आपत्तिरहित मोक्ष-पद प्राप्त किया।

इधर उपर्युक्त राजाने आम्रफलको हाथमें लेकर विचार किया,—"इस एक ही आमके फलमें भला क्या गुण होगा? इस लिये यदि मैं इसके बहुतसे फल पैदा कराऊँ, तो बहुतोंका उपकार भी हो और बहुत-सा गुण भी हो।" ऐसा विचार कर राजाने अपने सेवकोंसे कहा,—"इस आमको किसी अच्छे स्थानमें ले जाकर बोओ। जिसमें खूब बड़ा आमका पेड़ लगे, ऐसा करो।" सेवकोंने उस फलको मनोरम नामक बागमें ले जाकर बो दिया और उसके चारों तरफ आल-बाल बना कर नित्य उसे पानीसे सींचने लगे। कुछ दिनों बाद उसका अङ्कुर निकला। यह समाचार सुनकर राजाको बड़ी खुशी हुई। समय पाकर उस वृक्षमें मोजरें लगीं और फल भी फले। तब राजाने रखवालोंको इनाम देकर कहा, कि तुम लोग उस वृक्षकी खूब यत्नके साथ रक्षा करो। रखवाले रात दिन वहीं रहते हुए उस पेड़की रखवाली करने लगे एक दिन दैवयोगसे उसका एक फल रातके समय आपसे आप टूट कर गिर पड़ा। रक्षकोंने सवेरा होतेही यह पका हुआ फल गिरा देखा और तत्काल उसे लिये हुए राजाके पास पहुँचे। राजाने उसे देखकर सोचा,—"यह नया फल किसी अच्छे सुपात्रको देना चाहिये।" ऐसा विचार कर, उसने चारों वेदोंके जाननेवाले देवशर्मा नामके एक ब्राह्मण-

को बुलवाकर बड़ीभक्तिके साथ वह अमृतफल उसे दिया। उस ब्राह्मणने राजाका दिया हुआ वह आम्रफल घर ले जाकर देवताको चढ़ाकर खा लिया और तत्काल मर गया। जब राजाने यह बात सुनी, कि वह ब्राह्मण तो उस फलको खातेही मर गया, तब उन्हें बड़ा ही खेद हुआ। उन्होंने कहा,—"ओह! मैं तो धर्म करने जाकर घोर ब्रह्महत्याके पापमें फँस गया। अवश्यही वह ज़हरीला फल मेरे किसी शत्रुने ही मुझे मार डालनेके अभिप्रायसे मेरे पास इस तरह धोखाधड़ीसे पहुँचवा दिया होगा। इसलिये यद्यपि मैंने इस वृक्षको आपही रोपा और इस तरह इसकी रक्षा की है, तथापि इसे जहाँतक जल्द हो सके, कटवा डालना चाहिये, जिसमें बहुतसे लोग न मरने पायें।" बस, फिर क्या था? तुरतही उन्होंने पेड़ काट डालनेकी आज्ञा दे दी। तत्काल राजाके सेवकोंने तेज़ कुल्हाड़ोंसे उस उत्तम वृक्षको जड़से काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। उस समय कोढ़ वग़ैरह रोगोंसे दुःख पानेवाले मनुष्योंने उस विष-वृक्षके काटे जानेका हाल सुन, जीवनसे ऊबे हुए होनेके कारण सोचा, कि चलो उसी विषफलको खाकर ख़ुशी-ख़ुशी इस संसारसे कूच कर जायें। यही सोचकर वे लोग वहाँ आये। उनमेंसे किसीने उस वृक्षका पका हुआ, किसीने अधपका फल—जोही जिसके हाथ आया, वही खा गया। किसीने पत्तेही चबाये, किसीके मोजरें ही मयस्सर हुईं। इसका परिणाम यह हुआ, कि सबके सब निरोग और अद्वितीय स्वरूपवाले हो गये। इस प्रकार उन कुष्ठादि रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियोंके दिव्यरूपवाले हो जानेका हाल सुन, राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने सोचा,—"ऐं! यह तो बड़ेही अचम्भेकी बात है, कि सामान्य मनुष्य, तो इसके फल खाकर लाभान्वित हुए और बेचारा वेद-वेदाङ्गमें निपुण ब्राह्मण मुफ्तही मारा गया।"

ऐसा विचार कर राजाने रखवालोंको बुलाकर पूछा,—"तुम लोग उस दिन वह फल पेड़परसे तोड़ लाये थे या ज़मीनपर गिरा देखकर उठा लाये थे?" उन्होंने सच-सच बयान कर दिया। यह सुन, राजाने

ने विचार किया,—"अवश्यही उस फलमें साँप या किसी और जहरीले जानवरका जहर असर कर गया होगा। इसीसे वह ब्राह्मण मर गया, नहीं तो यह अवश्यही अमृतफल था। मैंने बड़ी भारी वेवकूफी की,जो विना जाँचे-पूछे क्रोधमें आकर इस उत्तम वृक्षको कटवा डाला। शास्त्रमें ठीक ही कहा है, कि——

सगुणमपगुणं वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥ १ ॥"

अर्थात्—"काम चाहे गुणका हो वा दुर्गुणका; पर पण्डितगण उसे करनेके पहले खूब अच्छी तरहसे उसके परिणामका विचार कर लेते हैं, क्योंकि जल्दबाजीमें पड़कर जो काम किया जाता है, उसका पछतावा छातीमें छिदे हुए शूलकी तरह मरण-पर्यन्त हृदयमें दाह उत्पन्न करता रहता है।"

यही सोच-सोचकर राजा जन्मभर पछताया किये। जैसा उन्होंने विना सोचे-विचारे काम किया, वैसा कभी किसीको नहीं करना चाहिये।"

इसी तरह कहानी सुनाते-सुनाते उसने रातका दूसरा पहर विता दिया और वत्सराजका पहरा खतम हो गया। उसके जानेपर उसका छोटा भाई दुर्लभराज आया। राजाने सोचा,—"वत्सराजने कथा तो बड़ीही मनोहर सुनायी, पर मेरा काम कुछ भी नहीं किया।"

अबके राजाने दुर्लभराजको पहरेपर आया देखकर उससे कहा,—"हे दुर्लभराज! क्या तुम मेरा एक काम कर दोगे?" उसने कहा,—"हाँ, जरूर करूँगा।" राजाने कहा,—"अच्छा, तो जाओ, अपने भाई देवराजका सिर काटकर मेरे पास ले आओ।" यह सुन, उसे भी बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। बाहर जा, कुछ देर विचार करनेके अनन्तर वह तुरतही लौट आया और राजासे बोला,—"अभी तो मेरे दोनों

"षट्कर्णो भिद्यते मंत्र-श्चतुष्कर्णो न भिद्यते।
द्विकर्णस्य च मन्त्रस्य, ब्रह्माऽप्यन्तं न गच्छति॥ १ ॥"

अर्थात्---"छः कानोंमें पड़े हुए मन्त्रका भेद खुल जाता है; पर चार कानोंवाली बातका भेद छिपा रहता है और दो कानोंवाले मन्त्रका भेद तो ब्रह्मा भी नहीं जान पाते।"

यह सुन, राजाने कहा,—"हे शुभङ्कर! यदि इस बातका भण्डा फूटा तो मैं संसारमें झूठा कहलाऊँगा और मेरी बड़ी भारी बदनामी होगी।" शुभङ्करने कहा,—"हे प्रभु! क्या आपने यह नहीं सुना है, कि सत्पुरुषोंके पेटकी बात उनके साथ ही चितापर जल जाती है।" यह सुनकर राजाको दिलजमई हुई और वे शुभङ्करके साथ अपनी सेनामें चले आये। वहाँ पहुँचकर शुभङ्करने इस प्रकार अपने प्रभुका प्रताप वर्णन करना आरम्भ किया,—"ओह! जिसके नादसे मदोन्मत्त हाथीका भी मद उतर जाता है, उस सिंहको मेरे स्वामीने किस तरह खिलौनेके समान मार गिराया।" यह सुनकर, सामन्तों और माण्डलिक राजाओंको आश्चर्यके साथ-साथ आनन्द भी हुआ। इसके बाद खूब बाजे-गाजेके साथ, बड़ी धूम-धामसे राजाने अपने नगरमें प्रवेश किया। जहाँ-तहाँ लोग इकट्ठे होकर राजाके बल-विक्रमकी बड़ाई करने लगे। वह महोत्सवमय-दिवस क्षणकी तरह देखते-देखते बीत गया। जब राजा सभा-विसर्जन कर, रानीके महलमें आये, तब उन्होंने पूछा,—"स्वामी! आज नगरमें ऐसी चहल-पहल किस लिये है? क्योंकि बार-बार बाजे बजनेका शब्द सुनाई दे रहा है।" इसपर राजाने कहा,—"आज मैंने एक सिंहका शिकार किया है, उसीकी बधाईमें नगरके लोग उत्सव कर रहे हैं।" यह सुन, रानीने फिर कहा,—"हे नाथ! उत्तम वंशमें जन्म ग्रहण करके भी अपनी झूठी प्रशंसा कराते हुए आपको लज्जा नहीं आती?" राजाने कहा,—"झूठी प्रशंसा कैसे है?" रानीने कहा,—"सिंह तो मारा शुभङ्करने और आपको बधाई मिल रही है। यह कैसी बात है?" यह सुन, मन-ही-मन क्रोधित होकर राजाने सोचा,—

"उस दुरात्माने मुझसे तो ऐसा कहा, कि मैं यह गुप्त बात किसीसे न कहूँगा और इधर आजके आजही रानीके पास आकर अपनी बड़ाई हाँक गया। इसलिये इस रहस्यका भेद कहनेवाले इस वटुकको किसी तरह गुप्त रीतिसे मरवा डालनाही ठीक है।" यही सोचकर राजाने एक सिपाहीको हुक्म दिया, कि इस वटुकको गुप्त रीतिसे मार डालो। राजाके आज्ञानुसार उसने वटुकको तत्काल मार डाला और राजासे आकर कहा, कि मैंने आपके हुक्मकी तामील कर डाली। यह सुन, राजा बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे दिन रानीने राजासे पूछा,—"स्वामिन्! आज वह वटुक आपके साथ नहीं दिखाई देता। वह कहाँ गया?" राजाने कहा,—"प्रिये! तुम उस दुष्टका नाम भी न लो।" रानीने कहा,—"स्वामी! उसने आपका क्या बिगाड़ा है? वह तो बड़ाही गुणी और कौतुकी है।" तब राजाने उसका सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। सब सुनकर रानीने कहा,—"नाथ! सिंहके मारनेकी बात उस बेचारेने मुझसे नहीं कही थी। मैंने तो स्वयंही अपने महलके सातवें खण्ड-पर बैठकर तमाशा देखते-देखते वह हाल अपनी आँखों देखा था। इस मामलेमें उस बेचारेका कुछ भी अपराध नहीं है।" इतना कह रानीने फिर पूछा,—"स्वामी! सच कहिये वह जीता है या मर गया?" यह सुन, राजाने बड़े अफसोसके साथ कहा,—"रानी! मुझसे तो बड़ा भारी पाप हो गया। मैंने तो उस गुण-रत्नोंके समुद्रको मरवा डाला।" इस प्रकार राजाने बड़ी देरतक उसके लिये शोक मनाया और मन-ही-मन दुखी हुए, पर अब क्या हो सकता था? बेचारा वटुक तो चल बसा! इसलिये जो कोई बिना विचारे काम करता है, वह बड़े पाप बटोरता है, और दुनियाँमें उसकी बदनामी भी खूब होती है।"

दुर्लभराजके कथा सुनाते-सुनाते रातका तीसरा पहर बीत गया। वह वहाँसे उठकर अपने डेरेपर चला आया और उसकी जगहपर उसका चौथा भाई कीर्त्तिराज आ पहुँचा। राजाने उससे भी कहा,—"हे कीर्त्तिराज! क्या तुमसे मेरा एक काम हो सकेगा?" उसने कहा,—

"स्वामी! यदि मैं आपका कामही न कर सका, तो फिर आपका सेवक किसलिये कहलाया?" तब राजाने कहा,—"हे कीर्त्तिराज! यदि तुम मेरे सच्चे सेवक हो, तो अपने भाई देवराजका सिर उतार लाओ। यह सुन, "बहुत अच्छा," कह कर वह राजमन्दिरसे बाहर हुआ और कुछ देर तक टालमटोल कर, लौट आया। तदनन्तर उस धीर पुरुषने राजासे कहा "हे नाथ! रात बीत चली है, इसलिये सभी पहरेदारोंके साथ-साथ मेरे तीनों भाई भी जगे हुए हैं। इसलिये मैं मौक़ा पाकर किसी और समय आपका काम कर दूँगा।" यह कह उसने भी समय बितानेके इरादेसे राजाको एक कथा सुनायी। वह इस प्रकार है,—

"इसी भरतक्षेत्रमें महापुर नामक नगरमें शत्रुञ्जय नामके एक राजा रहते थे। उनकी रानीका नाम प्रियङ्गु था। एक बार किसी विदेशीने राजाको एक अच्छी नसलका घोड़ा भेंटमें दिया। उस घोड़ेको देखकर राजाने विचार किया,—"रूपसे तो यह घोड़ा बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है; परन्तु इसकी चाल कैसी है, यह भी देखना चाहिये। कहा है, कि—

"जवोऽश्वशक्तेः परमं विभूषणं त्रपांगनायाः कृशता तपस्विनः।
द्विजस्य विद्यैव मुनेरपि क्षमा, पराक्रमः शस्त्रबलोपजीविनाम्॥ १॥"

अर्थात्—"अश्वकी शक्तिका श्रेष्ठ भूषण उसकी चाल है. स्त्रीका भूषण लज्जा है। तपस्वीका भूषण कृशता (दुर्बलता) है, ब्राह्मणका भूषण विद्या है। मुनिका भूषण क्षमा है। शस्त्रके बलसे जीविका उपार्जन करनेवालोंका भूषण पराक्रम है।"

ऐसा विचार कर, राजाने उस घोड़ेकी पीठपर ज़ीन कसवाया और उस पर सवार हो, उसकी चाल देखनेकी इच्छासे उसे चलाया। तुरतही वह घोड़ा हवासे बातें करता हुआ ऐसा दौड़ा, कि सारी सेना पीछे रह गयी। घोड़े पर सवार राजा सबकी आँखोंके परे हो गये। उस समय उस घोड़ेके व्यापारीने सामन्तोंसे कहा,—"मैं उस समय यह कहना भूल गया था, कि इस घोड़ेको विपरीत शिक्षा दी गयी है।"

यह सुन, राजाके सेवक तेज़ घोड़ोंपर सवार हो, भोजन और पानी साथ लिये हुए, राजाके पीछे-पीछे दौड़े। इधर राजा, उस घोड़ेकी चालको अच्छी तरह मालूम कर, उसे रोकनेके लिये ज्यों-ज्यों लगाम खींचने लगे, त्यों-त्यों वह और भी अधिक वेगसे चलने लगा। इस तरह उलटी शिक्षा पाये हुए उस घोड़ेने बड़ी दूरकी मंज़िल मारी। लगाम खींचते-खींचते राजाके हाथसे ख़ून निकल पड़ा, पर वह खड़ा नहीं हुआ। इसके बाद जब राजाने थक कर उसकी लगाम ढीली कर दी, तब वह आपसे आप खड़ा हो गया। अब राजाको मालूम हो गया, कि इस घोड़ेको उलटी शिक्षा मिली है। इसके बाद राजाने घोड़े से नीचे उतर, उसके जीन साज उतार दिये। इतनेमें आँतें निकल पड़नेके कारण वह घोड़ा तत्काल पृथ्वी पर गिरकर मर गया। तद-न्तर उस भयंकर वनमें, जो दावाग्निसे जल रहा था, वे राजा भूख और प्यासके मारे व्याकुल होकर इधर-उधर घूमने लगे। इतनेमें राजाने उस जंगलमें एक लम्बी-लम्बी शाखाओंवाले बड़े भारी वट-वृक्षको देखा। थके-मांदे होनेके कारण राजा उस बड़के नीचे जाकर छायामें बैठ रहे। इसके बाद पानीकी तलाशमें चारों ओर नज़र दौड़ाते हुए उन्होंने देखा, कि उसी वृक्षकी एक शाखापरसे पानीकी बूँदे टपक रही हैं। यह देखकर राजाने अपने मनमें विचार किया—"इस वृक्षके खखोड़रमें बरसातका जल जमा है। वही इस समय गिर रहा है।" ऐसा विचार कर, खदिर-वृक्षके पत्तोंका प्यालासा बनाकर, प्याससे मरे जाते हुए राजाने उस पानीको नीचे गिराना शुरू किया। क्रमशः यह पत्तोंका प्याला श्याम-जलसे लबालब भर गया। उसे हाथमें लिये हुए राजाने ज्योंही उसका जल पीना चाहा, त्योंही एक पक्षीने वृक्षसे नीचे आकर उनके हाथसे वह प्याला नीचे गिरा दिया और फिर वृक्षकी डालपर जा बैठा। यह देख, मन-ही-मन क्रोधित हो, राजाने फिर उसी तरह एक पात्रमें जल भर कर उसे पीना चाहा। इतनेमें फिर उस पक्षीने आकर वह पात्र उसी तरह नीचे गिरा दिया। तब बड़े क्रोधित होकर

राजाने अपने मनमें विचार किया,—"अबकी वार यदि वह दुष्ट पक्षी फिर आया, तो मैं उसे मारकर ढेर कर दूँगा।" इसी विचारसे उन्होंने एक हाथसे चाबुक पकड़े हुए, दूसरे हाथसे फिर उस पात्रमें पानी भरा। यह देख, उस पक्षीने सोचा,—"यह राजा क्रोधमें आ गया है। इसलिये यदि मैं इस वार इसके हाथसे जल नीचे गिराऊँगा, तो यह ज़रूर मुझे मार डालेगा। और यदि मैं इस जलको नहीं गिरा देता, तो इस ज़हरीले पानीके पीनेसे राजा ज़रूरही मर जायेगा। अतएव मैं भले ही मर जाऊँ; पर इस राजाको तो जिला ही देना अच्छा है।" ऐसा विचार कर उसने फिर राजाके हाथका पत्र-पुट नीचे गिरा दिया। राजाने भी तत्कालही चाबुक मारकर उसकी जान ले ली। इसके बाद राजाने फिर हर्षित-चित्तसे उस पात्रमें जल भरना शुरू किया। इसवार जल बड़ी देर-देर पर टपकने लगा। यह देख, विस्मित हो, राजाने उचक कर पेड़ पर चढ़कर देखा, कि उस पेड़के खखोडरमें एक अजगर सोया हुआ है। यह देख, राजाने अपने मनमें विचार किया,—"अरे! यह तो जल नहीं, बल्कि सोये हुए अजगरके मुँहसे निकलता हुआ विष है। इसे यदि मैंने पी लिया होता, तो अब तक कभीका मर चुका होता। ओह! उस पक्षीने मुझे वार-वार मने किया; पर मैं मूर्ख उसका मतलब नहीं समझा। हा! मेरी ही मूर्खतासे वह बेचारा परोपकारी पक्षी मेरे ही हाथों मारा गया।" राजा इसी प्रकार पश्चात्ताप कर रहे थे, कि इतनेमें उनके सिपाही आ पहुँचे और अपने स्वामीको देख, बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद राजा भोजन कर, जलपान करनेके अनन्तर उस मरे हुए पक्षीके साथ-साथ अपने नगरमें चले आये। वहाँ नगरके बाहरही एक बाग़ीचेमें उस पक्षीका चन्दनकी लकड़ियोंसे शव-संस्कार करा, राजाने उसे जलाँजलि दी और अपने घर आकर शोक मनाने लगे। यह देख, सब मन्त्रियों और सामन्तों आदिने उनसे पूछा,—"हे नाथ! आपने इस पक्षीका मरण-संस्कार किस लिये किया?" यह सुन, राजाने सारा हाल अपने आदमियों



अरे! यह तो जल नहीं, बल्कि सोये हुए अजगरके मुँहसे निकलता हुआ विष है। इसे यदि मैंने पी लिया होता, तो अब तक कभीका मर चुका होता।

(पृष्ठ १५६)

को सुना दिया। सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। राजाने कहा,— मैं उस पक्षीको इस जिन्दगीमें कभी न भूलूँगा।" यह सुन, सचिवों और सामन्तोंने कहा,— "हे स्वामिन्! जो मर गया, उसके लिये शोक करना ठीक नहीं।" पर उनके लाख समझाने पर भी राजाका खेद दूर नहीं हुआ। जैसे बिना विचारे काम करनेसे पछतावा उस राजाको हुआ, वैसे ही सहसा, बिना परिणामका विचार किये, कार्य करनेसे औरोंको भी इस लोक तथा परलोकमें पराभव प्राप्त होता है। अतएव श्रेष्ठ तथा बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये, कि विचार कर ही कोई कार्य करें।"

ज्योंही कीर्त्तिराजकी यह कहानी पूरी हुई, त्योंही बाजेवाले भैरवी की तानें छेड़ने लगे। बन्दीजन मङ्गल-पाठ पढ़ने लगे। कीर्त्तिराज भी वहाँसे उठकर अपने स्थानपर चला गया। राजाने सोचा,—"ये सब भाई एक दिल मालूम होते हैं। इनसे मेरा काम नहीं बननेका।" ऐसा विचार कर, उन्होंने दासीके लाये हुए जलसे मुँह धोया, अच्छे वस्त्र बदले और राज सभामें आकर बैठ रहे। इसी समय देव राजाने वहाँ आ, हाथ जोड़े हुए हँसते-हँसते कहा,— "मैं इस समय श्रीमान्से एक ऐसी बात कहना चाहता हूँ, जिसकी आपको बिलकुल खबर नहीं है। यह सुन, क्रोधमें आये हुए राजाने भौंहोंके इशारेसे उसे वह बात कह सुनानेकी आज्ञा दी। तदनुसार देवराजने पिशाचकी बातें सुननेसे शुरूसे लेकर अन्ततककी सारी बातें, जो भय और आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली थीं, कह सुनायीं। इसके बाद उसने विश्वासके लिये राजाके शयन-मन्दिरसे टुकड़े किये हुए साँपको मँगवाकर उनको प्रत्यक्ष दिखला दिया। यह देख, देवराजके ऊपरसे राजाका क्रोध उतर गया और वे मन-ही-मन सोचने लगे, "ओह! इस महात्माने तो मेरे प्राण बचानेके लिये ऐसा जान-जोखिमका काम कर डाला और मैं ऐसा पापी हूँ, कि ऐसे परोपकारी और पुरुष-श्रेष्ठ देवराजको बिना विचारे मार डालनेकी धुनमें था। इस लिये कहानियाँ कहनेमें कुशल वत्सराज आदिने

सो जाने पर सोती हैं, उनके सोकर उठनेके पहलेही जग जाती है, वह गृहिणी नहीं, गृह-लक्ष्मी है।

इसीलिये सेठने विचार किया, कि इन चारों वहुओंमें कौन घरका भार सम्हालने योग्य है, इसकी परीक्षा लूँ, तो ठीक समझमें आ जाये। इसके बाद सवेरा होते ही सेठने रसोयोंको हुक्म दिया; कि आज सबसे बढ़िया रसोई बनाओ। यह कह, उसने अपने सभी स्वजनों और पुर-जनोंको न्योता देकर अपने घर जिमाया। इसके बाद उसने सब स्वज-नादिकको वस्त्र, ताम्बूल आदिसे सम्मानित कर उन लोगोंके सामने ही पाँच शालि-कण लेकर बड़ी बहूको देते हुए कहा,—"बेटी! मैं तुझे ये पाँच शालि-कण देता हूँ। जब मैं माँगू, तब फिर मुझे दे देना।" यह कह उसने बहूको बिदा कर दिया। उसने बाहर आतेही विचार किया,—"मेरे ससुरका सिर बुढ़ापेके कारण फिर गया मालूम पडता है, तभी तो इसने इतने आदमियोंको इकट्ठा कर मुझे पाँच चाँवलके दाने दिये। अब मैं इन्हें कहाँ छिपा रखूँ? अच्छा, जब वह माँगेगा, तब मैं दूसरे पाँच चावल लेकर दे दूँगी।" यही सोचकर उसने वे पाँचों दाने फेंक दिये। इसके बाद सेठने दूसरी बहूको भी इसी तरह बुलवा कर पाँच दाने शालि-धानके दिये। उसने भी अपने मनमें विचार किया,—"अब मैं इन चाँवलोंको कहाँ उठा रखूँ। जब वे माँगेंगे, तब दूसरे चाँवलके दाने दे दूँगी। पर इन्हें भी क्यों फेकूं?" यह सोचकर उसने मुँह खोल कर उन दानोंको चबा लिया। इसी प्रकार सेठने तीसरी और चौथी बहूको भी चावलके दाने दिये। तीसरीने तो उन्हें एक अच्छे से वस्त्रमें बाँधकर जवाहरातके डब्बेमें रख दिया और चौथीने अपने भाइयोंको बुलाकर दे दिया। उसके भाइयोंने उसके कहे अनुसार उन दानोंको बरसातके दिनोंमें बो दिया। क्रमसे उन दानोंके बहुतसे दाने हुए। दूसरे वर्ष वे फिर बोये गये। अबके पहले से भी अधिक चाँवल उपजे। इसी तरह क्रमसे पाँच वर्षतक बोये जानेपर उन्हीं पाँच कणोंके हज़ारों

मन धान हुए। पाँचवें साल उस सेठने फिर अपने बन्धुओंको न्योता देकर बुलाया और खिलाया-पिलाया। इसके बाद उसने फिर सबके सामने ही अपनी बड़ी बहूको बुलाकर अपने दिये हुए वे पाँचों दाने वापिस माँगे। इसपर उसने दूसरे पाँच दाने लाकर सेठके हवाले किये। सेठने कहा,—"ये तो मेरे दिये हुए दाने नहीं हैं।" यह कह, उसने जब बड़े आग्रहसे सौगन्द देकर पूछा, तब उसने सच सच बयान कर दिया। यह सुन, सेठने बड़े गुस्सेके साथ कहा,—"चूँकि तुमने मेरे दिये हुए धान फेंक दिये हैं, इस लिये गोबर, राख और कूड़ा-कतवार फेंकना ही तुम्हारे लिये उचित कर्म है। इसलिये तुम आजसे यही काम किया करो।" इसके बाद उसने दूसरीको बुलाकर उससे भी दाने माँगे, उसने भी दूसरे ही दाने लाकर दिये। जब उसने बदले हुए दाने देखकर उससे बहुत खोद-विनोद कर पूछा, तब उसने भी सच-सच कह दिया, कि मैं तो उन्हें खा गयी। यह सुन, सेठने उसे रसोई बनानेका भार सौंपा। इसके बाद जब तीसरीकी बारी आयी, तब वह अपने गहनोंके डब्बेमेंसे वही पुराने चाँवल निकाल लायी। यह बात मालूम होनेपर सेठने उसे सर्व-सारभूत वस्तुओंके भण्डारका अधिकार दे डाला। अबके चौथीका नम्बर आया। उसने शालिकी खेतीके द्वारा बेहिसाब बढ़ा दिया था, इसलिये उससे जब दाने माँगे गये, तब उसने गाड़ियाँ मँगवानेको कहा। उसकी ऐसी बुद्धिमानी तथा चतुराई देख, सेठने उसीको घरकी मालिकिन बनाया। इस प्रकार चारों बहुओंको उनकी योग्यतानुसार कार्योंमें नियुक्त कर वह सेठ निश्चिन्त हो गया और धर्म-कार्यमें तत्पर हो गया।

"इस कथाको अपने अन्तरङ्ग पर इस तरह घटाना चाहिये। उस सेठके स्थानपर अपने गुरुको जानना, दीक्षित साधुओंको बहुओंके स्थानपर जानना, पाँच दानोंके स्थानपर पाँचों महाव्रतोंको समझना और चतुर्विध संघको स्वजनोंका एकत्र होना मान लेना। गुरुने श्री-संघके सामने शिष्योंको पाँच महाव्रत दिये। उनमें कितने शिष्योंने तो

पहली बहूकी तरह व्रतको त्याग दिया और इस लोक तथा परलोकमें बड़े-बड़े दुःख उठाये। कितनोंहीने जीविकाके लिये वेश बना लिया। इन्हें दूसरी बहूकी तरह समझना। कितनोंने स्वयं तो व्रतका पालन किया, पर औरोंको उपदेश देकर उसी तरह धर्ममें प्रवृत्त नहीं किया। इन्हें तीसरी बहूके समान जानना। और कितनेही व्रत ग्रहण कर उनका स्वयं पालन करते हैं और अन्य अनेक भव्य जीवोंको प्रतिबोध देकर उनसे भी व्रत-पालन कराते हैं। इन्हें चौथी बहूके समान जानना। इस लिये हे राजर्षि! तुम भी चौथी बहूकी तरह व्रतका विस्तार करनेवाले बनो। यह कथानक श्रीमहावीर स्वामीके शासनमें हुआ है।"

इस प्रकार कथा सुनाकर श्रीदत्त गुरुने राजर्षिको संयममें विशेष निश्चल कर दिया। इसके बाद राजर्षि संयमका पालन करते हुए क्रमशः सद्गतिको प्राप्त हुए।

श्रीक्षेमङ्कर जिनेन्द्रके कहे हुए अहिंसादिक धर्मको परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये। इनमें धर्मका पहला लक्षण है प्राणि-दया, दूसरा सत्यवादिता, तीसरा अदत्तका त्याग, चौथा ब्रह्मचर्यका पालन और पाँचवाँ नौ प्रकारके परिग्रहका परित्याग। इन पाँचों धर्म-लक्षणोंको जानकर हे भव्यजीवो! तुम निरन्तर धर्म-कर्ममें अपनी चेष्टा रखो।" श्रीक्षेमङ्कर जिनेन्द्रकी यह देशना सुनकर बहुतसे भव्य प्राणियोंने प्रतिबोध प्राप्त किया। श्रीजिनेश्वरने पहले गणधरों तथा चतुर्विध संघकी स्थापना की और इसके बाद वज्रायुध राजाने श्रावक-धर्म अङ्गीकार कर, प्रभुको प्रणाम कर, अपनी पुरीकी राहली।

एक दिन वज्रायुध राजाके पुण्यके प्रभावसे हज़ार यक्षोंसे अधिष्ठित अति निर्मल चक्ररत्न उनकी अस्त्रशालामें उत्पन्न हुआ। राजाने अष्टाह्निका-महोत्सव करके उसकी पूजा और आराधना की। तब वह अस्त्रशालासे निकल कर आसमानमें उड़ चला। उसके पीछे-पीछे वज्रायुध भी अपनी सेना सहित चल पड़े और उन्होंने क्रमशः मङ्गलावती-विजयके छः खण्ड जीत लिये। इसके बाद वे अपनी नगरीमें आकर

अपनेको चक्रवर्ती कहने लगे। इसके सिवा उन्होंने सहस्रायुध नामक पुत्रको युवराजकी पदवी प्रदान की।

एक दिन चक्रवर्ती राजा वज्रायुध राजाओं, मन्त्रियों और सामंतों आदिके साथ सभामें बैठे हुए थे, इतनेमें एक युवा विद्याधर काँपता हुआ आसमानसे नीचे उतरा और वज्रायुधकी शरणमें आया। उसके बादही ढाल-तलवार हाथमें लिये हुई एक विद्याधरी और गदा हाथमें लिये हुए एक विद्याधर भी आ पहुँचा। ज्योंही इस पीछेवाले विद्याधरने पहलेवाले विद्याधरको देखा, त्योंही चक्रवर्तीसे निवेदन किया,— "हे महाराज! अपनी शरणमें आये हुए इस पापीका हाल सुनिये। सुकच्छ नामक विजयमें वैताढ्य-पर्वतके ऊपर शुक्ला नामकी पुरी है। उसमें शुक्लदत्त नामके राजा राज्य करते थे। मैं उन्हींका पुत्र हूँ। मेरा नाम पवनवेग है। मेरी स्त्रीका नाम सुकान्ता है। उसीके गर्भसे उत्पन्न यह मेरी लड़की है, जिसका नाम शान्तिमती है। एक बार मैंने अपनी लड़कीको प्रज्ञप्ति नामकी विद्या प्रदान की। उसी विद्याको सिद्ध करनेके लिये यह मणि-सागर नामक पर्वतके ऊपर गयी हुई थी। वहीं पर विद्याकी साधनामें लगी हुई मेरी इस पुत्रीको इस विद्याधरने उड़ा लिया। इसी बीच इसकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर वह विद्या इसको सिद्ध हो गयी थी, उसीके भयसे यह दुष्ट भागा हुआ आपकी शरणमें आया है। जब मैं उस पर्वतपर अपनी पुत्रीका हाल-चाल लेनेके लिये गया, तब इसे वहाँ न देखकर मैं भी इन दोनोंका पीछा करता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा हूँ। इसलिये हे राजन्! आप इस दुष्टको, जो मेरी पुत्रीका शील भङ्ग करना चाहता है, छोड़ दीजिये, तो मैं इसे एक ही गदामें साफ कर डालूँ।" यह सुन, वज्रायुध राजाने अवधि-ज्ञानके द्वारा उसके पूर्व भवका वृत्तान्त मालूम कर, उसको समझानेके लिये कहा,— "हे पवनवेग! जिस कारणसे इस विद्याधरने तुम्हारी पुत्रीका हरण किया है, उसे सुनो।" यह कह चक्रवर्तीने कहना शुरू किया और सभी सभासद् अपने स्वामीके इस ज्ञान-माहात्म्यको देख,

आश्चर्यमें आकर बड़ी दिलचस्पीके साथ सुनने लगे। चक्रवर्त्तीने कहा,—

"इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत-क्षेत्रमें वन्ध्यपुर नामका एक नगर है। उसमें वन्ध्यदत्त नामके राजा राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम सुलक्षणा था, जिसके गर्भसे उत्पन्न नलिनीकेतु नामका एक पुत्र भी था। उसी नगरमें धर्म-मित्र नामका एक सार्थवाह रहता था। उसकी स्त्रीका नाम श्रीदत्ता था और उसीके गर्भसे उत्पन्न दत्त नामका एक पुत्र भी उसके था। उस लड़केकी स्त्री प्रभङ्करा वड़ी ही मनोहर रूपवती थी। एक दिन वसन्त-ऋतुमें वही दत्त नामका वणिक्-पुत्र अपनी भार्याके साथ क्रीड़ा करनेके इरादेसे वागीचेमें गया। वहीं राजकुमार नलिनीकेतु भी क्रीड़ा करनेके लिये आ पहुँचे। राजकुमार उस परमा सुन्दरी प्रभङ्कराको देखतेही कामातुर हो गये। फिर क्या था? ऐश्वर्य और यौवनके मदसे चूर राजकुमारने अपने कुल और शीलमें कलङ्क लगानेका कुछ भी विचार न कर, उस स्त्रीका हरण किया और उसके साथ मनमानी मौज उड़ाने लगे। एक दिन दत्त अपनी स्त्रीके विरहसे व्याकुल होकर उद्यानमें आया। वहाँ उसने सुमन नामके एक साधुको देखा। उसको तत्काल केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ था, इसलिये वहुतसे देव, दानव और मनुष्य उनकी वन्दना करनेके निमित्त आये हुए थे। केवलीको देखकर दत्तने भी शुद्ध भावसे उनकी वन्दना की। उस समय केवलीने दत्तको धर्मदेशना सुनायी। सुनकर उसे प्रतिबोध हुआ और उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया। इसके बाद वह दान-पुण्य आदि करता हुआ, आयु पूरी होनेपर, मृत्युको प्राप्त हुआ और सुकच्छ-विजय के वैताढ्य-पर्वत पर महेन्द्रविक्रम नामक विद्याधरोंके राजाका पुत्र अजितसेन हुआ। उसकी स्त्रीका नाम कमला था। इधर राजकुमार नलिनीकेतु पिताका राज्य पाकर प्रभंकराके साथ गृहधर्मका पालन करने लगे। एक दिन अपने महलकी सातवीं मंजिल पर बैठे हुए उन्होंने आसमानको पँच रंगे बादलोंसे घिरता हुआ पाया। थोड़ीही देर

बाद जोरकी हवा चली और सारे बादल टुकडे-टुकडे होकर उड गये। यह देख, उन्हें तत्काल वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने विचार किया,— "इस संसारमें धन, यौवन आदि सभी वस्तुएँ इन्हीं बादलों की तरह चंचल हैं। मैंने अज्ञानतासे परायी स्त्रीका हरणकर, क्षण भर के सुख के लिये, बहुत बडा पाप कमाया। अतएव अब मैं प्रव्रज्या अङ्गीकारकरूँ और तप-नियम रूपी जलसे पापरूपी मेलको धोकर अपनी आत्माको निर्मल कर लूँ, तो ठीक हो।" इस प्रकार विचार कर राजा नलिनीकेतुने अपने पुत्रको राज्य पर बैठाकर राजलक्ष्मीका त्याग कर दिया और क्षेमङ्कर जिनेश्वरके पास जाकर प्रव्रज्या अङ्गीकार करली। इसके बाद निरतिचारके साथ उसका पालन करते हुए, केवल-ज्ञान प्राप्त कर, समस्त कर्म मलका प्रक्षालन कर,उन्होंने मोक्षपद प्राप्त किया। वही प्रभङ्करा सुव्रता नामकी गुरुआनीके पास जा, चान्द्रायण तप कर, आयु पूरी होने पर मर कर तुम्हारी पुत्री शान्तिमती हुई है। इसके पूर्व जन्मके पति इस विद्याधरने इसे विद्याकी साधना करते देखा और पिछली प्रीतिके कारण इसे हर लाया। इसलिये हे पवनवेग! तुम इस पर नाराज मत हो और हे शान्तिमती! तूभी अपना क्रोध त्याग कर।"

वज्रायुध चक्रवर्त्तीकी यह बात सुन, दोनों विद्याधर और बालिका शान्तिमतीने परस्पर एक दूसरेसे अपराध क्षमा कराया और चित्तको शान्त किया। तदनन्तर चक्रवर्त्तीने सभासदोंकी ओर देखकर कहा,— "मैंने इन तीनोंके पूर्व भवकी बात कही, अब इनके भावी स्वरूपकी बात कहता हूँ, सुनो। इन दोनों विद्याधरोंके साथ यह शान्तिमती दीक्षा-ग्रहण करेगी और रत्नावली तप कर अन्तमें अनशन द्वारा मृत्युको प्राप्त होकर दोसे अधिक सागरोपमकी आयुवला और वृषभ वाहन इशानेन्द्र होगी। पवनवेग और अजितसेन साधु इसी भवमें घाती-कर्मोंका नाश कर, उत्तम केवल-ज्ञानको प्राप्त करेंगे। उस समय ईशानेन्द्र वहाँ आकर उनके केवल-ज्ञानकी महिमा बखानेंगे और अपने शरीरकी पूजाकर, अपने स्थानको चले जायेंगे। वे ईशानेन्द्र भी आयुष्य क्षय होनेपर वहाँसे

किया। एक समयकी बात है, कि उस सेठने पुत्रकी इच्छासे अपनी स्त्रीके साथ ही कुलदेवीकी पूजा की और उनसे इस प्रकार विनय पूर्वक निवेदन किया,—"हे कुलदेवी! मेरे पूर्वजोंने और मैंने भी बराबर इस लोकके सुखके निमित्त तुम्हारी आराधना की है। अब यदि मैं निपुत्र ही मर जाऊँगा, तो फिर तुम्हारी पूजा कौन करेगा? अतएव तुम कृपाकर अपने अवधि-ज्ञानसे बतलाओ, कि मेरे सन्तान होगी या नहीं!" यह सुन, कुलदेवीने उपयोग देकर कहा,—"सेठजी! पुण्य-कार्य करते हुए कुछ दिन बीत जाने पर तुम्हारे अवश्य पुत्र होगा।" कुलदेवीकी यह बात सुन, हर्षित होते हुए सेठने कुल-पर्यायसे चले आते हुए धर्मों का विशेष रूपसे पालन करना शुरू किया।

कुछ दिन बाद एक बड़ा ही पुण्यात्मा जीव पुण्यश्रीकी कोखमें आया। उस समय उसने स्वप्नमें चन्द्रमा देखा। सवेरे ही उसने अपने पतिको इस स्वप्नकी बात कह सुनायी। सेठने अपनी बुद्धिसे इस स्वप्नका विचार करके अपनी स्त्रीसे कहा,—"तुम्हें बड़ा ही उत्तम पुत्र प्राप्त होगा।" यह सुन, वह बड़ी प्रसन्न हुई। इसके बाद क्रमसे समय पूरा होने पर शुभ दिन—नक्षत्रको उसके गर्भसे एक उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। उसकी पैदायशकी खुशीमें पिताने बड़ी धूमधाम की और दीन-हीन जनोंको तथा याचकोंको सोना, चाँदी और वस्त्रादिका दान किया। इसके बाद पुण्यसे प्राप्त होनेके कारण सेठने अपने समस्त स्वजनोंके सम्मुख, उस पुत्रका नाम पुण्य-सार रखा। वह पुत्र क्रमशः धात्रियोंसे पाला-पोसा जाता हुआ पाँच वर्षका हुआ। तब पिताने बड़ी धूमधामका उत्सव कर उसे एक बड़े अच्छे पण्डितके पास कलाभ्यास करनेके लिये पाठशालामें भेज दिया।

उसी नगरमें रत्नसार नामका एक सेठ रहता था, जिसके एक बड़ी ही सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम रत्नसुन्दरी था। वह भी उन्हीं पण्डितजीसे पुण्यसारके साथ-ही-साथ कलाभ्यास करती थी। कभी-कभी स्त्री-स्वभाववश चंचलताके कारण रत्नसुन्दरी पुण्यसारके

साथ विवाद कर बैठती थी। एक दिन इसी तरहका विवाद होते-होते पुण्यसारने क्रोधमें आकर उससे कहा,—"अरी बालिके! यदि तू अपनेको बड़ी पण्डिता और कलावती मानती हो, तो भी तुझे मेरे साथ विवाद नहीं करना चाहिये, क्योंकि तू किसी पुरुषके घर दासी होकर ही जानेवाली है।" इसपर उसने कहा,—"यदि मैं दासी भी हूँगी, तो किसी बड़े भारी भाग्यशाली पुरुषकी हूँगी, तुम्हारी तो न हूँगी।" यह सुन, पुण्यसारने कहा,—"अरी वृथा अभिमान करनेवाली! यदि मैंने तुझे जबरदस्ती अपनी दासी नहीं बनाया, तो मैं पुरुष ही नहीं।" यह सुन, वह फिर बोली,—"रे मूर्ख! ज़बरदस्तीसे भी कहीं किसीका स्नेह प्राप्त होता है?" फिर दम्पतीको इस तरह स्नेह कैसे हो सकता है।" इस प्रकार परस्पर विवाद कर पुण्यसार पाठशालासे अपने घर चला आया और उदास मुँह बनाये, क्रोध सूचक शय्यापर जाकर सो रहा। इतनेमें पुरन्दर सेठ, भोजनका समय हो जानेके कारण, खानेके लिये घर आया। पुत्रकी हालत सुनकर वह उसके पास आया और उससे पूछा,—"बेटा। आज तेरा चेहरा ऐसा उदास क्यों हो रहा है? इस असमयमें ही तू क्यों सोया पड़ा है? इसका कारण बतला।" जब सेठने इस प्रकार आग्रहसे पूछा, तब उसने कहा,—"पिताजी! यदि आप मेरा विवाह सेठ रत्नसारकी पुत्री रत्नसुन्दरीके साथ कर दें, तब तो मुझे चैन आयेगा, नहीं तो मुझे किसी तरह शान्ति नहीं मिलने की।" यह सुन, सेठने कहा,—"बेटा! अभी तेरी कच्ची उमर है। अभी पाठशालामें रह कर विद्याका अभ्यास कर, पीछे जब व्याहका समय आयेगा, तब व्याह कर दिया जायेगा।" यह सुन, पुत्रने फिर कहा,—"पिताजी! यदि आप उसके पितासे मेरे लिये उसकी मँगनी करा लें, तब तो मैं भोजन करूँगा, नहीं तो हरगिज नहीं खाऊँगा।" यह सुन, सेठने उसकी बात मान ली और उसे समझाबुझा कर भोजन कराया। इसके बाद वह स्वयं अपने स्वजनोंके साथ रत्नसार सेठके घर गया। उसे आते देख, रत्नसार सेठ उठ खड़ा हुआ, उसे बैठनेके

लिये आसन दिया और स्वागत-प्रश्नके साथ बड़ी नम्रतासे बोला,—"भला यह तो कहिये, आज आपने किस लिये मेरे घर आनेकी कृपा की ?" पुरन्दर सेठने कहा,—"सेठजी ! मैं आज अपने पुत्रके लिये आपकी पुत्री रत्नसुन्दरीकी मँगनी करने आया हूँ ।" यह सुन, रत्नसारने कहा,—"यह बात तो मेरे मनकी सी ही है। यह कन्या मैं आपके ही पुत्रको सौंपूँगा, इसमें कहनेकी क्या बात है ? आपका इशारा ही काफ़ी है। कन्या तो आख़िर किसी-न-किसीको देनी है, फ़िर जब स्वयं ही आप उसकी मँगनीके लिये आये हैं, तब और क्या चाहिये ? मैं आपकी बात मानता हूँ ।" जब रत्नसार सेठने इतना कह डाला, तब उसके पासही बैठी हुई वह बालिका चटपट बोल उठी,—"पिताजी ! मैं कदापि पुण्यसारकी पत्नी न बनूँगी ।" उसकी यह बात सुन, पुरन्दर सेठने अपने मनमें विचार किया,—"ओह ! मेरे पुत्रने व्यर्थ ही इस कन्याके साथ ब्याह करनेकी इच्छा की। बचपनमें ही जिसकी वाणी इतनी कठोर है, वह जब जवानीकी मस्तीमें आयेगी, तब भला पतिको कौनसा सुख देगी ?" वह ऐसा सोच ही रहा था, कि रत्नसार सेठने कहा,—"मेरी लड़की अभी निरी नादान बच्ची है। क्या कहना चाहिये और क्या नहीं कहना चाहिये, इसकी समझ इसको नहीं है। इसलिये आप इसके कहेका कुछ ख़याल मनमें न आने दें। सेठजी ! मैं इसे समझा-बुझा कर आपके ही पुत्रके साथ विवाह करनेको राज़ी कर लूँगा।" यह सुन, पुरन्दर सेठ अपने स्वजनोंके साथ वहाँसे उठ कर अपने घर आया और पुत्रसे सारा हाल सुनाकर कहा,—"बेटा ! वह लड़की तेरे लायक नहीं है ; क्योंकि—

'कुदेहां विगतस्नेहां, लज्जाशीलकुलोज्झिताम् ।
अतिप्रचण्डां दुस्तुण्डां, गृहिणीं परिवर्जयेत् ॥ १ ॥'

अर्थात्—'कुरूपा, स्नेह-रहिता, लज्जा, शील और कुलसे हीना अतिप्रचण्डा और दुर्भाषिणी भार्याका सदा त्याग करना चाहिये।'

"ऐसा शास्त्रमें कहा हुआ है।" यह सुन, पुण्यसारने कहा,—

"पिताजी! आप जो कहते हैं, वह ठीक है, पर यदि मैं उसके साथ ब्याह करूँगा, तभी तो मेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी, नहीं तो झूठी पड जायेगी।" पिताको यह उत्तर देकर पुण्यसार उसकी प्राप्तिके लिये दूसरा उपाय सोचने लगा।

एक दिन पिताकी बातसे उसे मालूम हुआ, कि उसकी कुलदेवी बडी जागती देवी हैं। इसलिये उसने एक शुभ दिवसको पुष्प, नैवेद्य, धूप और विलेपन आदि उत्तमोत्तम सामग्रियोंसे उनकी पूजाकर, उसने प्रार्थना की,—"हे कुलदेवी! जैसे तुमने सन्तुष्ट होकर मेरे पिताको मुझे पुत्र-रूपमें दान किया है, वैसेही मेरे स्त्री-सम्बन्धी मनोरथको भी पूरा कर दो। हे देवी! यदि तुमने मेरा मनोरथ ही पूर्ण नहीं किया, तो फिर जन्म काहेको दिया? हे देवी! अब जबतक तुम मेरा मनोरथ नहीं पूरा करोगी, तबतक मैं बिना खाये-पिये यहीं खडा रहूँगा।" यह कह, वह देवीके सामने धरना देकर बैठ रहा। एकही दिनके उपवाससे देवी उसपर प्रसन्न हो गयीं और बोलीं,—"बेटा! जाओ—धीरे-धीरे सबकुछ तुम्हारे मनके मुआफिक ही हो जायेगा। चिन्ता न करो।" यह सुन, पुण्यसारको बडा आनन्द हुआ और उसने पारणा कर, पिताकी आज्ञा ले, पाठशालाकी शेष शिक्षा पूरी करनी शुरू की। क्रमशः कलाभ्यास सम्पूर्ण होनेपर वह जब युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब उसे जुएका चसका लग गया। स्नेहके कारण उसके माता-पिताने उसे कितनीही बार रोका-टोका, तोभी वह जुएकी चाट नहीं छोड सका। एक दिन पुण्यसार लाख रुपया जुएमें हार गया। उसने घर आकर लाख रुपये क़ीमतका एक गहना, जो राजाका था और सेठके घर रखा हुआ था, लेकर जीते हुए जुआडियोंको दे दिया। कुछ दिनों बाद जब राजाने अपना वह गहना सेठसे फिरता माँगा, तब सेठने उसे उस स्थानमें नहीं पाया, जहाँ उसने रख छोडा था। तब उसने अपने मनमें सोचा,—"जरूर ही पुण्यसार वह गहना ले गया है। गुप्त स्थानमें रखी हुई चीज़का दूसरेको क्या पता है?" इस तरह सोच कर वह समझ गया। कि

अब तो वह गहना हाथसे गया! यह देखकर उसके जीमें यह बात आयी, कि——

"यदर्थं खिद्यते लोके-यत्नश्च क्रियते महान्।
तेऽपि सन्तापदा एवं, दुष्पुत्रा हा भवन्त्यहो ॥ १ ॥"

अर्थात्—"ओह! जिनके न होनेसे लोग सदा खिन्न रहा करते हैं और जिनकी प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े यत्न किया करते हैं, वे पुत्र भी कुपूत हो कर इस प्रकार दुःख देते हैं।"

फिर सेठने सोचा,—"इस दुष्टने राजाका गहना जुएमें गँवा दिया, इसलिये ऐसे पुत्रको तो घरसे निकाल देनाही ठीक है; क्योंकि यह पुत्रके रूपमें मेरा दुश्मन् टिका है।" ऐसा विचार कर वह दूकानपर चला गया। जब पुत्र वहाँ आया, तब उसने उससे गहनेकी बाबत पूँछ-ताँछ की। इसपर बेटेने बापसे सच्चा-सच्चा हाल बयान कर दिया। यह सुन, सेठने क्रोधमें आकर कहा,—"रे दुष्ट! जा, तू वह गहना ले आ। बिना लाये मेरे घर न आना।" यह कह, उसने उसको खूब फटकारा और गलेमें हाथ डाल झुँझलाते हुए, उसे अपने घरसे निकाल दिया।

उस समय साँझ हो गयी थी। इसलिये वह कहीं और तो नहीं जा सकता था, इसीसे गाँवके बाहर आ, एक बड़के पेड़के खखोड़लमें घुस पड़ा। सेठ जब घर आया, तब उसकी स्त्रीने पूछा,—"आज पुण्यसार अभीतक घर क्यों नहीं आया?" यह सुन, पुरन्दर सेठने कहा,—"वह कुपूत राजाका गहना जुएमें हार आया, इसी लिये मैंने उसे सीख देनेके लिये क्रोधमें आकर घरसे निकाल दिया है। इसीसे वह घर नहीं आया है।" यह सुन, सेठानीने कहा,—"जब तुमने इतनी रातको पुत्रको घरसे बाहर निकाल दिया, तब कैसे मेरे पास अपना मुँह दिखाने आये हो? स्वामी! इस अँधेरी रातमें उस बालकको घरसे निकालते तुम्हें लज्जा नहीं आयी? इसलिये जाओ, अब पुत्रको लेकर ही मेरे घरमें आना।" सेठानीकी यह फटकार सुन, बेटेकी याद कर, सेठ बहुत

ही दुःखी हुआ और सारे शहरमें उसकी खोज कराने लगा। इधर सेठके चले जानेपर सेठानीने यह देखकर, कि घरमें कोई मर्द-मानस नहीं है, अपने मनमें विचार किया,—"ओह, मैंने क्रोधमें आकर पतिको घरसे दुतकार दिया, यह अच्छा नहीं किया। पहले तो सेठजीने ही मूर्खता की—पीछे मैं भी मूर्खता कर बैठी।" इस प्रकार सोचती हुई सेठानी रोते-रोते पति-पुत्रकी राह देखती हुई, अपने घरके दरवाजेपर बैठ रही।

इधर रातके समय वट-वृक्षके खखोडलमें बैठे हुए पुण्यसारने दो देवियोंको, जिनके शरीरकी कान्तिसे चारों ओर उँजेला फैलाहुआ था, इस प्रकार बातचीत करते सुना। पहलीने कहा,—"चलो बहन! इस समय मनमाने ढँगसे पृथ्वीकी सैर की जाये। रातका समय है। यह अपने लिये और भी अच्छा है।" इसपर दूसरी बोली,—"सखी! व्यर्थ ही इधरसे उधर चक्कर लगाकर आत्माको कष्ट किस लिये देना? इस लिये अगर कहीं कोई कौतुक हो रहा हो, तो उसे चलकर देखना चाहिये।" अबके फिर पहलीने कहा,—"अगर कौतुक देखना हो, तो वल्लभी नामक नगरमें चलो। वहाँ धन नामका सेठ रहता है। उसकी स्त्रीका नाम धनवती है, जिसके गर्भसे उसे सात लडकियाँ पैदा हुई हैं। उनके नाम क्रमश इस प्रकार हैं —"पहलीका नाम धर्मसुन्दरी, दूसरीका धनसुन्दरी, तीसरीका कामसुन्दरी, चौथीका मुक्तिसुन्दरी, पाँचवींका भाग्यसुन्दरी, छठीका सौभाग्यसुन्दरी और सातवींका गुणसुन्दरी है। इन कन्याओंके लिये अच्छे वर मिलनेके लिये उस धना सेठने लड्डू वगैरह प्रसाद चढ़ाकर लम्बोदर-देवकी पूजा की। देवताने सन्तुष्ट होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा,—"सेठजी! आजके सातवें दिन रातके समय बडा ही शुभ लग्न है। उस समय तुम विवाहकी कुल सामग्रियाँ तैयार रखना। उस दिन उस समय दो सुन्दर वेशवाली स्त्रियोंके पीछे-पीछे जो कोई पुरुष आयेगा, वही तुम्हारी कन्याओंका पति होगा।" यह कह, लम्बोदरदेव अन्तर्द्धान हो गये। आज ही वह सातवीं रात

है। इसलिये चलो, वहींका तमाशा देखा जाये और अपने निवास-रूप इस वृक्षको भी साथ ले चलो।"

देवियोंकी यह बात सुन, वृक्षके कोटरमें बैठे हुए पुण्यसारने सोचा,- "चलो, इसी सिलसिलेमें मैं भी यह तमाशा देख लूँगा।" वह यह सोचही रहा था, कि उन देवियोंने हुंकार कर, झटपट उस वृक्षको उखाड़ डाला और क्षणभरमें उसे लिये हुई वल्लभीपुरके बाग़में उतर पड़ीं। इसके बाद दोनों देवियाँ, साधारण स्त्रीका वेश बना, गाँवमें घुस पड़ीं। वृक्षके कोटरसे निकलकर पुण्यसार भी उनके पीछे-पीछे चला। इधर लम्बोदरके मन्दिरके द्वारपर विवाह-मण्डप तैयार कर, उसके अन्दर वेदिका बनवाये और सब आत्मीय-स्वजनोंको इकट्ठा किये हुए वह सेठ अपनी सातों कन्याओंके साथ बैठा हुआ था। इतनेमें वे देवियाँ उस सेठके घर रसोई जीमने आयीं। सेठने उनके पीछे-पीछे पुण्यसारको जाते देखा। देखते ही उसका हाथ पकड़, उसे श्रेष्ठ आसन पर बैठाते हुए सेठने कहा;—"हे भद्र! लम्बोदरने तुम्हें आज यहाँ मेरा जमाई होनेके लिये भेजा है, इसलिये तुम मेरी इन सातों कन्याओंका पाणि-ग्रहण करो।" यह कह, सेठने उसे वरके कपड़े पहनाये और लाख रुपये मूल्यके गहनोंसे अलङ्कृत कर दिया। इसके बाद धवल-मङ्गलके साथ अग्निको साक्षी देकर शुभ-मुहूर्त्तमें पुरन्दरपुत्र पुण्यसारने उन सातों कन्याओंका पाणिग्रहण किया। उस समय उसने अपने मनमें विचार किया,—"ओह! पिताने जो मुझे घरसे निकाल बाहर कर दिया, वह बहुत ही अच्छा किया, नहीं तो मेरे पुण्यका प्रभाव कैसे प्रकट होता?" इसके बाद विवाहकी सब रस्में पूरी होजाने पर सेठ, बड़ी धूमधामके साथ अपनी कन्याओंके साथ-साथ पुण्यसारको भी अपने घर ले आया और अपने मकान की सबसे ऊपर-वाली मँज़िलपर उनका डेरा डाला।

उन सातों कन्याओंने पुण्य-सारको पलङ्ग पर बिठा, आप नीचे रखे आसनोंपर बैठकर पूछा,—"हेनाथ! आपने कितना कलाभ्यास

किया है ?" उसने कहा,—"मुग्धाओ! मुझे कलाओंसे प्रेम नहीं, क्योंकि—

'अत्यन्तविदुषा नैव, सुख मूर्खनृपा न च
अर्जनीया. कलाविद्भि, सर्वथा मध्यमा. कला ॥ १ ॥

अर्थात्—"अत्यन्त विद्वान् मनुष्योंको सुख नहीं होता, वैसे ही अत्यन्त मूर्ख मनुष्य भी सुख नहीं पाते। इसलिये कलाओंके जानने-वलोंको चाहिये, कि सदा सब प्रकारसे मध्यम कलाओंका ही उपार्जन करें।

वे बिचारी इस श्लोकका अर्थ नहीं समझ सकीं, इसलिये सोच-विचारमें पड़ गयीं। तब पुण्यसारने अपने मनमें सोचा,—"यदि वह वृक्ष यहांसे चला जायेगा, तो मैं यहीं पड़ा रह जाऊँगा, इसलिये अब यहाँ विलम्ब नहीं करना चाहिये।" इस विचारके उत्पन्न होतेही वह चारों तरफ देखने लगा। यह देख, सबसे छोटी गुण सुन्दरीने पूछा,—"हे नाथ। क्या आप शौचको जाया चाहते हैं?" उसने उत्तर दिया,—"हाँ" यह सुन, गुण सुन्दरी उसका हाथ पकड़े हुई नीचे ले आयी। वहाँ पहुँच कर उसने अपना परिचय देनेके लिये खड़ियासे यह श्लोक चौकठ पर लिख दिया,—

"गोपालपुरादागा, वल्लभ्या देवयोगत ।
परिणीय वधू सप्त, पुनस्तत्र गतो स्म्यहम् ॥ १ ॥

अर्थात्—"मैं देवयोग से गोपालपुर से वल्लभीनगरी में आ पहूँचा था और सात वहुओं से व्याह कर फिर वहीं लौटा जा रहा हूँ।

यह लिखकर वह उस घरके द्वारके पास पहुँचा, जिसमें उसकी सब स्त्रियाँ पहले श्लोकका अर्थ समझमें नहीं आनेके कारण शर्मायी हुई सोचमें पडी बैठी हुई थीं। वहाँ आकर उसने गुणसुन्दरीसे कहा,—"तुम भीतर चली जाओ, जिसमें मैं निश्चिन्त होकर शौचसे निवृत्त हो जाऊं।" यह सुनकर वह भी स्वामीको निश्चिन्ततासे शौचादिसे निवृत्त हो जानेके लिये छोड़कर घरके अन्दर चली आयी। इतनेमें पुण्यसार उस घरसे बाहर हो, नगरके बाहर हो गया और पूर्वोक्तवट-वृक्षके कोट-

रमें जा बैठा। इतनेमें वे देवियाँ आयीं और भर-पूर ज़ोर लगा, उस वृक्षको उखाड़ कर फिर पुराने स्थान पर रख गयीं।

इधर पुरन्दर सेठने सारा शहर छान डाला पर पुत्रका कहीं पता न लगा। इसी तरह घूमते-घामते वह प्रातःकालके समय उसी वट वृक्षके पास आ पहुँचा। इतनेमें रात बीत गयी और सवेरा हो गया, यह जानकर पुण्यसार उस पेड़के खखोडलसे बाहर निकला और इधर-उधर घूमने लगा। सेठने उसको इस तरह मनोहर वेश और अलङ्कारादिसे अलङ्कृत होकर घूमते हुए देख लिया। उसे इस प्रकार अद्भुत शोभासे युक्त देख, विस्मित होता हुआ सेठ, "हे वत्स! हे वत्स!" कहता हुआ उसकी देहसे चिपट गया और कह सुनकर उसे घर ले आया। पति और पुत्रको एक साथ घर आते देख, सेठानी बड़ी प्रसन्न हुई। इसके बाद माता-पिताने उसे बड़े प्यारसे गोदमें बिठाते और आलिङ्गन करते हुए पूछा,—"पुत्र! तुम्हारा ऐसा ठाट-बाट कहाँसे हो गया?" इसके उत्तरमें पुण्यसारने माँ बापको आश्चर्यमें डालने वाली अपनी रामकहानी कह सुनायी। उसे सुन, आश्चर्यमें पड़कर, उसके माता-पिताने कहा,—"अहा! हमारे पुत्रका भाग्य कैसा अच्छा है, कि इसने एकही रातमें इतनी ऋद्धि प्राप्त कर ली!" इसके बाद पिताने कहा,—"पुत्र! तुम्हें भली सीख देनेके लिये मैंने क्रोधमें आकर जो कुछ कटु वाक्य तुम्हें कहे, उनका कुछ ख़याल न करना।" पुण्यसारने कहा, "पिताजी! आपकी शिक्षा मेरे लिये बड़ी हितकारक हुई। कहा भी है, कि—

"अमीय रसायण अग्गली, माय ताय गुरु सीख।
जे उ न मन्नइ वप्पड़ा, ते रूलीया निसदीस॥ १॥"

अर्थात्—"माँ बाप और गुरुकी शिक्षा अमृत और रसायनसे भी बढ़कर है, इसलिए जो अभागा इसे नहीं मानता, वह रात-दिन रोया करता है—अर्थात् संसार में कभी सुखी नहीं होता।

पुत्रका यह जवाब सुनकर माँ-बापको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद पुत्रने वल्लभीपुरमें मिले हुए लाख रुपयेके अलङ्कारोंको देकर जुआ-

डियोंसे राजाका वह अलङ्कार माँग लिया और लाकर पिताके हवाले किया। वह उसे ले जाकर राजाको दे आया। इसके बाद पुण्यसारने सब गुणोंको धूल मिला देनेवाले जुएको एक दम तिलाजलि दे दी और अपनी दूकान पर बैठकर ठीक-ठिकानेसे व्यापार चलाने लगा।

इधर स्वामीको नहीं आया देख, गुणसुन्दरीने ऊपर जाकर अपनी बडी बहनोंसे कहा,—"बहुत देर हो गयी, पर वे अभीतक लौटकर नहीं आये, इसलिये मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि वे शौचके बहाने कहींको चल दिये।" यह सुन, सब स्त्रियाँ दुःखित होकर रोने लगीं। इनका रोना सुन, पिताने उनके पास आकर उनके रोनेका कारण पूछा। उन्होंने कहा —"पिताजी। हमारे स्वामी हमें छोडकर न जाने कहाँ चले गये।" यह सुन, पिताने कहा,—तुम इतनी जनी यहाँ इकट्ठी थीं, तो भी उसे पकड कर न रख सकीं और बिना कुल-परम्परादिका हाल पूछे ही जाने दिया! मनोहर स्त्रियोंको पाकर भला कौन पुरुष मुग्ध नहीं होता? फिर तुम्हें पाकर भी वह कैसे यहाँसे चला गया! वह अपने शरीर परके कुल अलङ्कार लिये हुये चल दिया है। इससे तो मुझे मालूम पड़ता है, कि उसे किसी व्यसनका चस्का जरूर है। खैर, जब यह देवताका भेजा हुआ तुम्हारा स्वामी होकर यहाँ आया था, तब यह भी कुछ पूर्व जन्मके कर्मोंका ही दोष होगा। परन्तु तुम लोगोंने उससे बातें कर, उसका नाम ग्राम क्यों नहीं पूछ लिया?" पिताकी यह बात सुन, गुणसुन्दरीने कहा,—"उन्होंने जाती दफे दीवेके उजेलेमें चौकठके ऊपर न जाने क्या लिख दिया है—मैंने उसे पढा नहीं है।" इसी तरह बातें करते करते प्रातःकाल हो गया। उस समय उसकी लिखावटको पढ़कर गुणसुन्दरीने पितासे कहा,—"पिताजी! हमारे वे स्वामी गोपालकपुरके रहने वाले हैं। दैवयोगसे रातको यहाँ आ पहुचे थे और हमारे साथ व्याह कर फिर वहीं चले गये हैं। इसलिये आप अपने हाथों मुझे पुरुषकी पोशाक पहना दीजिये। मैं अपने साथ पूरा काफिला लेकर गोपालकपुर जाऊंगी और उन्हें पहचानकर छः महीनेके अन्दर उन्हें

ढूँढ़ निकालूँगी। यदि ऐसा न कर सकी, तो आगमें जल मरूंगी।” अपनी बेटीकी यह बात सुन, पिताने उसको उसी समय मर्दका बाना पहना दिया। मर्दका जामा पहन, बहुतसे आदमियोंको अपने साथ लिये हुए, गुणसुन्दरी कुछ दिनोंमें गोपालकपुरमें आ पहुँची।

उस नगरमें पहुँच कर उसने अपनेको गुणसुन्दर नामसे प्रसिद्ध किया। जहाँ-तहाँ लोग आपसमें कहने लगे, कि “गुणसुन्दर नामका एक सौदागरका लड़का यहाँ आया हुआ है।” इसके बाद वह सेठकी लड़की उसी पुरुष वेशमें भेंटके लिये तरह-तरहकी अद्भुत वस्तुएँ लिये हुई राजसभामें आयी। राजाने भी उसकी बड़ी ख़ातिर की। इसके बाद वह वहीं रह कर मालकी ख़रीद-बिक्री करने लगी।

धीरे-धीरे उसने पुण्यसारसे भी मैत्री कर ली। इससे सारे नगरमें उसकी प्रसिद्धि हो गयी और लोग जहाँ-तहाँ कहने लगे,—“वल्लभीपुरसे जो गुणसुन्दर नामका नौजवान सौदागर यहाँ आया है, वह बड़ा ही विद्वान्, रूपवान् और गुणवान् है। उसके समान रूप और गुणमें विलक्षण पुरुष दूसरा कोई नहीं दिखाई देता।” उसकी ऐसी प्रशंसा सुनकर रत्नसार सेठकी पुत्री रत्नसुन्दरीने अपने पितासे कहा,—“पिता जी! आप मेरा ब्याह इसी गुणसुन्दर कुमारके साथ कर दीजिये।” अपनी बेटीका यह अभिप्राय मालूम होतेही सेठने गुणसुन्दरीके पास आकर कहा,—“हे कुमार! मेरी पुत्री रत्नसुन्दरी तुम्हें ही अपना स्वामी बनाया चाहती है।” यह सुन, उसने अपने मनमें विचार किया,—“उसकी यह इच्छा बिलकुलव्यर्थ है; क्योंकि भला स्त्रीके साथ स्त्रीका विवाह कैसे हो सकता है? इनकी गृहस्थी कैसे चलेगी? इसलिये इसे कुछ जवाब देकर टाल दूँ; नहीं तो उस बेचारीकी भी मेरीही सी हालत होगी।” ऐसा विचार कर, उसने सेठसे कहा,—“ऐसी अवस्थामें कुलीन मनुष्योंको अपने माता-पिताकी आज्ञा ले लेनी परम आवश्यक है, और मेरे माँ-बाप यहाँसे बहुत दूरपर हैं, इसलिये आप तो अपनी पुत्रीका विवाह यहीं यहीं पासमें रहनेवाले किसी वरके साथ कर दीजिये।

मुझ परदेशीके साथ उसका व्याह करना ठीक नहीं। यह सुन, सेठने फिर कहा,—"कुमार! तुम मुझे ऐसा टकासा जवाब क्यों दे रहे हो? मेरी पुत्रीकी तुम्हारे ही ऊपर प्रीति हो गयी है, इसलिये अब मैं उसे दूसरे पुरुषको क्योंकर सौंपूँगा? कहा भी है कि,—

"शत्रुभिर्बन्धुरूपैः सा, प्रक्षिप्ता दुःखसागरे।
या दत्ता हृदयानिष्ट-रमणाय कुलांगना॥ १॥

अर्थात्—"भले घरकी लड़कीका व्याह जो लोग उसके मनके मुताबिक वरसे नहीं करते अथवा नापसन्द वरके हाथमें उसे सौंप देते हैं, वे उसके बन्धु होकर भी शत्रु हैं और उसे मानों दुःखसागरमें डुबो देते हैं।"

इस तरह जब उस सेठने बड़ा आग्रह किया तब उसने भी विवाह करना स्वीकार कर लिया। इसके बाद अच्छेसे लग्न नक्षत्रमें सेठने उन दोनोंका व्याह कर दिया। यह समाचार सुन, पुण्यसार अपनी कुलदेवीके पास आ, हथियारसे अपना सिर काटने लगा। उसी समय देवीने प्रकट होकर उससे कहा,—"बेटा! यह दुःस्साहस तुम किस लिये कर रहे हो?" उसने कहा,—"मेरी चहेती लड़कीसे दूसरेने शादी कर ली। अब मैं जी कर क्या करूँगा?" यह सुन, कुल-देवीने कहा,—"बेटा! जिस कन्याको मैं तुम्हें दे चुकी हूँ, वह तुम्हारी ही होकर रहेगी। व्यर्थ ही मरनेको न ठानो।" पुण्यसारने कहा,—"परस्त्रीका सङ्ग करना मेरे लिये उचित नहीं। फिर जब इसका व्याह हो गया, तब मेरे किस काम की?" देवीने फिर कहा,—"बेटा! आज यह भलेही किसीकी बहू कहलाती हो, लेकिन यह न्यायसे तुम्हारी ही स्त्री होगी।" यह कह, देवी अपने स्थानको चली गयीं। पुण्य-सारको उनकी बातोंसे बड़ा आश्चर्य हुआ, तो भी उसने मनसे शङ्का दूर कर, देवताके वचनको सत्य ही मान लिया।

वहाँ रहते हुए भी गुणसुंदरीका पतिसे मिलना नहीं हुआ, इस-लिये वह बड़ी दुखी हुई। कहीं उसे अपने स्वामीका पता नहीं मिला

और न ऐसा कोई हितू मिला, जिससे अपने जीका दुखड़ा कहे। इस तरह छः महीने बीत गये। अब तो वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये पूरी तरह तैयार हो गयी, क्योंकि उसकी अवधि बीती जाती थी, उसके आदमियोंने उसे लाख रोका, तो भी उसने न माना और नगरके बाहर जा, उत्तमोत्तम लकड़ियोंकि चिता रचा, उसीमें प्रवेश करने चली। उसी समय सारे नगरमें यह बात फैल गयी, कि वह नौजवान सौदागर किसी तरहकी उदासीमें पड़कर आज अग्निमें प्रवेश करने जा रहा है। कानोंकान फैलती हुई यह बात राजाके कानों तक पहुँची। सुनते ही राजा, पुरन्दर सेठ, रत्नसार, पुण्यासार आदिके साथ-ही-साथ नगरके बाहर उस स्थान पर आ पहुंचे और उससे बोले,—"हे सौदा-गरके बेटे! तुम्हें कौनसा दुःख है, जिसके लिये तुम आगमें जलने आ रहे हो? क्या किसने तुम्हारी आज्ञा टाली है? किसीने तुम्हारा कुछ बड़ा-भारी नुकसान कर दिया!" तदनन्तर सेठ रत्नसारने कहा,— "बेटा! यदि मेरा या मेरी पुत्रीका कोई अपराध हो, तो मुझे बतला दो।" यह सुन उसने कहा,—"किसीका कुछ अपराध नहीं है। न तो किसीने मेरी आज्ञा उलट दी है, न मेरा कुछ चुरा लिया है; परन्तु अपने प्यारेसे बिछुड़ा देनेवाले दैवने ही मुझे दण्ड दिया है, अतएव मुझे इस दुःखसे जलते हुए शरीरको अग्निकी शरणमें दे देना पड़ता है।" यह कहती और लम्बी उसाँसें लेती हुई, वह ज्योंही उस चिताके पास पहुँची, त्यों ही राजाने कहा,—"जो कोई इस सौदागर-बच्चेका परम प्यारा मित्र हो, वह इसे समझा-बुझाकर यों जान देनेसे रोक ले।" इस पर नगरके लोगोंने कहा,—"इसकी पुण्यसारके साथ बड़ी दोस्ती है।" यह सुन, राजाने पुण्यसारको हुक्म दिया, कि उसे मरनेसे रोको। राजाकी आज्ञानुसार आगे बढ़कर पुण्यसारने कहा,—"हे मित्र! तुम युवा और धनवान हो, तो तुम्हें कौनसा दुःख है, यह मुझसे कहे बिनाही तुम्हारा यों प्राण दे देना ठीक नहीं।" यह सुन, उसने कहा,—"मुझे तो यहाँ ऐसा कोई दिलदार यार नहीं दिखाई

देता, जिससे अपने जीका दुखडा कह सुनाऊँ ?" पुण्यसारने कहा, —"मित्र ! तुम्हारी इस हरकतसे सब लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे।" यह सुनकर उसने जो पुण्यसारको भलीभाँति पहचाना तो वही उसका पति मालूम पडा। इसपर उसने मुसकरा कर उसका लिखा हुआ श्लोक उसे सुनाया और पूछा यह श्लोक तुम्हाराही लिखा हुआ है या नहीं ? यह सुन उसने सिर हिलाकर हामी भर दी। तब वह बोली "मैं तुम्हारी वही प्रियतमा स्त्री हूं, जिसे तुम घरके दरवाजेके पास छोडकर भाग आये थे। मेरा नाम गुणसुन्दरी है। हे स्वामी ! यह सारा प्रपच मैंने तुम्हारे लियेही रचा था। अब तुम कृपाकर जल्दीसे मेरे लिये स्त्रीका पहनावा मगवा दो।" यह सुन पुण्यसारको बडा अचम्भा हुआ। इसके बाद उसने अपने घरसे स्त्रियोंके पहनने योग्य बढ़िया-बढिया पोशाक वगैरह मँगवा कर उसे दे दिया। वह उन सब चीज़ोंको पहनकर खासी स्त्री बन गयी।

अबके पुण्यसारने राजा आदि गुरुजनोंसे कहा,—"आपकी वह आपलोगोंको प्रणाम करती है।" उसके इतना कहते ही गुणसुन्दरीने राजा और अपने श्वशुरको प्रणाम किया। यह देख, राजाने पूछा,—"पुण्यसार ! यह क्या मामला है।" इस पर उसने राजा तथा समस्त नगर-निवासियोंके समक्ष अपनी आश्चर्य पूर्ण कथा आदिसे अन्त तक कह सुनायी। सब सुन कर लोग बडे अचम्भेमें आये और पुण्यसारके पुण्योंकी प्रशसा करने लगे। इसके बाद सेठ रत्नसारने राजासे फर्याद की,—"हे स्वामी ! मेरी पुत्रीने जिसके साथ विवाह किया था, वह तो स्वय स्त्री निकली उसकी क्या गति होगी ?" यह सुन, राजाने कहा,—"सेठजी ! इसमें पूछनेकी कौन सी बात है ? वह भी इसी पुण्यसारकी स्त्री होगी।" राजाकी इस आज्ञाके अनुसार रत्नसुन्दरी भी पुण्यसारकी ही स्त्री बन गयी। इसके बाद पुण्यसारने वल्लभीपुरसे बाकी छ स्त्रियोंको भी अच्छा दिन देखकर, बुलवा लिया। इस प्रकार उसके आठ स्त्रियां हुई। लोग उसके पुण्योंकी बार-बार बड़ाई करने लगे।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें धर्मदेशना द्वारा भव्य प्राणियोंको प्रतिबोध देनेके निमित्त श्री ज्ञानसागर नामक गुरु आ पहुँचे। पुरन्दर सेठ उनकी वन्दना करनेके लिये बड़ी भक्तिके साथ अपने पुत्र पुण्यसार को संग लिये हुए उद्यानमें आ पहुँचा। और-और नगर-निवासी भी आये। देशनाके अन्तमें अवसर पाकर पुरन्दर सेठने गुरुको नमस्कार कर पूछा,—"हे प्रभो! मेरे पुत्र पुण्यसारने पूर्व जन्ममें कौनसा पुण्य किया था?" यह सुन, सूरीश्वरने अवधि-ज्ञानके सहारे उसके पूर्व भवका वृत्तान्त जानकर कहा,—"सेठजी! ख़ूब मन लगाकर सुनो।

"नीतिपुर नामक नगरमें एक कुलपुत्र रहते थे। उन्होंने वैराग्य के कारण सुधर्म नामक मुनिसे दीक्षा ग्रहण कर ली और गुरुकी दी हुई शिक्षाको सदा स्मरण किया करते थे। एक बार गुरुने उनसे कहा,—"हे साधु! तुम आवश्यक क्रियाका खण्डन क्यों करते हो? व्रतमें अतिचार लानेसे बड़ा दोष होता है।" यह सुन, भयभीत होकर वे मुनि कायगुप्ति पालन करनेमें असमर्थ होनेके कारण मुनियोंकी तरह वैया-वच्च करने लगे। क्रमशः समाधि-मरण प्राप्तकर, वे मुनि सौधर्म नामक देवलोकमें जाकर देवता हुए। आयुक्षय होनेपर वे ही वहाँसे च्युत होकर तुम्हारे पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। पाँच समितियों और दो गुप्तियोंकी—अर्थात् सातों प्रवचन-माताओंको इन्होंने भली भाँति आराधना की थी, इसी लिये इन्हें सात नारियाँ अनायास ही मिल गयीं और आठवीं कायगुप्तिकी आराधना इन्होंने बड़ी मुश्किलसे की थी, इसीलिये आठवीं स्त्री ज़रा तरद्दुदसे मिली। इसी लिये बुद्धि-मानोंको भी धर्मके कामोंमें प्रमाद नहीं करना चाहिये।" इस प्रकार अपने पूर्वभवका वृत्तान्त सुन, विवेकी पुण्यसारने श्रावक-धर्म अङ्गीकार कर लिया और पुरन्दर सेठने वैराग्यके मारे चारित्र ग्रहण कर लिया। इसके बाद क्रमशः पुण्यसारको कितने ही बालबच्चे हुए। वृद्धावस्थामें पुण्यसारने भी दीक्षा ले ली और मरनेपर सद्गतिको प्राप्त हुआ।

पुण्यसार-कथा समाप्त।

इस प्रकार पुण्यसारकी कथा सुन, कनकशक्ति राजाने वैराग्यके मारे राजलक्ष्मीका त्याग कर दिया और चारित्र ग्रहण कर लिया। उनकी दोनों स्त्रियोंने भी विमलमति नामक साध्वीसे संयम ले लिया और तपस्याकी साधनामें तत्पर हो गयीं। एक समयकी बात है, कि महामुनि कनकशक्ति पृथ्वीपर विहार करते हुए क्रमश 'सिद्धि' नामक पर्वत पर रातभरके लिये रहे। उस समय उनके पूर्व भवके वैरी हिमचूल नामक देवने वहाँ आकर बड़े उपद्रव मचाये। यह देख, खेचरोंने उस देवको रोका। इसके बाद प्रात.काल कायोत्सर्ग करके मुनि रत्नसञ्चया नगरीमें आकर सूरनिपात नामक उद्यानमें प्रतिमा करके रहे। वहाँ शुक्लध्यान करते हुए उनके चारों घाती कर्मोंका क्षय हो गया और विश्वके दीपकके समान केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। उस समय देवों, विद्याधरों और असुरोंने आकर उनके केवल ज्ञान प्राप्त होनेके उपलक्षमें बड़ी धूमधामसे उत्सव किया। वज्रायुध चक्रवर्ती और अन्य मनुष्योंने भी उनकी बड़ी आदर-भक्ति की।

एक समय क्षेमंकर जिनेश्वर विहार करते हुए उस नगरीमें आये और ईशान-दिशामें उनका समवसरण बनाया गया। उस समय सेवकोंने चक्रवर्त्तीके पास आकर जिनेश्वरके आगमनपर उन्हें बधाई दी। उन्हें इस बधाईके उपलक्षमें इनाम देकर, वज्रायुध चक्रवर्त्ती बड़ी धूमधाम और गाजे-बाजेके साथ अपने परिवारको लिये हुए श्रीजिनेन्द्रको प्रणाम करने गये। वहाँ पहुँच, स्वामीकी तीन प्रदक्षिणा करते हुए उनकी वन्दना कर, वे धर्मदेशना श्रवण करनेके लिये उचित स्थानमें बैठ गये। देशनाके अन्तमें चक्रवर्त्तीके पुत्र सहस्रायुधने दोनों हाथ जोड, जिनेश्वरको प्रणाम कर पूछा,—"हे भगवन्! पवनवेग आदिके पूर्व भवकी बात मेरे पिताने कैसे जान ली? मुझे यह जाननेके लिये बड़ा कौतुहल हो रहा है। इसलिये कृपाकर इसका मुझे भेद बतलाइये।" यह सुन, भगवान्ने कहा,—"तुम्हारे पिता वज्रायुधने अवधि-ज्ञान द्वारा यह बात जान ली थी।" तब सहस्रायुध कुमारने पूछा,—"हे प्रभु! ज्ञान कितने प्रकारका है?"

भगवानने कहा,—"ज्ञान पाँच प्रकारका है—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुत-ज्ञान, (३) अवधि-ज्ञान, (४) मनः पर्यवज्ञान और (५) केवल-ज्ञान। इनमें मतिज्ञानके भेद इस प्रकार हैं:—बुद्धि, स्मृति, प्रज्ञा और मति। ये सब एकही अर्थवाले पर्यायवाची शब्द हैं। तो भी बुद्धि-मान् मनुष्योंने इनमें भेद रखे हैं; जैसे, कि भविष्य-कालके ज्ञानको मति कहते हैं, वर्त्तमान ज्ञानको बुद्धि कहते हैं, भूतकालके ज्ञानको स्मृति कहते हैं और तीनों कालकी बातें जाननेवाला ज्ञान ही प्रज्ञा कहलाता हैं। प्राणीके मत्यावरण-कर्मका क्षय होनेपर मति उत्पन्न होती है। उसके चार प्रकार हैं—(१) औत्पातिकी, (२) वैनयिकी, (३) कार्मणकी और (४) परिणामकी। यही चार भेद बुद्धिके हैं : पाँचवाँ भेद नहीं है। इनमें, जो वस्तु न पहले कभी देखी हो न सुनी, उसके विषयमें भी तत्काल जो बुद्धि उत्पन्न होती है, उसीको पण्डितोंने औत्पातिकी कहा है।

इसी औत्पातिकी बुद्धिके विषयमें श्रीक्षेमङ्कर जिनेश्वरने रोहककी कथा कह सुनायी। वह कथा इस प्रकार है :—



रोहककी कथा।

उज्जयिनी-नामक एक बड़ी भारी नगरी है। उसमें अरिकेसरी नामके राजा रहते थे। उस नगरीके पासही एक बड़ी भारी शिला रखी हुई थी, जिसके निकट ही नटग्राम नामका एक छोटासा गाँव बसा हुआ था। उसमें रंगशूर नामका एक नट रहता था। उसके पुत्रका नाम रोहक था। वह बच्चेपनसेही बहुतसी कलाओंमें निपुण हो गया था और बुद्धिमें बृहस्पतिके ही समान था। जब वह लड़का ही था, तभी उसकी माँ मर गयी थी, इसलिये उसके पिताने रुक्मिणी नामकी एक दूसरी स्त्रीसे विवाहकर लिया था। यह स्त्री यौवनके मदसे उन्मत्त

और स्वामीके सम्मानसे गर्वीली हो रही थी, इसलिये रोहककी वैसी सेवा-सम्हाल नहीं करती थी। इसपर नाराज़ होकर एक दिन रोहकने कहा,—"माता ! तुम मेरे शरीरकी कुछ भी शुश्रूषा नहीं करतीं, इसलिये तुम्हारी कभी भलाई नहीं होगी।" यह सुन, रुक्मिणीने कहा,—"रे नादान ! तू गुस्सा क्यों करता है ? तेरे रंज या खुशीकी मुझे परवा ही क्या है ? तू मेरा क्या बिगाड़ लेगा ?" उसकी ये अभिमान-पूर्ण बातें सुन, रोहकने अपने मनमें सोचा,—"मैं इसको ऐसी कोई ऐब ढूँढ़ निकालूँ, जिससे यह मेरे पिताके चित्तसे उतर जाये।" यही विचार कर, उसने एक दिन आधी रातके समय, एकाएक उठकर आवाज लगायी,—"पिताजी ! पिताजी ! अभी-अभी एक आदमी आपके घरसे बाहर निकल कर गया है।" यह सुनतेही घरके आँगनमें सोया हुआ उसका पिता जग पड़ा और पुत्रसे बोला,—"बेटा ! तुम अभी उस दुष्ट मनुष्यको मुझे दिखला दो।" रोहकने कहा,—"पिताजी ! वह तो एकबारगी छलांग मार, तड़पकर भाग गया।" यह सुनतेही रंगशूरका मन अपनी स्त्रीसे फिर गया और वह अपने मनमें विचार करने लगा,—"क्या मेरी स्त्री पराये पुरुषसे फँसी हुई है ? नहीं तो यह मामला क्या है ? स्त्रियोंके यही ढंग हैं। कहा भी है, कि—

"रूवोहहसियमयरधय पि पुहईसरं पि परिहरिउ।
इयरनरेऽवि पसिज्जइ, ही ही महिलाय अहमत्त ॥ १ ॥"

अर्थात्— 'अपने रूपसे कामदेवको भी लजानेवाले पृथ्वीपतिको भी त्यागकर स्त्रियाँ पराये पुरुष पर अनुरक्त हो जाती हैं। ओह ! इन स्त्रियोंकी यह कैसी नीचता है ?'

इस प्रकार विचार कर, रंगशूरने उस दिनसे अपनी स्त्रीसे बातें करनी भी बन्द कर दीं। इस बातसे बड़ी ही दुःखित होकर रुक्मिणीने अपने मनमें सोचा,—"मेरे स्वामी मुझसे नाराज क्यों हो गये ? मैंने तो कभी इनकी कोई आज्ञा नहीं भङ्ग की ! किसी पराये पुरुषसे कभी हँसकर बोली भी नहीं, फिर ये बिना किसी अपराधके ही मेरे ऊपर

क्यों नाराज़ हो गये?" इसी सोच-विचारमें तीन दिन बीत गये। इतनेमें उसे यह बात सूझ गयी, कि अवश्यही इसी लड़केने मेरे पतिका मन मेरी तरफ़से फेर दिया होगा, इसलिये अब मैं इसीकी खुशामद करूँ,- जिससे मेरे पति मुझपर फिर प्रसन्न हो जायें। ऐसा विचारकर उसने एक दिन रोहकसे बड़ी मुहब्बत दिखलाते हुए कहा,—"बेटा! तुम अपने पिताको मेरे ऊपरसे क्रोध हटा देनेको कहो। मैं तुम्हारी दासी होकर रहूँगी, जो कहोगे, वही करूँगी।" यह सुनकर बुद्धिमान् रोहक राज़ी होगया। इसके बाद फिर एक दिन चाँदनी रातको रोहकने पितासे कहा,—"पिताजी! उठिये, उठिये, देखिये आज फिर वही पुरुष जाता नज़र आता है।" यह सुन, पिताने कहा,—"कहाँ है, बेटा! मुझे दिखाओ, तो सही।" यह सुन, रोहकने उसे अपने शरीरकी छाया दिखला दी। यह देख, उसके पिताने कहा,—"अरे, यह तो आदमी नहीं, शरीर-की छाया है।" रोहकने कहा,—"पिताजी! मैंने तो उस दिन भी ऐसा ही पुरुष देखा था!" यह सुनकर, रंगशूरने मनमें सोचा,—"ओह! मैं नाहक़ एक लड़केकी बातमें आकर अपनी स्त्रीके विषयमें शङ्का रखने लगा और व्यर्थमें उसका अपमान किया!" यह विचार मनमें उत्पन्न होते ही उसका क्रोध शान्त हो गया और वह फिर पहलेकी तरह रुक्मि-णीके साथ प्रीतिका बर्त्ताव करने लगा।

रोहक सदा अपने पिताके साथही भोजन किया करता था। यद्यपि उसकी माता उसपर भक्ति रखती थी, तथापि वह उसका विश्वास नहीं करता था।

एक दिन रंगशूर उज्जयिनी-नगरीको चला गया। उसके साथ ही रोहकने भी वहाँ जाकर सारी नगरीकी सैर की। जब वे दोनों शहरके बाहर चले आये, तब कोई काम याद आजानेसे रङ्गशूर फ़िर नगरमें चला गया। रोहक नगरीके बाहरही क्षिप्रानदीके तीरपर बैठ रहा। बैठे-बैठे उसने नदीकी रेतमें देव-मन्दिर आदिके सहित सारे नगरका चित्र अङ्कित कर डाला। इसके बाद राजमन्दिरकी रक्षा करनेकेलिये

आप द्वारपालकी तरह दरवाजे पर खडा हो रहा। इतनेमें कुछ आदमियोंको साथ लिये हुए उस नगरीका राजा घोडेपर सवार हो, उसी रास्तेसे गुजरने लगा। उसे देख, रोहकने बडी धृष्टताके साथ कहा,--"हे राजकुमार! क्या आप इस प्रासाद श्रेणीसे सुशोभित नगरीको ध्वंस कर देना चाहते हैं, जो इधरसे घोडा हटाकर नहीं ले जाते ?" यह सुन, उसको अङ्कित की हुई नगरीको देख, उसकी बुद्धिमानीसे आश्चर्यमें आकर राजाने कहा,—"यह लडका कौन है ?" उनके पास खडे सेवकोंने कहा,—"महाराज! यह रङ्गशूर नटका वेटा रोहक है। है तो जरासा लडका ही, पर बडा ही होशियार है।" यह सुन, राजाने अपने मनमें विचार किया,-"अच्छा, मैं इस बालककी बुद्धिमानीकी परीक्षा करूँगा।" तदनन्तर पिताके आनेपर रोहक उसके साथही अपने घर चला आया।

एक दिन राजाने अपने सेवकोंको नट-ग्राममें भेजकर वहाँके लोगोंपर यह फर्मान जारी किया, कि चाहे जितना खर्च हो जाय, लेकिन मेरे रहनेके लिये एकही चीजका एक महल तैयार कर डालो। यह हुक्मनामा सुन, रङ्गशूर वगैरह सभी बडे-बूढे लोग इकट्ठे होकर विचार करने लगे और यह कार्य करनेमें असमर्थ होकर बडी देरतक विचार ही करते रहे। इतनेमें भोजनका समय होजानेके कारण रोता हुआ रोहक आकर बोला, --"पिताजी! चलो, मुझे भूख लगी है। मैं तुम्हारे बिना भोजन नहीं करूँगा।" यह सुन, रङ्गशूरने कहा,—"बेटा! थोडी देर ठहरो। राजाका बडा विकट हुक्मनामा आया है। इस समय उसीका विचार चल रहा है।" रोहकने पूछा,—"कैसा हुक्मनामा आया है ? लोगोंने कहा,—"उन्होंने कहला भेजा है, कि मेरे लिये एकही चीजका एक महल तैयार कराओ। इसलिये उनकी हुक्मकी तामील तो करनीहो होगी।" यह सुन, रोहकने कहा 'अभी चलकर आप सबलोग खायें-पियें, पीछे मैं आप लोगोंको इसका जवाब दूंगा। इसके लिये इतनी चिंता की क्या आवश्यकता है।" यह सुन, गाँवके सबलोग खाने चले गये। खा-पीकर जब सब लोग फिर इकट्ठे हुए, तब उन्होंने रोहक-

को बुलवाया। रोहकने राजाके सेवकोंके सामनेही कहा,—"हे राजपुरुष! तुम लोग अपने राजासे जाकर कहो, कि हमारे गाँवके पासही एक बड़ी ऊँची और लम्बी-चौड़ी शिला है। उस एकही शिलाका मैं राजमन्दिर तैयार करा दूँगा; पर इसके लिये आपको अक्षय धन-भण्डार यहाँ भेज देना होगा। उसे भेज दीजिये, तो काम शुरू कर दिया जाय।" उसकी इस चतुराई-भरी बातको सुनकर, सबलोग उसकी बुद्धिमानी देख, बड़े हर्षित हुए। इसके बाद राजपुरुषोंने जाकर राजासे कहा,—"हे महाराज! एक बालकने आपकी बातका ऐसा जवाब दिया है।" यह जवाब सुनकर राजा भी बड़े विस्मित हुए।

एक दिन राजाने अपने एक नौकरके साथ एक बकरा भेजकर गाँववालोंको कहला भेजा, कि इसे हमेशा चारा-पानी देकर पालन करना होगा; पर देखना, यह नतो दुबला हो न मोटा, हमेशा जैसाका तैसाही बना रहे। जब मैं मागुँ, तब यह इसी दशामें मेरे पास लौटाया जाय। यह सुनकर लोगोंने फिर रोहकको बुलाकर पूछा, कि अब राजाके इस हुक्मकी तामील कैसे की जाये? रोहकने कहा,—"इसे यहीं रखो और हमेशा खिला-पिलाकर इसे भेड़ियेकी सूरत दिखला दिया करो। इससे यह न तो बहुत मोटा होगा, न दुबला, इसी तरह राजाके इस हुक्मकीभी पूरी तामील हो गयी।

इसके बाद राजाने एक मुर्ग़ा भेजकर हुक्म दिया, कि इसे अकेला ही लड़ाओ। यह सुन, सब लोग विचार करने लगे, कि यह अकेला भला कैसे लड़ेगा? तब रोहकने कहा,—"इस महज मामूली बातके लिये तुम लोग क्यों चिन्ता करते हो?" उन्होंने कहा,—"तब तुम्ही इस कामको पूरा करो।" रोहकने कहा,—"इसके सामने एक बड़ा सा आइना लाकर रख दो। यह उसमें अपनी परछाँई देख, उसे दूसरा मुर्ग़ा समझ कर आपही लड़ पड़ेगा। यह सुन, उन लोगोंने ऐसाही किया और राजाकी इस आज्ञाका भी पालन हो ही गया।

इसके बाद राजाने एक गाड़ीमें भर कर तिल भिजवाकर कहलाया,

कि इन तिलोंको जिस मापसे भरना, उसी मापसे तेल भरकर देना होगा। यह सुनकर लोगोंने छोटा होनेपर भी रोहकको बुलवाया और उससे यह हाल कह सुनाया। उसने कहा,—"एक बहुत दिनोंका पुराना तेलका बर्तन मंगवाकर उसीमें इन तिलोंको भरो और फिर उसी मापसे तेल भरकर दे देना।" लोगोंने ऐसा ही किया। इससे राजा बडेही खुश हुए।

इसके बाद राजाने एक दिन हुक्म दिया,—"अपने गाँवकी नदीकी रेतकीरस्सी बटकर धानका बोझा बाँधनेके लिये भेज दो।" इसके जवाब में रोहकने कहला भेजा,—"हमें तो राजाका जो कुछ हुक्म हो उसका पालन करना ही चाहिये, पर यह रस्सी कितनी बडी होनी चाहिये, यह मालूम करनेके लिये आप वैसेही एक पुरानी रस्सीका नमूना भेज दीजिये, तो नयी रस्सियाँ बटकर भेज दी जायगी।" यह जवाब पाकर राजा बडेही खुश हुए।

तदनन्तर एक दिन राजाने एक बहुत बूढा और बीमार हाथी भिजवाकर कहला भेजा कि इस हाथीको खूब जतनसे रखो और मुझे इसका समाचार बराबर भेजते रहो, लेकिन यदि यह किसीदिन मर जाये,तो भी मुझसे यह आकर न कहना कि यह मरगया।" यह सुनकर लोगोंने उस हाथीको रख लिया। बडी हिफाजतसे रखनेपर भी वह हाथी मर गया। तब रोहकने गाँवके लोगोंसे कहला भेजा,—"हे स्वामी! आज वह हाथी न तो चारा खाता है, न पानी पीता है, न करवट बदलता है, न आँखे खोलता है, न साँसे लेता है।" यह सुन राजाने पूछा,—तो क्या वह मर गया!" गाँववालोंने कहा,—"यह तो हुजूर जानें, हमलोग नहीं जानते।" यह जवाब पाकर राजा चुप हो गये।

एक दिन राजाने फिर आज्ञा जारी की, कि तुम्हारे गांवमें जो मीठे जलवाला कुआँ है, उसे यहाँ ले आओ। इसपर रोहकने निवेदन किया,—"महाराज! यह गवई-गाँवका कुआँ बडाही डरपोक है,इसलिये आप यहाँसे एक शहरी कुआँ यहाँ भेज दें, तो उसीके साथ हम

लोग इस कुऐंको रवाना कर देंगे ।" यह सुनकर, राजाने सोचा, कि इसकी बुद्धितो बड़ी ही तीव्र है । यह कोई मामूली बुद्धिमान नहीं है ।

तदनन्तर एक दिन राजाने कहला भेजा,—"हेग्रामवासियो ! तुम्हारे गाँवकी उत्तर दिशामें जो वन है, उसे गाँवके दक्खिन कर दो ।" इसपर रोहकने जवाब दिया, कि गाँवको वनके उत्तर बसा दीजिये, बस वह वन गाँवके दक्खिनमें आ जायगा ।" यह सुन, राजाने विचार किया, कि यह तो बड़ाही होशियार है ।

फिर एक दिन राजाने हुक्म दिया, कि विना आगके सहारे खीर पकाकर मेरे पास भेज दो । यह सुन, रोहकने जङ्गलके कण्डोंके बीचमें बड़े-यत्नसे खीरका बर्तन रख दिया । उन कण्डोंकी गरमीसे खीर पककर तैयार हो गयी । रोहकने उसे ही राजाके पास भिजवा दिया । इस तरह राजाके इस हुक्मकी भी तामिल हो गयी ।

इसके बाद राजाने गाँवके लोगोंको कहला भेजा,—"तुम्हारे गाँवमें जो ऐसा बुद्धिमान मनुष्य है, उसे इस प्रकार परस्पर विरुद्ध व्यवस्था करके मेरे पास आनेको कहो । वह व्यवस्था इस प्रकार है:— वह स्नान करके नहीं आये ; पर साथही शरीरको मलिन बनाये हुए भी नहीं आये । वह नतो किसी वाहन पर चढ़ा हुआ आये, न पैदल आये ; न टेढ़ी राह आये, न सीधी राह ; न रातको न आये; न दिनको न कृष्ण पक्षमें आये, न शुक्ल-पक्षमें ; न छायामें आये, न धूपमें ; न कुछ भेटके लिये ले आये न ख़ाली हाथ आये ।" इस प्रकारकी आज्ञा पाकर रोहकने जलसे शरीरको धोया सही; पर खूब देह मलकर स्नान नहीं किया । वह एक बकरे पर सवार होकर चला, जिससे उसके पैर ज़मीनसे छू जाते थे । अमावास्याके उपरान्त प्रतिपदाके दिन, सन्ध्याके समय सिरपर चलनी रखे,गाड़ीकी लीकके बीचसे चलता हुआ वह हाथमें एक मिट्टीकापिण्ड लिये हुए राजसभामें आ पहुँचा । राजाको प्रणाम कर वह उनके सामने बैठ गया और मिट्टीका वह पिण्ड उनके पास रख दिया । राजाने यह पूछा,—"यह क्या? उसनेकहा, यह इस जगत्की जननी

मृतिका है!" राजाने फिर पूछा,—"तुम यहाँ कैसे आये?" उसने कहा,—"आपने जिस तरह आनेका हुक्म दिया था, वैसेही आया।" यह कह उसने राजासे सब कुछ विस्तारके साथ कह सुनाया। उसने कहा,—महाराज! मैंने शरीरको नहलाया तो सही, पर उसका मैल नहीं धोया, इसलिये नहाया भी और मलीन भी बना रहा। एक नन्हेसे बकरे पर सवार होकर आया इसलिये मेरे पैर जमीनको छू रहे थे, अतएव मैं नतो सवारी पर था, न पैदल था। अमावस्याके ही दिन, शामको प्रतिपदा लगती थी, इसीलिये मैं आज आया, क्योंकि यह न तो शुक्ल-पक्ष हुआ न कृष्णपक्ष। साँझको आया इसलिये न तो यह दिन हुआ, न रात हुई। गाडीकी लीकके बीचो बीच आया, इसलिये न सीधो राह आया, न टेढी राह। हाथमें मिट्टीका पिण्ड लेकर आया, इसलिये न खाली हाथ हूँ, न भेंट लिये साथ हूं। सिरपर चलनी रखे आया हूँ। इसलिये न धूपमें रहा, न छाया में।" यह सुनकर राजाको मालूम हो गया, कि इसने मेरे हुक्मकी पूरी-पूरी तामील कर डाली। तब राजाने उसे खुशीसे इनाम दिया और उसका आदर करते हुए सभामें उसकी इस प्रकार बडाई की,—"अहा! इस महात्माका बुद्धि-वैभव देखकर तो चित्तमें यही विचार उत्पन्न होता है, कि यह सुभाषित बहुत ही ठीक है,

'वाजिवारण लोहाना, काष्ट-पाषाण-वाससाम्।
नारी-पुरुष-तोयाना, दृश्यते महदन्तरम्॥ १॥

अर्थात्—घोडे-घोडेमें, हाथी-हाथीमें, लोहे-लोहेमें, लकडी-लकडीमें, पत्थर-पत्थरमें, वस्त्र-वस्त्रमें, नारी-नारीमें, पुरुष-पुरुषमें, और जल-जलमें, भी बडा फर्क दिखाइ देता है।

इसके बाद राजाने उस दिनके लिये रोहकको पहरे पर नियुक्त किया और आप सोने चले गये। रातका पहला पहर बीत जानेपर राजाकी नींद टूटी और उन्होंने देखा, कि रोहक सोया हुआ है। यह देख, उन्होंने पूछा,—"क्यों रोहक! तुम सोये हो, या जागे हुए हो?" यह सुन,

नींदसे जगकर रोहकने झटपट जवाब दिया,—"महाराज ! मैं जगा हुं, पर ज़रा एक बातके विचारमें पड़गया हूँ ।" राजाने पूछा,—"तुम किस विचारमें पड़े हुए थे ?" उसने कहा,—"बकरियोंकी लेंड़ीको इस तरह गोल-गोल कौन बनाता है ? राजाने पूछा,—"तुम्हारे विचारसे इसका क्या निर्णय हुआ ?" उसने कहा,—"बकरीके पेटमें वायु (संवर्त्त वायु) की कुछ ऐसी ही प्रबलता है, जिससे लेंड़ियाँ गोल हो जाती हैं ।" इसके बाद दूसरे पहर नींद टूटने पर भी राजाने रोहकसे पूछा,—"अरे! क्या तुम्हें नींद आ गयी ?" यह सुन, उसने सावधान होकर कहा,—"स्वामी ! मुझे नींद तो आती ही नहीं ।" राजाने पूछा,—"तब मेरे पुकारनेके इतनी देर बाद तुम क्यों बोले ?" उसने कहा,—"महाराज ! मैं कुछ सोच-विचारमें पड़ा हुआ था " राजाने पूछा,—"क्या सोच रहे थे ? उसने कहा,—"महाराज मैं यही सोच रहा था, कि पीपलके पत्तेका नीचे वाला हिस्सा मोटा होता है या ऊपरवाला !" राजाने पूछा,—तुमने इसका क्या यिर्णय किया । उसने कहा,—"मेरे विचारसे ये दोनों ही भाग एकसे होते हैं ।" यह सुन, राजा फिर सो गये । तीसरे पहरमें फिर उन्होंने जागते ही पूछा,—"क्यों जी ! जगे हो या ऊँघ रहे हो ?" उसने कहा,—"जगा हूँ, पर कुछ विचारमें पड़ा हुआ हूं ।" राजाने पूछा,—"क्या विचार कर रहे हो ?" उसने कहा,—"मैं यही सोच रहा था, कि गिलहरीका शरीर बड़ा होता है या पूँछ बड़ी होती है ? और उसके शरीर पर श्यामता अधिक है या श्वेतता ?" राजाने पूछा, आखिरकार, तुमने क्या निर्णय किया ?" उसने कहा मैंने यही निश्चय किया है, कि उसका शरीर और पूँछ, दोनों बराबर होते हैं और उसकी स्याही सफ़ेदी भी एकसी है ।" इसके बाद राजा फिर सो रहे । चौथे पहरके अन्तमें उनकी नींद टूटी । उस समय रोहक नींदमें बेसुध पड़ा था । यह देख, राजाने उसे एक काँटेसे गोंद दिया । तुरत ही उसकी नींद खुल गयी । राजा ने कहा,—"क्यों ? खूब नींद आयी थी न ?" उसने कहा,—"हे स्वामी !

चिन्तातुर मनुष्योंको नींद कहाँसे आ सकती है? मैं विचारमें मग्न हो रहा था।" राजाने कहा,—"अबके तुम किस विचारमें थे?" उसने कहा,-"हे स्वामी! मैं यही सोच रहा था, कि राजाके कितने बाप हैं?" राजा ने कहा"अरे! तू क्या बकता है?" उसने कहा,—"राजन्! मैं सच कहता हूँ, आपके पाँच पिता हैं।" यह सुन, क्रोध और आश्चर्यके साथ राजाने कहा,—"रे बकवादी! बोल, मेरे पाँचों बाप कौन-कौन हैं?" उसने कहा- —"एक तो राजा, दूसरा कुबेर, तीसरा धोबी, चौथा बीछू, पाँचवाँ चाण्डाल। ये ही पाँचों आपके पिता हैं।" यह सुन राजाने पूछा,—"अच्छा, रोहक! तू यह बता, कि यह बात तुझे कैसे मालूम हुई, कि मेरे पाँच पिता हैं?" उसने कहा,—"आपके गुणोंसे ही जाना।" राजा ने पूछा, मेरे किन-किन गुणोंसे तुझे मालूम हुआ, उसने कहा—"महाराज! आप नीतिके साथ राज्यका पालन कर रहे हैं, इससे तो मालूम होता है, कि आप राजाके पुत्र हैं। जिस पर आप प्रसन्न होते हैं, उसे बहुतसा धन दे डालते हैं। इसलिये मालूम होता है, कि आपके पिता कुबेर हैं। आप जिस पर नाराज होते हैं, उसका सर्वस्व छीन लेते हैं इसलिये तो मालूम होता है, कि आपके पिता धोबी रहे होंगे। आपने जब मुझे काँटेसे गोदा, तब मैंने सोचा, कि आपके पिता बिच्छू हों तो आश्चर्य नहीं और आप अत्यन्त कोप करते हैं, इसलिये आपके पिताका चाण्डाल होना भी सम्भव है।" यह सुन, राजाने इस बातका निश्चय करनेके लिये अपनी माताले पूछा, तब उन्होंने कहा,—"हे पुत्र! ऋतु-स्नान करनेके बाद मैंने एक समय धोबी, चाण्डाल और बिच्छू देखा था।" यह सुन, रोहककी बात सच समझ कर राजाने आश्चर्यान्वित हो, उसकी बुद्धिकी बड़ी प्रशंसा की और उसे बड़े आदरके साथ अपने पाँच सौ मन्त्रियोंमें मुख्य बना लिया। इसके बाद उसकी बुद्धिके प्रभाव से बड़े-बड़े बलवान् राजा भी अरिकेसरी राजा के वशमें हो गये।

रोहक-कथा समाप्त।

"दूसरी वैनयिकी बुद्धि है। यह गुरुकी विनय करनेसे प्राप्त होती है। निमित्तादिक शास्त्रोंमें जो सुन्दर विचार उत्पन्न होते हैं, उनमें गुरुकी विनयही प्रमाणभूत है। घट आदि पदार्थ बनाने और चित्र अङ्कित करने आदिके शिल्प-ज्ञानको तीसरी कार्मिकी बुद्धि कहते हैं। परिणामके वश-वयके परिपाकसे-वस्तुका निश्चय करानेवाली जो बुद्धि होती है, वही चौथी परिणामिकी बुद्धि कही जाती है। इस बुद्धिके बहुतसे दृष्टान्त शास्त्रोंमें पाये जाते हैं; पर ग्रन्थ बड़ा हो जानेके ही भयसे, हमने उन्हें यहाँ नहीं लिखा। इन चार प्रकारकी बुद्धियोंको अश्रुत-निश्रित मतिज्ञान् कहा जाता है। इस मतिज्ञानसे प्राणी समग्र श्रुतज्ञानका अभ्यास कर सकते हैं और श्रुत-ज्ञानसे तीनों कालका ज्ञान प्राप्त होता है। इस विषयमें आगममें कहा हुआ है, कि—

"उड्ढमहतिरियलोए, जोइसवेमाणिया य सिद्धा य।
सव्वो लोगालोगो, सि (स) ज्झायविउस्स पच्चक्खो ॥ १ ॥"

अर्थात्-- "ऊर्द्ध-लोक, अधोलोक, तिर्छलोक, ज्योतिषी, वैमानिक, सिद्ध और सर्व लोकालोक--यह सब स्वाध्याय (श्रुतज्ञान) जाननेवालेको प्रत्यक्ष होजाता है। यह दूसरा श्रुतज्ञान कहलाता है।"

"जिसके द्वारा प्राणीको कितनेही जन्मोंका ज्ञान प्राप्त हो जाता है और जिससे वह सब दिशाओंकी अमुक अवधि-पर्यन्त जानता और देखता है, वह तीसरा अवधि-ज्ञान कहलाता है। जिसके द्वारा संज्ञी-जीवोंके मनोगत परिणामका ज्ञान होता है, वह चौथा मनः पर्यवज्ञान कहा जाता है। और जिस ज्ञानसे किसी स्थानपर किसी तरहकी ठोकर नहीं लगती—किसी तरहकी भूल-चूक नहीं होती, वही सिद्धि-सुखका देनेवाला केवलज्ञान कहलाता है।"

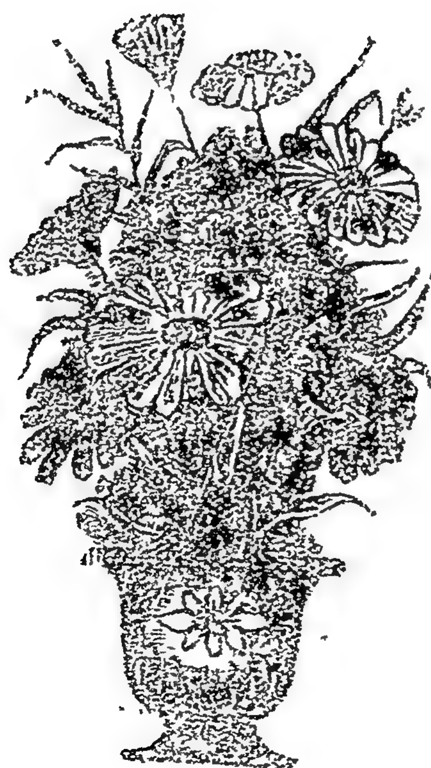
इस प्रकार पाँच प्रकारके ज्ञानकी व्याख्यासुन, जिनेश्वरको नमस्कार कर, अपने घर आकर वज्रायुध चक्रवर्त्तीने अपने सहस्रायुध नामक पुत्रको राज्यपर बैठा दिया और स्वयं चार हज़ार राजाओं और सात सौ पुत्रोंके साथ क्षेमङ्कर तीर्थङ्करसे दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद

गीतार्थ हो, पृथ्वीपर अकेले विहार करते हुए वे वज्रायुधमुनि सिद्धि-पर्वत नामक श्रेष्ठ गिरिके ऊपर आये। वहाँ रमणीय शिलातलयुक्त वैरोचन-स्तम्भके ऊपर वे एक वर्षतक मेरुकी तरह निश्चल प्रतिमामें रहे। इसी समय अश्वग्रीव प्रतिवासुदेवके दोनों पुत्र, मणिकुम्भ और मणिध्वज, जो संसारमें परिभ्रमण कर, उस समय देवत्वको प्राप्त हो गये थे, उसी स्थानपर आये। पूज्य महर्षि वज्रायुधको देख, उन्हें दाह पैदा हुआ, इस लिये वे तरह-तरहके उपद्रव करने लगे। पहले तो उन्होंने तीखे दाँत-वाले भयंकर और मोटी पूँछवाले सिंह तथा बाघकारूप बनाकर महर्षि-को डराया। इसके बाद हाथीका रूप बना उन्होंने मुनिपर दाँतसे भी चोट की और फन फैलाये हुए भयकर साँप और साँपिनका रूप धारण कर उन्हें कई बार काट भी खाया। अन्तमें पिशाच-पिशाचिनीका भयावना रूप बना, उन दुष्ट देवोंने मुनीश्वरको तरह-तरह उपद्रव करके सताया, परन्तु उनकी किसी हरकतसे मुनिको तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ।

इसी समय देवेन्द्रकी अग्रमहिषियां, रम्भा और तिलोत्तमा, वज्रायुध मुनिको प्रणाम करने आयीं। उन्हें आते देखकरही वे दुष्ट देव भाग गये। उन्हें भागते देख, इन्द्रकी उन पत्नियोंने उन्हें डरानेके लिये खूब डाँट-फटकार बतायी। इसके बाद परिवार सहित देवाङ्गना रम्भा, मुनिके निकट, बड़े भक्तिभावसे हाव-भावादि विलासके साथ मनोहर नृत्य करने लगी और तिलोत्तमा अपने परिवारके साथ सातों स्वरों और तीनों ग्रामोंसे युक्त उत्तम सङ्गीत गाने लगी। इसके बाद वे दोनों देवियाँ परिवार-सहित मुनिको प्रणाम कर, अपने-अपने स्थान को चली गई। वज्रायुध मुनीश्वर अति दुष्कर ऐसी वार्षिक प्रतिमाका अङ्गीकार कर चारों ओर घूमते हुए पृथ्वी-मण्डलपर विहार करने लगे। एक दिन क्षेमङ्कर जिनेश्वरके मोक्षको प्राप्त हो जानेके बाद वे मुनि, राजा सहस्रायुधके नगरमें आये। वज्रायुध

का नायुध राजा बड़ी

पास आये और उनकी वन्दना की। उनसे धर्मदेशना श्रवणकर उन्हें प्रतिबोध प्राप्त हुआ और उन्होंने अपने शतबल नामक पुत्रको राज्यपर बैठाकर आप उन्हीं मुनिसे दीक्षा ले ली। क्रमशः वे भी गीतार्थ हो गये। इसके बाद वे अपने पिताके परिवारमें सम्मिलित हो गये और दोनों पिता-पुत्र विविध प्रकारकी तपस्याएँ करते हुए पृथ्वीपर विचरण करने लगे। अन्तमें वे दोनों मुनि ईषत्प्राग्भार नामक पर्वतपर आरोहण कर, वहीं पादपोगम-अनशन करने लगे। अनुक्रमसे शुभध्यानसे सब कर्मोंका क्षय कर, वज्रायुध और सहस्रायुध—ये दोनों ही मुनीश्वर नवें ग्रैवेयकमें जाकर देव हुए।



पाँचवाँ प्रस्ताव।

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व, महाविदेह-क्षेत्रमें, पुष्कलावती नामक विजयमें, पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। उसमें नीति, कीर्त्ति और जयलक्ष्मीके मन्दिर-स्वरूप घनरथ नामके तीर्थङ्कर राजा रहते थे। उनके दो स्त्रियाँ थीं। पहलीका नाम प्रीतिमती और दूसरीका नाम मनोहरी था। नवें ग्रैवेयकमें रहनेवाला वज्रायुधका जीव, इकतीस सागरोपमका आयुष्य पूर्ण कर, वहाँसे च्युत हो, उनकी पहली रानी प्रीतिमतीकी कोखमें आया। उस समय उसकी माताने मेघका स्वप्न देखा। सहस्रायुधका जीव भी वहाँसे च्युत हो, दूसरी रानीकी कोखमें आया। उस समय रानीने भी रथका स्वप्न देखा। क्रमसे समय पूरा होने पर दोनों रानियोंके गर्भसे शुभलक्षणयुक्त पुत्र उत्पन्न हुए। क्रमसे उनके नाम मेघरथ और दृढरथ रखे गये। दोनों राजकुमार शैशवावस्थाको पार कर, अपनी विनय शीलता और बुद्धिमत्ताके प्रभावसे कलाचार्यके निकट बहत्तर कलाओंकी शिक्षा प्राप्त की। सब कलाएँ सीखने पर वे दोनों राजकुमार युवावस्थाको प्राप्त हुए और अपनी सुन्दरताके आगे कामदेवको भी नीचा दिखाने लगे। इसी समय सुमन्दिर नामक नगरके स्वामी, राजा निहतारिकी प्रियमित्रा और मनोरमा नामकी दो पुत्रियोंसे मेघरथका व्या हुआ और उन्हीं निहतारिराजाकी छोटी लड़की सुमति, कुमार दृढरथको व्याही गयी। मेघरथकी स्त्रियों-प्रियमित्रा और मनोरमाके नन्दिषेण और मेघसेन नामक दो पुत्र हुए

और दृढ़रथको अपनी स्त्री सुमतिसे रथसेन नामका एक पुत्र हुआ। क्रमसे लड़कपन पारकर उन तीनों राजकुमारोंने सब कलाओंका अभ्यास किया।

एक दिन राजा वनरथ, अपने पुत्रों और पौत्रोंके साथ, सिंहासन को अलंकृत करते हुए राजदरबारमें बैठे हुए थे। इसी समय मेघरथ ने सब कलाओंमें निपुण अपने पुत्रोंसे कहा,—"प्यारे पुत्रो! तुम लोग अपनी-अपनी बुद्धिका चमत्कार दिखलानेके लिये परस्पर प्रश्नोत्तर करो।" यह सुन, छोटे लड़केने प्रश्न किया:—

"कथं संबोध्यते ब्रह्मा?, दानार्थे धातुरत्र कः?
कः पर्यायश्च योग्यानां? को वाऽलंकरणं नृणाम्?॥ १॥

अर्थात्—"ब्रह्माका सम्बोधन क्या है? दानके अर्थ में किस धातुका प्रयोग होता है! योग्य का पर्याय क्या है? और मनुष्यों का अलंकार कौनसा है"?

यह सुन, कुछ देर विचार कर दूसरे पुत्रने जवाब दिया—कलाभ्यासः। [अर्थात् ब्रह्माका सम्बोधन है 'क', दानके अर्थमें 'ला' धातु का प्रयोग होता है, योग्यका पर्याय है 'अभ्यास' और मनुष्योंका अलङ्कार है—कलाभ्यास।] इसके बाद दूसरे लड़केने पूछा,—

"दण्डनीतिः कथं पूर्वं? महाखेदे क उच्यते?
कोऽबलानां गति-र्लोके-पालः कः पंचमो मतः?"॥

अर्थात्—"प्रथम दण्डनीति कैसी थी? बहुत बड़ा खेद प्रकट करनेवाला कौनसा शब्द है? स्त्रियों की गति कौन है? पाँचवाँ लोक पाल कौन कहलाता है।"

यह सुन, बड़े बेटेने उत्तर दिया,— "महीपतिः"। [अर्थात्— प्रथम युगलिकके समयमें दण्डनीति 'म' मकारवाली ही थी, महाखेद प्रकट करनेवाला शब्द 'ही' है, स्त्रियोंकी गति पतिही है और पाँचवाँ लोक-पाल 'महीपति' अर्थात् राजा है।]

इसके बाद बड़े बेटेने प्रश्न किया —

> "किमाशीर्वचनं राज्ञा ? का शम्भोस्तनुमण्डनम् ?
> क कर्त्ता सुख दु खाना ? पात्र च सुकृतस्यकिम् ? "

अर्थात्—"राजाओंको क्या कहकर आशीर्वाद दिया जाता है ? महादेवके शरीरका शृंगार कौनसा है ? सुख—दुखका कर्त्ता कौन है ? पुण्यका ठीक-ठीक निवास किसमें है ?"

यह सुन, और कोई उन्हें उत्तर नहीं देसका, इसलिये मेघरथही बोल उठे,—"जीवरक्षाविधि ।" [अर्थात्—राजाओंको 'जीव'—तुम जिओ—ऐसा कहकर आशीर्वाद दिया जाता है । महादेवके शरीरका भूषण 'रक्षा' यानी राख है । सुखदु खका कर्त्ता विधि, यानी विधाता है । और पुण्यका स्थान'जीवरक्षाविधि' यानी जीवोंकी रक्षाका उपाय करना है ।] " फिर मेघरथनेही प्रश्न किया,—

> "सुखदा का शशाकस्य ? मध्ये च भुवनस्य क ?
> निषेधवाचक को वा ? का ससार-विनाशिनी ?

अर्थात्—"चन्द्रमाकी कौनसी वस्तु सुखदायिनी है ? भुवनके मध्यमें क्या है ? निषेधवाचक शब्द कौनसा है ? और ससारका विनाश करनेवाली कौनसी वस्तु है ?"

इसका जवाब भी किसीसे देते न बना । तब राजा घनरथनेही कहा,— 'भावना' [अर्थात्—चन्द्रमाकी 'भा' यानी कान्ति सुख देने वाली है । 'भुवन' इस तीन अक्षरोंवाले शब्दके बीचमें 'व' है । निषेध-वाचक शब्द है 'ना' । और संसारका नाश 'भावना' ही करती है ।]

इस प्रकार उन लोगोंने कुछ देरतक प्रश्नोत्तरोंसेही दिल बहलाया। इसी समय एक गणिका वहाँ आकर बोली,— " महाराज ! मेरे पास यह जो मुर्गा है, वह किसी दूसरे मुर्गेसे हरगिज नहीं हार सकता। यदि किसीके मनमें अपने मुर्गेकी ताकतका घमण्ड हो, वह अपना मुर्गा मेरे पास ले आये और मेरे मुर्गेके साथ लड़ाकर देख ले । जिस किसी

का मुर्ग़ा मेरे मुर्ग़ेको हरा देगा, उसे मैं लाख अशर्फियाँ इनाम दूँगी। साथही जिसका मुर्ग़ा हार जायगा, उससे मैं भी लाख अशर्फियाँ ले लूँगी।" यह सुनकर मनोरमा रानीने राजासे हुक्म लेकर अपनी दासीसे अपना मुर्ग़ा मँगवा लिया और उस गणिकाकी शर्त्त कबूल कर ली। दोनों मुर्ग़े आमने-सामने कर दिये गये— दोनों एक दूसरेसे गुथ गये। उस समय चोंच और पैरोंसे युद्ध करते हुए उन दोनों मुर्ग़ों की सब सभासदोंने बड़ी प्रशंसा की। इतनेमें, तीर्थङ्कर होनेके कारण गर्भवासके ही समयसे तीनों कालका ज्ञान रखनेवाले राजा घनरथने अपने पुत्र मेघरथसे कहा,—"पुत्र! ये दोनों मुर्ग़े चाहे ज़ितनी देरतक लड़ते रहें, पर इनमेंसे कोई हार नहीं सकता।" यह सुन मेघरथकुमार ने पूछा,— "इसका क्या कारण है?" तब तीनों ज्ञानके धारण करने वाले राजाने कहा,—

"इसी जम्बूद्वीपमें, भरतक्षेत्रकेही अन्दर, रत्नपुर नामक नगरमें धनदत्त और सुदत्त नामके दो बनिये रहते थे, जिनमें परस्पर बड़ी मित्रता थी। वे दोनों बैलों पर माल लादे, भूख-प्यासकी मार सहते हुए, एकही साथ बानेज-ब्योपार करते चलते थे; परन्तु दोनोंही मिथ्यात्वके कारण मूढ़ हो रहे थे, इसलिये कमती माप-तौल करके लोगों को ख़ूब ठगा करते थे। ऐसा करने पर और बहुत कोशिश करते हुए भी वे बहुत कम माल पैदा करते थे। एक समयकी बात है, कि उन दोनोंके दिलोंमें गाँठ पड़ गयी और वे परस्पर लड़ाई झगड़ा करते, एक दूसरेको मारते-कूटते हुए आर्त्तध्यानसे मृत्युको प्राप्त होकर सुवर्णकूला नदीके तीर पर काँचन-कलश और ताम्रकलश नामके दो जंगली हाथी हुए और अलग-अलग झुण्डोंके सर्दार बन बैठे। वहाँ भी वे अपना झुण्ड बढ़ानेके लिये लोभके मारे परस्पर युद्ध करते हुए मर गये और अयोध्यामें नन्दिमित्रके घर पाड़े (भैंसके बच्चे) हुए। उन्हें दो राजकुमारोंने ख़रीदा और परस्पर लड़ा दिया। उसी युद्धमें मरकर वे उसी नगरमें बकरे होकर पैदा हुए। इस जन्ममें भी उनका युद्ध जारी रहा

इस प्रकारकी कथा सुनाकर स्वामी श्रीशान्तिनाथने चक्रायुध राजासे कहा,—हे राजन्! पहले कहे हुए बारहोंव्रत गृहस्थोंके लिये बतलाये गये हैं। विवेकी मनुष्योंको उन व्रतोंका पालन कर, अन्तमें संलेखना करनी चाहिये। गृहस्थ-धर्मका आराधन कर, बुद्धिमानोको अन्तमें सर्व-विरति ग्रहण करनी चाहिये। ऐसी शुद्ध सलेखना सिद्धान्त ग्रन्थोंमें बतलायी गयी है, अथवा श्रावककी दर्शन (समकित) आदि ग्यारह प्रतिमाएं वहन करनेको भी शुद्ध सलेखना कहते हैं। इन प्रतिमाओंका वहन न करे, तो अन्तमें सन्थारामें रह कर भी दीक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिये। इसके बाद अन्त समयमें वृद्धि पाते हुए शुभपरिणामके साथ गुरुके निकट त्रिविध अनशन ग्रहण कर, गुरुके मुँहसे आराधना ग्रन्थोंको सुनना चाहिये।

"भव्य जीवोंको चाहिये, कि अपने मनमें निर्मल संवेग-रङ्ग लाकर शुद्ध मनसे इस प्रकार संलेखना करें और उसके पाँचों अतिचारोंका वर्जन करे। उन अतिचारोंके नाम और अर्थ इस प्रकार हैं,—पहला-इहलोकाशंसा-प्रयोग अर्थात् 'यदि मैं मनुष्य भव प्राप्त करूँ, तो अच्छा है, ऐसा मनमें विचार करना, पहला अतिचार है। दूसरा—परलोकाशंसा प्रयोग अर्थात् 'परभवमें मुझे उत्कृष्ट देवत्व प्राप्त हो, तो ठीक है' ऐसा विचार करना दूसरा अतिचार है। तीसरा—जीविताशंसा-प्रयोग अर्थात् पुण्यार्थी जन जो अपनी महिमा बखानते हों, उसे देखकर अधिक दिन जीनेकी जो इच्छा होती है, वही तीसरा अतिचार है। चौथा—मरणाशंसा-प्रयोग अर्थात् अनशन ग्रहण करने बाद क्षुधा आदि पीडासे जल्दी मर जानेकी जो अभिलाषा होती है, वही चौथा अतिचार है। पाँचवाँ—कामभोगाशंसा-प्रयोग अर्थात् उत्तम शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्धकी जो इच्छा होती है, वही पाँचवाँ अतिचार है। पहले सुलसकी कथामें जो जिनशेखरका वृत्तान्त कहा गया है, उसे ही सलेखनाके विषयमें दृष्टान्त समझना।" इस प्रकार सलेखनाके सम्बन्धमें श्रीशान्तिनाथ जिनेश्वरके कहे हुए धर्मोंको सुनकर, सारी सभाको ऐसा आनन्द हुआ, मानों मन पर अमृत बरस गया।

इसी समय चक्रायुध राजाने खड़े होकर प्रभुकी वन्दना कर, दोनों हाथ जोड़े हुए विनती की,—"हे समस्त संशय-रूपी अन्धकारको नाश करनेमें उत्तम सूर्यके समान और तीनों लोकोंसे वन्दना किये जाते हुए श्रीशान्तिनाथ प्रभु! तुम्हें नमस्कार है। हे प्रभु! मेरी दुष्कर्म-रूपी वेड़ियोंको काट कर तथा राग-द्वेष रूपी शत्रुका नाश कर, मुझे इस संसार-रूपी कारागृहसे मुक्त करो। हे जिनेश! निरन्तर जन्म, जरा और मृत्युकी आगमें जलते हुए इस भवरूपी गृहसे दीक्षा-रूपी करावलम्बन देकर मुझे बाहर निकाल लो।" इस प्रकार श्रीशान्तिनाथसे विनती कर, अत्यन्त वैराग्य प्राप्त हो, चक्रायुध राजाने पैंतीस राजाओंके साथ प्रभुसे दीक्षा ग्रहण कर ली।

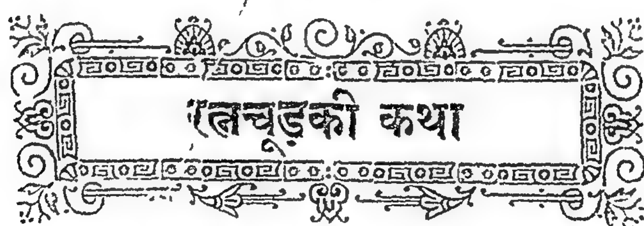
इसके बाद उन्होंने प्रभुसे पूछा,—"हे स्वामिन्! तत्व क्या है?" प्रभुने कहा,—"उत्पत्ति—यह पहला तत्व है।" तब बुद्धिमान् राजाने एकान्तमें जाकर विचार किया,—"ठीक है। समय-समय पर नरक तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिमें जीव उत्पन्न हुआ करते हैं; पर यदि इसी तरह समय-समय पर उत्पन्न हुआ ही करें, तो वे तीनों भुवनमें न समायें, इसलिये उनकी कोई-न-कोई और गति अवश्य होगी।" ऐसा विचार कर उन्होंने फिर भगवान्से पूछा,—"हे भगवन्! तत्त्व क्या है?" प्रभुने दूसरा तत्त्व "विगम" बतलाया। यह सुन, उन्होंने फिर सोचा,—"विगमका अर्थ नाश है। इसका मतलब यही है, कि समय-समय पर जीवोंका नाश हुआ करता है। पर यदि योंही विनाश हुआ करे, तो जगत् ही सूना हो जाये।" ऐसा विचार कर, उन्होंने फिर पूछा,—"हे भगवन्! तत्त्व क्या है?" तब भगवान्ने तीसरातत्त्व "स्थिति" बतलाया। इससे समस्त जगत्का ध्रौव्य-स्वरूप जान, चक्रायुध राजर्षिने इन तीनों पदोंके अनुसार द्वादशाङ्गीकी रचना की। इसी तरह अन्य पैंतीसों मुनियोंने भी भगवान्के मुँहसे त्रिपदी सुन कर द्वादशाङ्गीकी रचना की। इसके बाद वे सब जिनेश्वरके पास गये। उन्हें इस प्रकार बुद्धि-वैभवसे सम्पन्न जान,

भगवान आसनसे उठकर खड़े हो गये। इधर इन्द्र सुगन्धित वस्तुओं-से (वासक्षेपसे) भरा हुआ थाल लिये जिनेन्द्रके पास आ खड़े हुए। इसके बाद भगवान्ने श्रीसंघको उसमेंसे वासक्षेप लेकर दिया। छत्ती-सों मुनियोंने तीन बार भगवान्की प्रदक्षिणा की। इसके बाद उनके मस्तक पर श्रीसघ तथा भगवानने वासक्षेप डाला। प्रभुने गणधरके पद पर स्थापित किया। इसके बाद भगवान्ने बहुतेरे पुरुषों और स्त्रियों को दीक्षा दी, जिससे स्वामीको साधु-साध्वियोंका बहुत बड़ा परि-वार प्राप्त हो गया। जो लोग यतिधर्मका पालन करनेमें असमर्थ थे, उन श्रावक-श्राविकाओंने जिनेन्द्रके निकट श्रावकोंके बारह व्रत ग्रहण किये। इस प्रकार पहले समवसरणमें चार प्रकारके सघ उत्पन्न हुए।

पहली पोरशी पूर्ण होने पर श्रीजिनेश्वर उठ खड़े हुए और दूसरे प्राकारमें बने हुए देवच्छन्दमें विश्राम करने गये। उस समय श्री जिनेन्द्रके पादपीठ पर बैठकर प्रथम गणधर चक्रायुधने दूसरी पोरशीमें सभाके समक्ष व्याख्यान दिया। उस व्याख्यानमें उन्होंने जिन धर्ममें स्थिरताके निमित्त श्रीसंघको पापका नाश करनेवाली अन्तरङ्ग-कथा इस प्रकार कह सुनायी,—

"हे भव्यजीवो! यह मनुष्यलोक नामका क्षेत्र है। इसमें शरीर नामका नगर है। इसमें मोह नामक राजा स्वेच्छा-पूर्वक विलास करता है। इस राजाकी पत्नीका नाम माया है। इनके पुत्रका नाम अनङ्ग है। इस राजाके प्रधान मन्त्रीका नाम लोभ है। सब वीरोंमें शिरोमणि क्रोध नामका महायोधा उस मोह राजाके पासमें रहता है। राग और द्वेष नामके दो अतिरथी योद्धा हैं। मिथ्यात्व नामका माण्ड लीक राजा है। मान नामका बड़ा भारी हाथी इस मोहराजाकी सवारी-में रहता है। इस राजाके इन्द्रिय-रूपी अश्वों पर चढ़नेवाले विषय नामके सेवक हैं। इसी प्रकार उस राजाके बहुत बडी फौज है। उस नगरमें कर्म नामका किसान रहता है। प्राण नामका एक बहुत बड़ा व्यापारी है। मानस नामका तलारक्षक (कोतवाल) है।

एक वार धर्म नामक राजाने मानस नामक नगर-कोतवालको गुरूपदेश-रूपी द्रव्य देकर अपनी ओर मिला लिया और सेना सहित उस नगरमें प्रवेश किया। इस धर्म राजाके ऋजुता नामकी रानी, सन्तोष नामका प्रधान मन्त्री, सम्यक्त्व नामका माण्डलिक राजा, महाव्रत-रूपी सामन्त, अणुव्रत-रूपी पैदल सिपाही, मार्दव नामका गजेन्द्र, उपशम आदि योद्धा और सच्चारित्र नामक रथपर आरूढ़ श्रुत नामका सेनापति है। ऐसे धर्मराजाने मोहराजको जीतकर उस नगरसे निकाल बाहर कर दिया। इसके बाद धर्मराजाने अपने सब सैनिकोंको आज्ञा दी,—"इस नगरमें कोई मोहराजाको ज़रा सी भी जगह न मिलने दे।" धर्मराजाकी ऐसी आज्ञा वर्त्तमान होते हुए भी यदि कदाचित् कोई मोहके वश हो जाये, तो उसे कर्म-परिणति फिरसे रास्तेपर ले आती है। जैसे कि अनीतिपुरमें गये हुए रत्नचूड़ नामक बनियेको यमघण्टा नामकी वेश्याने बुद्धि देकर विपद्से बचाया था।" यह सुन, श्रीसङ्घने प्रथम गणधरसे पूछा,—"वह रत्नचूड़ कौन था? उसकी कथा कह सुनाइये।" तब गणधरने नीचे लिखी कथा कह सुनायी —



रत्नचूड़की कथा

इसी भरत-क्षेत्रमें समुद्रके किनारे धनाढ्य मनुष्योंसे पूर्णताम्रलिप्ति नामकी नगरी है। उस नगरीमें रत्नाकर नामका एक सदाचारी, लक्ष्मीवान् और मर्यादा-पूर्ण सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम सरस्वती था। वह अगण्य पुण्य, लावण्य, नैपुण्य और दाक्षिण्यादि गुणोंसे विभूषित था। एक दिन सरस्वतीने रातके पिछले पहर स्वप्नमें महातेजस्वी और अँधेरेमें उजाला करने वाला एक रत्न अपने हाथमें आया हुआ देखा। सोकर उठनेपर उसने यह बात अपने पतिसे कही। स्त्रीकी यह बात सुन, पतिने कहा,—"प्रिये! इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें पुत्ररत्नकी

और वे सींगसे एक दुसरेको चोट करते हुए मर कर क्रोधके मारे लाल-लाल नेत्रवाले मुर्गेके रूपमें उत्पन्न हुए। इसलिये, बेटा! इन दोनोंमेंसे कोई हारनेवाला नहीं हैं।"

यह सुन, मेघरथकुमारने भी अपने अवधिज्ञानसे इस बातकी यथार्थता जान ली और पितासे कहा,—"पिताजी! ये दोनों मुर्गे परस्पर एक ईर्ष्या रखते हैं, यही नहीं है, इन पर दो विद्याधरोंकी छाया भी है। इसका कारण मैं आपको बतलाता हूँ, सुनिये:—

"इसी भरतक्षेत्रमें वैताढ्य पर्वतकी उत्तर-श्रेणीमें सुवर्णनाभ नामका नगर हैं। उसमें गरुडवेग नामक विद्याधरोंका राजा रहता था। उसके चन्द्रतिलक और सूरतिलक नामके दो पुत्र थे। एक दिन उन दोनोंने आकाशगामिनी विद्याके सहारे शाश्वती जिनप्रतिमाओंकी वन्दना करनेके निमित्त मेरु पर्वतके शिखरकी सैर की। वहाँ सोनेकी शिलापर बैठे हुए सागरचन्द्र नामक चारण श्रमण मुनीश्वरको देख, दोनों राजकुमारोंने बड़े हर्षके साथ उनकी वन्दना की। इसके बाद उन्होंने मुनिसे अपने पूर्व भवका वृत्तान्त पूछा। मुनिने ज्ञानसे सब हाल मालूम कर कहा,—

"धातकीखण्ड नामक द्वीपके ऐरवत-क्षेत्रमें वज्रपुर नामक एक नगर है। वहाँ अभयघोष नामके एक राजा रहते थे। उनकी रानीका नाम सुवर्ण-तिलका था। उन्हींके गर्भसे उत्पन्न राजाके जय और विजय नामके दो पुत्र थे। उन्हीं दिनों सुवर्ण नगरके स्वामी शंख नामक राजाकी रानी पृथ्वीदेवीके गर्भसे उत्पन्न पृथ्वीसेना नामकी एक सुन्दरी राजकुमारी थी। उसे शंखराजाने राजा अभयघोषके पास स्वयंवराके रूपमें भेजा। राजा अभयघोषने बड़ी खुशीसे उसके साथ विवाह कर लिया। एक बार वसन्त ऋतुमें राजा, फूले-फूले फूलोंकी बाहरसे मनोहर दिखाई देनेवाले उद्यानमें रानीके साथ क्रीड़ा करनेको गये। वहाँ रानी पृथ्वीसेनाने इधर-उधर घूमते-फिरते दान्तमदन नामक एक मुनीको देखा। उन्हींसे धर्म-देशना श्रवण कर, प्रतिबोध प्राप्त कर,

राजाकी आज्ञा लेकर रानीने प्रवृज्या अंगीकार कर ली। इसके वाद उद्यानकी शोभा देखते हुए राजा नगरमें आये।"

"एक दिन छद्मस्थ वेशमें विहार करते हुए अनन्त नामक तीर्थङ्कर राजाके घर आये। उस समय राजाने उनको प्रासुक अन्न-पान (वहराये) दिये,देवोंने पाँच दिव्य प्रकट किये। इसके वादही तीर्थङ्करको केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ। तव राजा अभयघोपने उनके पास जाकर अपने दोनों पुत्रके साथ ही प्रव्रज्या अंगीकार कर ली। इसके वाद अभयघोप राजर्षिने वीस स्थानकोंकी आराधना कर तीर्थङ्कर नाम-कर्म उपार्जन किया। अनुक्रमसे दोनों पुत्रोंके साथ कालधर्मको प्राप्त होकर वे अच्युत देवलोकमें जाकर देव हुए। वहाँसे च्युत होकर अभय घोष राजाका जीव तो हेमाँगद राजाके पुत्र घनरथके रूपमें प्रकट हुआ और जय-विजयके जीव अच्युत कल्पसे च्युत होकर तुम दोनोंके शरीरमें आ टिके हैं। " पिताजी ! मुनिने अब इस प्रकार चन्द्रतिलक और सूरतिलकको उनके पूर्व भवकी कथा सुनायी, तव वे दोनों विद्याधर आपके दर्शनोंके लिये बड़े उत्सुक हुए और यहाँ आ पहुँचे। कुछ देर तक तो वे दोनों विद्याधर-कुमार इन मुर्गोंकी लड़ाईका तमाशा देखा किये,इसके वाद वे अपनी विद्याके प्रभावसे इन मुर्गोंके अन्दर प्रविष्ट हो, अपनेको छिपाये हुए, यहीं मौजूद हैं।"

जव मेघरथने ऐसा कहा, तव वे दोनों विद्याधर झटपट उन मुर्गों के शरीरसे बाहर निकल आये और घनरथ राजाके पैरों पर गिर पड़े। इसके वाद अपने पूर्व जन्मके पिताको प्रणाम कर, वे दोनों अपने स्थान को चले गये और वैराग्य उत्पन्न होनेके कारण संयम ग्रहण कर, दुष्कर तप करते हुए मोक्षको प्राप्त हुए।

इधर वे दोनों मुर्गे, अपने पूर्व भवोंका हाल सुन, अपने पापोंके लिये मन-ही-मन अपनेको धिक्कार देते हुए, राजाके पैरोंपर गिर पड़े और अपनी भाषामें वोल उठे,—"प्रभो ! अब हमलोग क्या करें ? " तव राजाने उन्हें समकित-सहित अहिंसाधर्मका उपदेश किया। उन्होंने

सच्चे दिलसे अहिंसा-धर्म स्वीकार कर लिया और उसीका पालन करते हुए मरकर भूताटवीमें जाकर ताम्रचूल और स्वर्णचूल नामक भूतदेव हुए। वहाँसे वे विमानपर चढ़कर अपने उपकार करनेवाले घनरथ राजाके पास आ, उनकी वन्दना और स्तुति कर, उनकी आज्ञा पाकर अपने स्थानको चले गये।

घनरथ राजाने बहुत दिनोंतक सुख-पूर्वक राजलक्ष्मीका भोग किया। एक दिन लोकान्तिक देवोंने आकर उनसे कहा,—"हे स्वामी! अब धर्म-तीर्थका प्रवर्त्तन करो।" यह सुन, अपने ज्ञानसे दीक्षाका समय आया जान, सांवत्सरिक दान कर, पुत्र मेघरथको राज्य पर बैठाकर उन्होंने दीक्षा ले ली और घाती कर्मोंका क्षय कर, केवल ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद भव्य जीवोंको प्रतिबोध देते हुए वे पृथ्वी-मण्डल पर विचरण करने लगे।

एक दिन राजा मेघरथ, अपने छोटे भाई दृढरथके साथ, अपनी दोनों स्त्रियोंको सङ्ग लिये हुए, देवरमण नामक उद्यानमें आये। वहाँ वे लोग एक अशोक-वृक्षके नीचे बैठे हुए थे। इतनेमें बहुतसे भूत उनके पास आकर नाटक करने लगे। उन्होंने बहुतसे शास्त्र धारण कर, चर्मरूपी वस्त्र धारण किये हुए, सारे शरीरकी रक्षाके लिये झूल पहन लिया। इसके बाद उन्होंने बड़ा ही अनोखा नृत्य किया। उनका नृत्य हो ही रहा था, कि किंकिणी और ध्वजाओंसे सुशोभित एक विमान आस्मानसे नीचे उतर कर मेघरथ राजाके पास आया। विमानमें सुन्दर स्त्री-पुरुषकी एक जोड़ीको बैठे देख, रानीने राजासे पूछा,— "स्वामी ये कौन हैं?" राजाने कहा,—

"देवी! वैताल-पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें अलका नामकी एक नगरी है। वहाँके विद्युद्रथ नामक विद्याधरोंके राजाका यह पुत्र है। इसका नाम सिंहरथ है। यह स्त्री इसीकी पत्नी वेगवती है। यह खेचरेन्द्र अपनी स्त्रीके साथ धातकी खण्ड-द्वीपमें जिनेश्वरको वन्दना करने गया हुआ था। वहाँसे यहाँ आतेही-आते अकस्मात् इसका

विमान स्खलित हो गया। यह देख, इसने सोचा, कि यह राजा कोई ऐसा-वैसा नहीं है; क्योंकि इसीके प्रभावसे मेरा विमान फिसल पड़ा है। यही विचार कर इसने मेरे पास भूतोंको भेजकर नृत्य करवाया है।" यह सुन, रानीने फिर पूछा,—"स्वामी! इसने पूर्व भवमें कौन सा पुण्य किया था, जिससे इसने इतनी ऋद्धि पायी है?" यह सुन, राजाने कहा,—प्रिये! इसके पूर्व भवका वृत्तान्त सुनो—

"पहले ज़मानेमें सिन्धुपुर नामक नगरमें राजगुप्त नामक एक कुल-पुत्र रहता था। उसकी स्त्रीका नाम शंखिका था। वे दोनों दारिद्र्‌ता के कारण बड़ा दुःख पा रहे थे, इसलिये औरोंके घर सेवा-टहल करके अपनी जीविका उपार्जन करते थे। एक दिन दोनों पति-पत्नी लकड़ी लानेके लिये जङ्गलमें गये हुए थे। वहाँ एक साधुको देख, उन्होंने बड़ी भक्तिसे उन्हें प्रणाम किया। साधुने उन्हें जिनधर्मका उपदेश देते हुए कहा:—"यह जैनधर्म विधिपूर्वक पालन करनेसे कल्पवृक्ष और चिन्ता-मणिकी भाँति सारा मनोरथ पूरा करता है। इसके बाद मुनिने उनके पूर्व भवके पापोंका क्षय करनेके लिये उन्हें बीस-कल्याणक नामक तप का उपदेश किया। उसकी विधि उन्होंने इस प्रकार बतलायी,—"पहले एक 'अट्ठम' करके, इसके बाद अलग-अलग ३२ उपवास करना।" उन्हों ने मुनिके बतलाये अनुसार इस तपकी आराधना की। तपके अन्तमें, पारणाके दिन, उनके घर एक मुनि आये। उन्हें देखते ही उन्होंने उनको प्रणाम कर, शुद्ध अन्न और जल लाकर उनके सामने रखा। इसके कुछ दिन बाद दम्पतिने चारित्र ग्रहण कर लिया। पुरुषने तो आचाम्ल-वर्द्धमान नामक तप किया और क्रमशः आयु पूरी होने पर मृत्युको प्राप्त हो, ब्रह्मदेवलोकमें जाकर देव हो गया और वहींसे आकर सिंह-रथ नामक विद्याधर हुआ है। और उसीकी स्त्री शंखिका और तरह की तपस्याएं कर पाँचवें देवलोकमें जाकर देवी हुई और आयुष्य पूर्ण होनेसे वहाँसे चलकर यही वेगवती नामकी सिंहरथकी पत्नी हुई है।"

अपने पूर्व भवका यह वृत्तान्त श्रवण कर, सिंहरथको प्रतिबोध प्राप्त

हुआ और उसने अपने घर जा पुत्रको राज्य पर बैठा, प्रिया सहित श्री घनरथ जिनेश्वरके पास आकर दीक्षा ले ली। इसके बाद दुष्कर तप कर निर्मल केवल-ज्ञान उपार्जन कर, कर्मरूपी मलका सर्वथा नाश कर, सिंहरथ मुनिने मोक्ष प्राप्त कर लिया।

इधर मेघरथ राजा उद्यानसे लौटकर रानीके साथ-साथ घर आये। एक दिन वे सर्वारम्भ-परित्याग-पूर्वक, अलङ्कार आदिको दूर कर, पौषध व्रत ग्रहण किये हुए पौषधशालामें योगासन मारे बैठे हुए राजाओं को धर्मदेशना कर रहे थे। इसी समय कहींसे उडता हुआ एक कबूतर जिसका शरीर कांप रहा था और जिसकी आंखोंसे भय और चंचलता टपक रहीथी, मनुष्यकीसी वाणीमें यह कहता हुआ, कि मैं आपकी शरणमें हूँ, राजाकी गोदमें आ गिरा। उस समय उस भयभीत पक्षी को देख, दयार्द्र होकर राजा मेघरथने कहा,— "भाई अब तुम मेरी शरणमें आ गये, तब तुम्हें कोई डर नहीं है।" राजाकी यह बात सुन, वह पक्षी निर्भय हो गया। इतनेमें उसके पीछे-पीछे एक महाभयंकर और निर्दय बाज वहाँ आ पहुँचा और राजासे बोला,—"महाराज! सुनिये। आपकी गोदमें जो कबूतर पडा हैं, वह मेरा आहार है, इस लिये उसे मेरे हवाले कीजिये— मुझे बेतरह भूख लग रही है।" यह सुन, राजाने कहा,—"भाई! मैं इस अपनी शरणमें आये हुए पक्षीको तुम्हें देना उचित नहीं समझता। क्योंकि पण्डितोंने कहा है, कि—

"शरण्य शरणायातो-ऽहेर्मणिश्च सटा हरे ।
गृह्यन्ते जीवता नैते-ऽमीषा सत्या उरस्तथा ॥ १ ॥"

अर्थात् —"*शूरवीरकी शरणमें आये हुए प्राणीको दूसरा उसी प्रकार जीते-जी नहीं ग्रहण कर सकता, जैसे शरीरमें प्राण रहते, कोइ सर्पकी मणि, सिंहका केसर और सती स्त्रीका हृदय नहीं पा सकता।*"

"साथ ही हे पक्षी! तुम स्वय ही इस बातका विचार करो, कि औरोंकी जान लेकर अपनी जान बचाना, कितना बडा पुण्य-नाशक है। यह प्राणीको स्वर्गमें जानेसे रोकता है और नरकका कारण है। इस

लिये तुम्हें भी इस कामसे हाथ खींच लेना चाहिये । यदि कोई तुम्हारा एक ही पर नोच ले, तो तुम्हें कितना कष्ट होगा ? वैसेही औरोंको भी पीड़ा होती है, इसका भी तो विचार करो । और देखो, इस कबूतरका माँस खानेसे तुम्हें क्षण भरकीही तृप्ति होगी; पर यह विचारा तो सदाके लिये जान-जहानसे हाथ धो बैठेगा? सोच देखो, पंचेंद्रिय जीवों का वध करनेसे दुष्टात्मा प्राणियोंको नरकमें जाना पड़ता है । कहा है, कि—

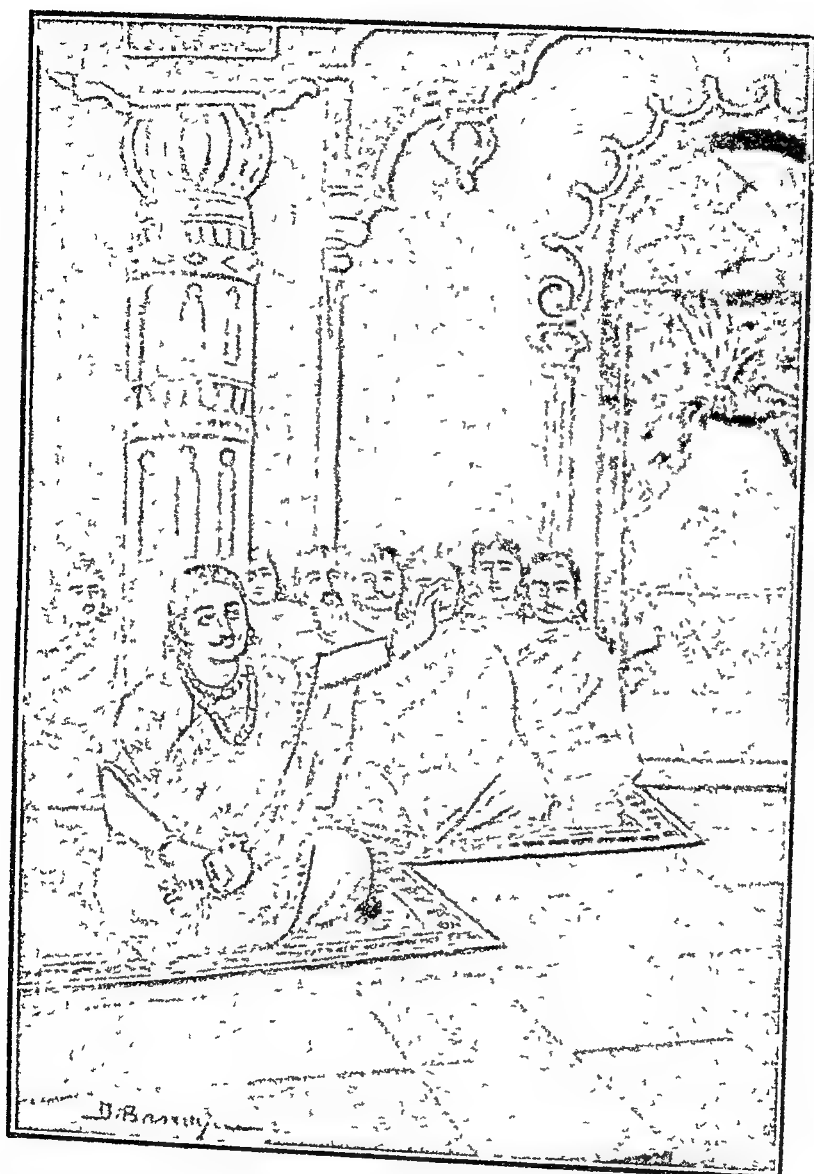
> "श्रूयते जीवहिंसावान्, निषादो नरकं गतः ।
> दयादिगुणा संयुक्ता, वानरी त्रिदिवं गता ॥ १ ॥"

अर्थात्— "शास्त्रमें कथा आयी है, कि जीवहिंसा करनेवाला निषाद (व्याध) नरकमें गया और दयादि गुणोंसे युक्त होनेके कारण वानरी (बँदरी) स्वर्गमें गयी ।"

यह सुन, उस बाज़ने मेघरथ राजासे पूछा,—"हे राजन् ! उस निषाद और वानरीकी कथा मुझे कह सुनाइये ।" इसपर राजाने कहा,—

निषाद-वानरीकी कहानी

इस पृथ्वीपर सैकड़ों वन्दरोंसे भरी हुई 'हरिकान्ता' नामकी एक नगरी है। उस पुरीमें वन्दरोंका पालन-पोषण करनेमें तत्पर 'हरिपाल' नामके राजा रहते थे। उसी नगरीमें एक निषाद रहता था, जो बड़ा ही क्रूर, यमदूत सा निर्दय और कृतघ्नोंका सिरमौर था। वह पापी सदैव वनमें जाकर वराह, शूकर और हरिण आदि अनेक जीवों का वध किया करता था। उसी पुरीके पास एक वनमें राजाकी कृपासे बहुतसे वन्दर रहा करते थे। उनमें हरिप्रिया नामकी एक वन्दरी (वानरी) भी रहती थी, जो कभी माँस नहीं खाती और दया-दाक्षिण्य आदि गुणोंसे सुशोभित थी। एक दिन वही निषाद, हाथमें



भाई! मैं इस अपनी शरणमें आये हुए पक्षीको तुम्हें देना उचित नहीं समझता। (पृष्ठ २०५)

खड्ग लिये, मृगयाके निमित्त उसी वनमें आया। इसी समय उसने अपने सामनेसे एक भयंकर बाघको आते देखा। उसे देखते ही वह डर गया और पासके ही एक पेड़पर चढ़ गया। उसपर एक क्रूर स्वभाव वाली बन्दरी मुह फाडे बैठी हुई थी। उसे देख, वह फिर डर गया। उसे बाघके डरसे भागकर आया हुआ जान, बन्दरीने अपना मुख प्रसन्नता-पूर्ण बना लिया। यह देख, निषादके जी-में-जी आया और वह दिलजमईके साथ उसके पास बैठ रहा। बँदरी उसे भाईसा मानकर उसके सिरके केश सहलाने लगी। वह भी उसकी गोदमें सिर रखकर सो गया। इसी समय वह बाघ उस वृक्षके नीचे आया और बन्दरीकी गोदमें सिर रखकर सोये हुए उस मनुष्यको देखकर बन्दरीसे कहने लगा,—"अरी बावली! इस ससारमें कोई किसीके किये हुए उपकारको नहीं मानता और मनुष्य तो खासकर ऐसे होते हैं। इस विषयमें मैं तुम्हें एक दृष्टात सुनाता हूँ, सुनो,—

"किसी गाँवमें शिवस्वामी नामका एक ब्राह्मण रहता था। एक बार वह तीर्थयात्रा करनेके इरादेसे अपने घरसे बाहर हुआ और देश-देशान्तरोंमें घूमता हुआ एक बडे भारी जङ्गलमें आ पहुँचा। वहाँ प्याससे छटपटाता हुआ, वह पानीकी खोजमें इधर-उधर घूमता फिरता एक कुएके पास आ पहुँचा। यह देख, उसने घासकी रस्सी बट-कर उसीके सहारे कलसा (घड़ा) कुएमें लटकाया। उसी समय उस रस्सीके सहारे उस कुएँमेंसे एक बन्दर बाहर निकला। यह देख उस ब्राह्मणने सोचा, कि चलो, मेरी मिहनत सफल हो गयी। यही सोचकर उसने फिर रस्सीमें घडा बाँधकर नीचे लटकाया। इस बार कुएँमेंसे एक बाघ और एक साँप निकल पडे। उन्होंने उस ब्राह्मण को अपना प्राणदाता समझकर प्रणाम किया। इसके बाद उन तीनोंमें से वानरने, जो जाति स्मरण-युक्त हुआ था, पृथ्वीपर अक्षरोंमें लिखकर ब्राह्मणको बतलाया, कि—हे द्विजदेव! मै मथुरा-नगरीके पासका रहनेवाला हूँ। तुम कभी उधर मेरे पास आना, तो मैं तुम्हारी

ख़ातिर करूँगा। लेकिन, देखना, अभी इस कुएँमें एक आदमी और पड़ा है, उसे तुम कदापि बाहर नहीं निकालना, क्योंकि वह बड़ा भारी कृतघ्न है—किसीका अहसान नहीं मानता।" यह कह, वे तीनों अपने-अपने स्थानको चले गये।

"इसके बाद उस ब्राह्मणने सोचा,—"उस बेचारे मनुष्यको ही क्यों कुएँमें पड़ा रहने दूँ? यदि अपनेसे हो सके तो सभीकी भलाई करनी चाहिये। यहीतो मनुष्यके घर जन्म लेनेका फल है!" ऐसा विचार कर, उस विप्रने फिर कुएँमें डोरी डाली और उस मनुष्यको बाहर निकाला उसे देख, ब्राह्मणने पूछा,—'भाई! तुम कौन हो और कहाँके रहने-वाले हो?' उसने कहा,—"मैं मथुराका रहनेवाला—सुनार हुँ। एक ज़रूरी कामके लिये इधर आ पहुँचा था और प्यासके मारे व्याकुल हो कर इस कुएँमें गिर गया था। वहाँ कुएँमें उगे हुए एक वृक्षकी शाखा पकड़ कर टिका रह गया। इसके बाद उसमें एक बन्दर, एक बाघ और एक साँप भी आ गिरे। वहाँ सबपर समान विपद् थी, इसीलिये किसीका किसीसे वैर विरोध नहीं रह गया था। हे उपकारी! तुमने हम सबके प्राण बचाये हैं, इसलिये एकबार मथुरा नगरीमें अवश्य अवश्य आओ।' यह कह, वह भी अपने स्थानपर चला गया. वह ब्राह्मण पृथ्वी-मण्डल पर घूमता-घामता तीर्थ यात्रा करता हुआ किसी समय मथुरा-नगरीमें आ पहुँचा। वहाँ जंगलमें रहनेवाले उस बन्दरने उसे देख लिया और अपने उपकारीको पहचान कर बड़ी ख़ुशीसे अच्छे-अच्छे फल लाकर उसे दिये और इस प्रकार उसकी ख़ातिरदारी की। इसके बाद उस बाघने भी उसे देखा और पहचान कर अपने मनमें विचार किया,—'इस महापुरुषने मुझे मरनेसे बचाया था, इसलिये उस उपकारका इसे कुछ-न-कुछ बदला ज़रूर देना चाहिये।' यह सोचकर वह बाग़में घुस पड़ा और वहाँ बेफ़िक्रीके साथ खेलते हुए राजकुमारको मारकर उसके तमाम क़ीमती गहने उतार कर ले आया, वह सब उस ब्राह्मणके हवाले कर उसे प्रणाम किया। ब्राह्मणने

उसे दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया और मथुरा-नगरीके अन्दर आ, उस सुनारका घर पूछते पूछते वहाँ आ पहुँचा। उस समय उसे दूरसे आते देख, वह सुनार कुछ देरतक तो उसकी ओर देखता रहा, पर फिर तुरत ही नीची नजर किये हुए अपना काम करने लगा। ब्राह्मण ने उसके पास आकर पूछा,— "क्यों साहुजी! क्या तुम मुझे पहचानते हो?" उसने कहा,— "मैं तुम्हें एकदम नहीं पहचानता।" यह सुन, उस ब्राह्मणने कहा,— "अरे भाई! मैं वही ब्राह्मण हूँ, जिसने तुम्हें उस जंगलमें कुएँसे बाहर निकाला था। आज मैं तुम्हारे घर अतिथि होकर आया हूँ।" यह सुन, उस सुनारने बैठेही बैठे जरा सिर हिला कर उसे प्रणाम किया और बैठनेके लिये आसन देते हुए कहा,— "विप्रजी! कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?" इस पर उस ब्राह्मण ने बाघके दिये हुए गहनोंको उसे दिखा कर कहा,— "भाई मेरे एक यजमानने ये गहने मुझे दिये हैं। तुम्हीं इनका ठीक-ठीक दाम लगा सकते हो। इसलिये तुम इन्हें ले लो और मुझे इनका उचित मूल्य दे दो।" यह कह, गहनोंको उसीके पास रखकर वह ब्राह्मण नदीमें स्नान करने चला गया। इसी समय उस सुनारने बस्तीमें यह ड्योडी फिरती हुई सुनी, कि—"आज राजकुमारको मारकर कोई उनके सारे गहने चुरा ले गया है। जो कोई उस आदमीको कहीं देख पाये, वह राजाको उसका पता दे, क्योंकि राजा उस द्रोहीको प्राण दण्ड दिये बिना न रहेंगे।" यह सुनकर, उस सुनारके मनमें शङ्का हुई। उसने सोचा,—"ये गहने तो मेरे ही गढे हुए हैं। जरूर इसी ब्राह्मणने गहनों के लोभसे राजकुमारको मार डाला है और उनके गहने लिये हुए मेरे पास आ पहुँचा है, पर यह न तो मेरा कोई भाई है, न नाता-गोता, फिर मैं इस के लिये अपनी जानको क्यों बलामें फँसाऊँ?" ऐसा विचार कर उसने राजाके द्वार पर जा, नगाडे पर चोट दी और फिर उनके पास पहुँच कर, गहनोंको उनके हवाले करते हुए कहा,— "महाराज! इन गहनों का चोर एक ब्राह्मण है।" यह सुन, राजाने अपने सिपाहियोंको भेज

कर उस ब्राह्मणको ख़ूब मज़बूतीसे बँधवा मँगवाया और विद्वानोंको बुलाकर पूछा,—"हे पण्डितो ! इस मामलेमें मुझे क्या करना चाहिये ?" पण्डितोंने कहा,—"महाराज ! भलेही कोई जातिका ब्राह्मण और वेद-वेदाङ्गका जाननेवाला हो ; पर उसने यदि मनुष्यकी हत्याकी हो, तो राजाको अवश्य उसका वध करना चाहिये। इससे राजाको पाप नहीं लग सकता।" पण्डितोंकी यह बात सुन, राजाने अपने सेवकोंको उसका वध करनेका हुक्म दे दिया। राजसेवक उसे गधेपर चढ़ाये, उसके सारे शरीरमें रक्त चन्दनका लेप किये हुए, उसे वध्य-भूमिकी ओर ले चले। उस समय वध्यस्थानको जाते हुए ब्राह्मणने अपने मनमें सोचा,—"ओह ! मेरे पूर्व कर्मोंके दोषसे यह मेरी कैसी अवस्था हुई ? ओह ! उस दुष्ट सुनारने मेरे साथ कैसी कृतघ्नता की ? इधर उस वानर और बाघने मेरे साथ कैसी कृतज्ञता प्रकट की ?" ऐसा विचार करने और उस बन्दरकी बात याद आ जानेसे उस ब्राह्मणके मुँहसे अनजानमें ये दो श्लोक निकल पड़े:—

> व्याघ्रवानरसर्पाणां, यन्मया न कृतं वचः।
> तेनाहं दुर्विनीतेन, कलादेन विनाशितः ॥ १ ॥
> वेश्याज्ञाः ठक्कुराश्चौरा, नीरमार्जारमर्कटाः।
> जातवेदाः कलादश्च, न विश्वास्या इमे क्वचित् ॥ २ ॥

अर्थात्—"बाघ, वानर और साँपकी बात मैंने नहीं मानी, इसी लिये मैं इस दुष्ट सुनारके करते मारा गया ! सच है- वेश्या ? इन्द्रिय, ठाकुर, चोर, जल, बिल्ली, बन्दर, आग और सुनार—इनका कभी विश्वास करना ठीक नहीं है।"

वह ब्राह्मण बार-बार इन दोनों श्लोकोंको बोल रहा था। इसलिये उसकी आवाज़से उसे पहचान कर उसी जगह रहनेवाले उस साँपने (जिसे ब्राह्मणने कुएँसे बाहर निकाला था) अपने मनमें विचार किया, "ओह! उस दिन जिस ब्राह्मणने मुझे कुएँसे बाहर निकाला था, वही महात्मा आज सङ्कटमें पड़े हुए मालूम होते हैं। शास्त्रमें कहा हुआ है—

उपकारिणि विश्वब्धे, साधुजने य समाचरति पापम् ।
स जनमसत्यसन्ध, भगवति वसुधे ! कथं वहसि ? ॥ १ ॥

अर्थात्—' उपकार करनेवाले और विश्वासी सज्जनोंके साथ जो पापाचरण करते हैं , उन असत्य प्रतिज्ञावाले पुरुषोंका बोझ, हे पृथ्वी ! तू क्यों ढोती है ?''

यही विचार कर उस साँपने फिर अपने मनमें सोचा,— " इस समय इस ब्राह्मणके प्राणोंपर आ बनी है, इसलिये मैं इसके उपकारका कुछ बदला दूँ, तो इसके ऋणसे छुटकारा पा जाऊँगा । " ऐसा सोच उसके उपकारोंको याद करता हुआ वह साँप बगीचेमें आया और वहाँ सखियोंके साथ खेलती हुई राजकुमारीको देख, लताओंके गुच्छेके अन्दरसे उसे काट खाया । तुरतही वह राजकुमारी व्याकुल होकर छटपटाती हुई जमीन पर गिरकर बेहोश हो गयी । यह देख, सखियोंने जाकर राजाको खबर दी । इस खबरको पातेही राजा अत्यन्त शोकातुर और दु:खसे अधीर होकर विलाप करने लगे,— "हाय ! यह क्या हुआ ! अभी तो एकही दु:खके समुद्रसे पार नहीं हुआ कि इतनेमें दूसरा आ पहुँचा ! अब [क्या करूँ ! "

ऐसा विचारकर, राजाने तत्काल अनेक मन्त्रवादियोंको बुलाया । वे उसकी लड़कीकी झाड़-फूँक करने लगे, पर किसीका कुछ असर नहीं हुआ । तब एक मन्त्र जाननेवालेने राजासे कहा,—"हे राजा ! मुझे निर्मल ज्ञान प्राप्त है । उसीके बलपर मैं यह समझ रहा हूँ, कि आपने जिस ब्राह्मणके वधकी आज्ञा दी है, वह बिलकुल निर्दोष है। उसका सच्चा-सच्चा हाल यों है— किसी समय इस दयालु ब्राह्मणने जङ्गलके कूएँमेंसे साँप, बानर और बाघको बाहर निकाला । इसके बाद इसने एक सुनारको भी बाहर निकाला । उस समय साँप वगैरहने इस ब्राह्मणसे कहा था, कि तुमने हम लोगोंका बड़ा उपकार किया है, इसलिये किसी दिन मथुरामें आना । यह कह, वे अपने-अपने स्थानको चले गये और यह ब्राह्मण भी सब तीर्थोंसे घूमता-घामता इस बार मथुरामें आ

पहुचा । आनेपर उस बन्दरने तो इसे उत्तमोत्तम फल देकर सम्मानित किया और बाघने आपके पुत्रको मारकर उसके कुल गहने इसे लाकर दिये । उन्हें लिये हुए यह सीधा-सादा ब्राह्मण उस सुनारसे मिलने गया और उसे बाघके दिये हुए गहने दिखाये । गहनोंको देख, उन्हें पहचान कर, उस कृतघ्न सुनारने आपको ख़बर दे दी । इसी पर आपने ब्राह्मणको चोर और हत्यारा समझकर मार डालनेका हुक्म दे दिया । दैवयोगसे जल्लादोंको, वध करनेके लिये उस ब्राह्मणको ले जाते देखकर, पूर्वोक्त सर्पने उसे पहचाना और उसकी भलाई की बात याद कर, उसे छुड़ानेके इरादेसे लताके अन्दरसे आपकी पुत्रीको डँस दिया । इसलिये, हे महाराज ! यदि आप उस ब्राह्मणको छोड़ दें, तो आपकी लड़की अवश्य ही जी जायेगी ।"

यह सुन, राजाने कहा—"अच्छा, मुझे ऐसी कोई बात बतलाओ, जिससे मुझे इस बातकी सचाई का भरोसा हो ।" यह सुन, उस मन्त्रवादीने उस सर्पको राजपुत्रीके शरीरपर उतारा । उसने मन्त्रवादीकी कही हुई सब बातें स्वीकार कर लीं, जिससे राजाको पूरी दिल जमई हो गयी और उन्होंने उस ब्राह्मणको छुटकारा दे दिया । उसे छूटते देख, साँपने राजकुमारीके डंकपरका विष चूस कर खींच लिया, जिससे वह तुरत भली चङ्गी हो गयी । इसके बाद मन्त्रवादीने उस ब्राह्मणसे कहा,—हे विप्र ! इसी साँपने आपकी जान बचा दी ।" यह सुन, उस ब्राह्मणने कहा,—"अहा ! इस संसारके प्राणियोंकी गति कैसी विचित्र है, ज़रा देखिये तो सही—जो बड़े ही क्रूर प्राणी कहे जाते हैं, उन्होंने तो कृतज्ञता दिखलायी और जो क्रूर नहीं कहा जाता, उसीनें हर दर्जे की कृतघ्नता—अहसानफ़रामोशी—की ।" यह कह, उस ब्राह्मणने फिर कहा,—

"दो पुरिसे धरउ धरा, अहवा दोहिं पि धारिया धरणी ।
उवयारे जस्स मई, उवयारं जो न विम्हरई ॥ १ ॥

अर्थात् "जिसकी मति उपकारमें होती है—जो उपकार करना

चाहता है—और जो उपकारको नहीं भूलता, या तो इन्हीं दोनों पुरुषोंको पृथ्वी धारण करती है; अथवा ये ही दो पुरुष पृथ्वीको धारण किये हुए हैं।"

"यह सुनकर, राजाने उस ब्राह्मणसे उसका कुल हाल पूछा, जिसके उत्तरमें उसने आदिसे अन्ततक अपनी सारी रामकहानी कह सुनायी। इससे सन्तुष्ट होकर राजाने उस शिवस्वामी ब्राह्मणको बड़े आदरके साथ एक देशका स्वामी बना दिया। इसके बाद ही उस ब्राह्मणने अपने देशमें आकर नागकी पूजा करनेके लिये नागपञ्चमी व्रत चलाया।

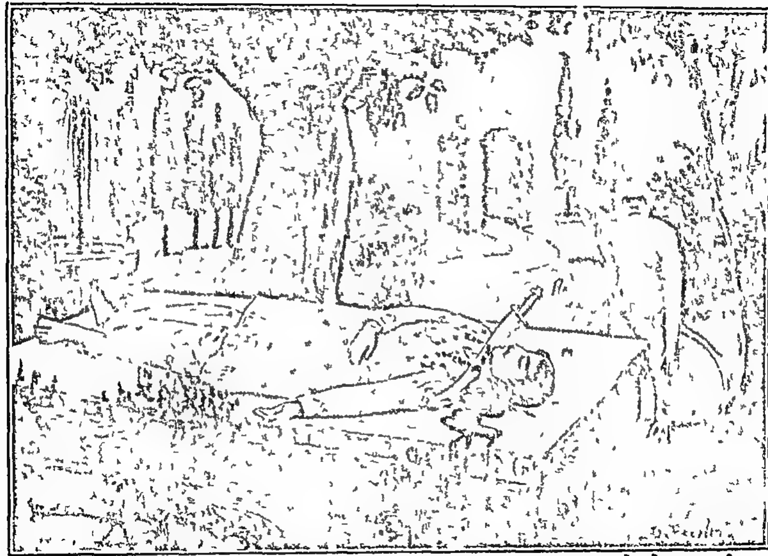
यह कहानी-सुनाकर उस बाघने उस बँदरीसे कहा,—"हे वानरी! जैसे उस ब्राह्मणने सुनारका विश्वास कर धोखा खाया और विपत्तिमें पड़ा, वैसे ही तू भी इसका विश्वास न कर, नहीं तो यह भी तेरी वैसेही दुर्दशा करेगा। इसलिये, ला—इसे मेरे हवाले कर – मैं झट-पट चट कर जाऊँ।" बाघके इतना सब कुछ कहने पर भी उस बँदरीने उसे नहीं छोड़ा। तब वह बाघ उसी वृक्षके नीचे बैठकर विचार करने लगा,——"ओह! यह बँदरी भी तो अपनी धुनकी बड़ी पक्की है।"

इसके बाद जब उस निषादकी नींद टूटी, तब उसकी गोदमें सिर रखकर वह वानरी भी सो रही। उसको सोते देख, उस बाघने पास आकर उस निषादसे कहा,—"देखो, भाई! तुम इस बँदरी का विश्वास न करो। यदि तुम अपना भला चाहते हो, तो मुझ सात दिनके भूखे हुएको यह बँदरी दे डालो और तुम सही-सलामत पुण्यात्मा बने रहो, नहीं तो सच जानना, सदेह घर नहीं जाने पाओगे। और क्या तुमने यह नहीं सुना है, कि पहले ज़मानेमें एक बन्दरने ही एक राजाका नाश कर दिया था?" यह सुन निषादने कहा,—"हे बाघ! तुम मुझे वह कथा सुनाओ।" तब बाघने यह कथा सुनायी,—

"पूर्वकालमें नागपुर नामक नगरमें पायक नामका एक बड़ी समृद्धि-वाला राजा रहता था। एक दिन अश्वक्रीड़ा करते हुए वे राजा एक उलटी सीख पाये हुए घोड़े द्वारा जबरदस्ती खिंचे हुए एक बड़े भारी

जङ्गलमें पहुँच गये। उस वनमें भूखे-प्यासे और अकेले घूमते हुए राजाको एक बन्दर मिल गया। उसने राजाको खूब मीठे फल लाकर दिये और एकनिर्मल जलसे भरा हुआ सरोवर भी उन्हे दिखला दिया। राजाने वही फल खा, पानी पी, स्वस्थ होकर सुखी मन एक वृक्षके नीचे छायामें डेरा डाल दिया। इतनेमें उनकी तलाशमें पीछे-पीछे चले आने वाले उनके सभी सैनिक वहाँ आ पहुँचे। इसके बाद जब राजा उन सब सैनिकोंके साथ अपने नगरकी ओर चले, तब उन्होंने उस बन्दरको भी साथ ले लिया और उसे लिये हुए अपने नगरमें आये। वहाँ पहुँचकर, उस बन्दर पर बड़े प्रसन्न रहनेके कारण उसे सदा मिठाई और अच्छे-अच्छे पकवान खिलाने लगे तथा राजाकी आज्ञासे वह अपनी इच्छाके अनुसार आम और केले आदि फल भी खानेको पाने लगा। उस बन्दरके उपकारको याद कर, राजा उसे सदा अपने पास ही रखने लगे। एक दिन बसन्तऋतुमें राजा बगीचेमें जाकर हिंडोला झूलने, जलक्रीड़ा करने और फूल चुनने आदिकी क्रीड़ाएँ करते हुए थक गये और वहीं सो रहे। अपनी शरीर-रक्षाका भार उन्होंने उसी बन्दरको सौंपा। इतनेमें राजाके मुँहके पास एक भौंरा मँड़राने लगा। यह देख, स्वामी पर भक्ति रखनेवाले उस मूर्ख बन्दरने उस भौंरेको तलवारसे मारना चाहा और इसी बहाने एक हाथ ऐसा जमाया, कि राजाका सिर कट गया। इसलिये हे निषाद! तुम भी इस बँदरीके फेरमे न पड़ो, नहीं तो जैसे वे राजा अपने हितैषी वानरके करते संसार से उठ गये, वैसे ही तुम पर भी बला टूट पड़ेगी।"

बाघकी यह बात सुनते ही उस निषादने उसी क्षण उस बन्दरी-को उठाकर फेंक दिया। वह उस बाघके पास आ गिरी। उस समय बाघने उस वानरीसे कहा,—"बड़ी बीबी! अफ़सोस न करना, क्योंकि जैसे पुरुषकी सेवा की जाती है, वैसा ही फल मिलता है।" यह सुनते ही उस बन्दरीको तत्काल बुद्धि उत्पन्न हो गयी और उसने उसीके बल पर बाघसे कहा,—"भाई! अब तो तुम मुझे हरगिज़ न छोड़ो—खाह



इतनेमें राजाके मुँहके पास एक भौंरा मँडराने लगा। यह देख, स्वामी पर भक्ति रखनेवाले उस मूर्ख बन्दरने उस भौंरेको तलवारसे मारना चाहा और इसी बहाने एक हाथ ऐसा जमाया, कि राजाका सिर कट गया। (पृष्ठ २१४)

डालो, पर सुनो—वन्दरोंके प्राण उनकी पूँछमें ही रहते हैं, इसलिये तुम पहले मेरी पूँछही खाओ।” यह सुन, वाघ बड़ा आनन्दित हुआ। इसके वाद ज्योंही उसने अपने मुंहमें पूँछ ली, त्यों ही वह वन्दरी छलाँग मार कर दौड़ी और फुर्त्तीके साथ पेड़पर चढ़ गयी। यह देख झेंपा हुआ वाघ अन्यत्र चला गया।

इसके वाद उस निषाद पर विना किसी प्रकारका द्वेष रखे ही उस वन्दरीने उससे कहा—,“भाई! अव तो वह वाघ चला गया तुम भी नीचे उतरो।” वह नीचे उतर आया। वन्दरी उसे लिए हुए अपने लतागृहमें आयी, जिसमें उसके वालवच्चे रहते थे। उन्हींके पास उसे वैठाकर वह उसके खानेके लिये फल लानेको जङ्गलमें गयी। इधर क्षुधासे पीड़ित उस दुष्ट निषादने उसीके वच्चोंको मारकर खा लिया और वेफ़िक्रीके साथ टाँग फैलाये सो रहा। जव वह वन्दरी जङ्गलसे स्वादिष्ट फल लिये हुई आयी, तव उसने देखा, कि निषाद सोया हुआ है और उसके वच्चे ला पता हैं। उसने उसे उठाकर फल दिये। इसके वाद वह निषादको साथ लेकर अपने वच्चोंको खोजती हुई जङ्गलमें इधर-उधर भटकने लगी, पर उसने अपने मनमें निषादकी शरारतोंका कुछ भी खयाल नहीं आने दिया। पहले तो उस दुष्टने उसे पेड़ परसे नीचे गिराया और अवके उसके वच्चोंको ही खा गया। इतने पर भी उसके दोषोंका कुछ विचार किये विनाहीं, उसको अपने भाईके समान मानती हुई, वह सरल अन्तःकरणवाली वानरी उसके साथ-साथ अपने वच्चोंकी खोज-ढूंढ करने लगी। इसी समय उस निषादने अपने मनमें सोचा,—“आज तो मेरी सारी मिहनत वेकार गयी—कुछ भी हाथ नहीं लगा—भूख लगीकी लगी ही रही। अव खाली हाथ घर कैसे लौटूं?” ऐसा विचार कर उस निर्दयी और पापी निषादने उस विश्वस्त चित्त-वाली ओर भाई-भाई कहकर पुकारनेवाली वन्दरीको डंडेकी चोटसे मार गिराया ओर उसे अपने काँवरमें रखकर घरकी तरफ चला। इतने में उसी वाघसे उसकी रास्तेमें मुलाकात हुई। वाघने उसे देख कर

कहा,—"रे दुष्ट! तूने यह क्या कर डाला ? रे पापी! जिस बेचारी बन्दरीने तुझे अपने पुत्रकी तरह रखा था, उसीको मारते हुए क्या तेरा हाथ नहीं काँप उठा? रे दुष्ट, पापी, कृतघ्न! जा, तू अपना काला मुँह यहाँसे दूर कर। तेरा मुँह देखनेसे भी पाप लगता है। मैं तुझे मारकर अपना हाथ भी कलङ्कित नहीं कर सकता; क्योंकि उससे तेरा पाप मेरेको स्पर्श कर जायेगा।" इस तरह उसको फटकारते हुए बाघने उसे छोड़ दिया और वह अपने घर चला गया। उस समय लोगों के मुँहसे यह सब हाल सुनकर राजाने अपने मनमें विचार किया,—"मैं तो बन्दरोंकी रक्षा करता हूँ और इस दुरात्माने बालबच्चों समेत उस बन्दरीको मार डाला। इसलिये उसे पकड़ कर सज़ा देनी चाहिये; क्योंकि उसने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर डाला है। कहा है, कि—

"आज्ञा-भंगो नरेन्द्राणां, गुरूणां मान-मर्दनम्।
भर्तृकोपश्च नारीणा—मशस्त्रवध उच्यते ॥ १ ॥"

अर्थात् "राजाकी आज्ञाका भंग, गुरुओंका मानमर्दन और स्त्रियों पर स्वामीका क्रोध होना, विना शस्त्रके ही बध कहलाता है।"

इस प्रकार विचार कर राजाने अपने सेवकोंको आज्ञा दी और वे उसी दम उस निषादको बाँधकर पकड़ लाये और घुँसों तथा लाठियों से मारते हुए वध्य स्थानको ले गये। इतनेमें उस बाघने वहाँ आकर कहा,—"अरे! इसे न मारो, इसे मारना उचित नहीं।" यह सुन, राजपुरुषोंने आश्चर्यमें पड़कर उस बाघकी बात राजासे जाकर कह सुनायी। इससे राजाको भी बड़ा कौतूहल हुआ और वे भी वहाँ जा पहुँचे। तब फिर बाघ बोला,—"हे राजन्! इस पापीको मारकर आप भी इसके पापके हिस्सेदार बन जायेंगे। दुष्टात्मा प्राणी आपही अपने कर्मोंके दोषसे विपत्तिमें पड़ा करते हैं।" यही सुन, आश्चर्यमें पड़े हुए राजाने पूछा,—"हे बाघ! तू जानवर होकर भी मनुष्यकी बोली कैसे बोलता है? तुझमें ऐसी विवेक-भरी चतुराई कहाँसे आयी"

बाघने कहा,—"इस उद्यानमें एक बड़े भारी ज्ञानी आचार्य आये हुए हैं। वे ही यह सब हाल बतलाते हैं। आप उन्हींसे जाकर यह प्रश्न करें।" यह कह, वह बाघ चला गया। राजाने उस निषादको छुटकारा देकर अपने राज्यसे निकाल बाहर कर दिया।

इसके बाद राजा, गुरुके आगमनका हाल सुनकर, उद्यानमें आये। वहाँ अनेक साधुओंसे घिरे हुए आचार्य महाराजको देख, राजाने उन्हें बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम किया और उनके बाद क्रमश और सब साधुओंकी भी वन्दना की। इसके बाद राजाने गुरुके सामने हाथ जोड़े हुए पूछा,—"आप अपने निर्मल ज्ञानचक्षुओंसे सब कुछ जानते हैं। इसीलिये मैं आपसे पूछता हूँ, कि वह वानरी मरकर क्या हुई?" गुरुने कहा,—"हे राजन्! वह शुभ ध्यानके वश मृत्यु पाकर स्वर्गको गयी है। आगमशास्त्रमें कहा है .—

'तवसंजमदाणरओ, पयइए भद्दो किवालु अ।
गुरुवयणरओ निच्च, मरिउ देवेसु जाएइ ॥ १ ॥'

— *अर्थात्—'जो तप, सयम और दानमें निरत रहता है, प्रकृतिसे ही भद्र होता है, कृपालु होता है और निरन्तर गुरुके वचनोंमें अनुरक्त रहता है, वह मरकर देवताओंके यहाँ जन्म लेता है।'*

यह सुन राजाने कहा,—"हे भगवन्! जो जाति और कर्म दोनों ही से महा नीच और बड़ा भारी पापी है, वह निषाद मरकर कहाँ जायेगा?" सूरिने कहा,—"इस पापीको नरकके सिवा और कहीं ठौर-ठिकाना नहीं होगा। कहा भी है, कि—

'जीवहिंसामृषावाद—स्तैन्यान्यस्त्रीनिषेवणैः।
परिग्रहकषायैश्च, विपर्यविजयीकृत ॥ १ ॥
कृतघ्नो निर्दय पापी, परद्रोहविधायक।
रौद्रध्यानपर क्रूरो, नरो नरकमागमेत ॥ २ ॥'

— *अर्थात्—"जीवहिंसा, असत्य-समापण, चोरी परस्त्रीगमन,*

परिग्रह; कषाय और विषयोंमें फँसा हुआ, कृतघ्न, निर्दय, पापी, परद्रोही, रौद्रध्यानमें तत्पर और र मनुष्य नरकमें ही जाता है।"

"इसके सिवा हे राजन्! प्रसंगतः दूसरी दो गतिको कौन प्राप्त होता है उनके लक्षण भी सुनो।

'पिशुनागोमतिश्चैव, मित्रे शाठ्यरतः सदा।
आर्त्त-ध्यानेन जीवोऽयं, तिर्यग्गतिमवाप्नुयात् ॥१॥
मार्दवार्जवसम्पन्नो, गतदोषकषायकः।
न्यायवान् गुणगृह्यश्च, मनुष्यगतिमागमेत् ॥ २ ॥

अर्थात्—"पिशुन (चुगलखोर), पाप-मति, मित्रके साथ सदा कपट करनेवाला और आर्त्तध्यान करनेवाला मरकर तिर्यक्गति-को प्राप्त होता है। जो मृदुता और ऋजुतासे सम्पन्न होता है, जिसके दोष और कषाय नष्ट हो चुके हैं तथा जो न्यायवान् और गुणग्राही होता है, वह प्राणी मरकर फिर मनुष्यगतिको प्राप्त होता है।'

यह सुन, राजाने फिर पूछा,—"हे प्रभो! उपर्युक्त बाघ मनुष्यकी सी वाणी क्यों बोलता था? उसने आदमीकी ही बोलीमें मुझे उस निषादको मारनेसे रोका था।" सूरिने उत्तर दिया,—"हे राजन्! उसका कारण यह है। सुनिये,—"सौधर्म नामक देवलोकमें शक्र—इन्द्र-के एक सामानिक देवता हैं। उनकी प्राणप्रिया देवी, स्वर्गसे च्युत होकर कहीं मनुष्य भवमें उत्पन्न हुई। तब उस देवाङ्गनाके आत्म-रक्षक देवताओंने उस देवीके स्वामीसे पूछा,—'हे स्वामी! इस विमान-में देवीके रूपमें कौन उत्पन्न होगा?' इस पर देवताओंने कहा,—'अमुक वनमें एक वानरी है। वही मरकर यहाँ आयेगी।' यह सुनकर उन आत्मरक्षक देवोंमेंसे एक बाघका रूप धारण कर उस वानरीकी परीक्षा करनेके लिये यहाँ आया हुआ था। इसीलिये वह दिव्य-शक्ति-सम्पन्न व्याघ्र मनुष्यकीसी वाणी बोलता था। उस व्याघ्रने वानरी और निषादके साथ खूब वाद-विवाद किया था और उन्हें कई दृष्टान्त भी सुनाये थे।"

गुरुका सुनाया हुआ बाघका यह वृत्तान्त सुन राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया और उन्होंने अपने पुत्रको गद्दी पर बैठाकर गुरुसे दीक्षा ले ली। वे हरिपाल राजर्षि संयमका पालन करते हुए सौधर्म-कल्पमें देवत्वको प्राप्त हुए।

निषाद-वानरी-कथा समाप्त।

"जैसे वह निषाद जीवहिंसा करके नरकको प्राप्त हुआ, वैसेही और जीव भी, जो पाप करते हैं, पापके प्रभावसे नरकको प्राप्त होते हैं। इस लिये हे बाज! तुमको भी जीवहिंसासे एकदम बाज आना चाहिये।

यह सुन, उस श्येन (बाज) पक्षी ने मेघरथ राजासे कहा,—"हे राजन्! आपही सुखी हैं, क्योंकि आप इस प्रकार धर्म और अधर्मका विचार कर सकते हैं। यह कबूतर तो मेरे डरसे भागा हुआ आपकी शरणमें चला आया। अब आपही कहिये, क्षुधारूपिणी राक्षसीका सताया हुआ मैं किसकी शरणमें जाऊँ? हे राजन् यदि आप सत्पुरुष हैं और किसी प्राणीकी बुराई करना नहीं चाहते, तो मैं भी भूखसे पीडित हो रहा हूँ, इसलिये हे दयालु! मेरी आत्माकी भी रक्षा कीजिये। मैं भी भले-बुरे कर्मोंकी पहचान कर सकता हूँ, पर इस समय भूखसे बे तरह सताया हुआ हूँ, इसलिये क्या कर सकता हूँ? कहा भी है, कि—

'या सा रूपविनाशिनी स्मृतिहरी पञ्चेन्द्रियाकर्षिणी।
चक्षुः श्रोत्रललाटदैन्यकरणी वैराग्यसम्पादिनी॥
बन्धूनां त्यजनी विदेशगमनी चारित्रविध्वंसिनी।
सा मे तिष्ठति सर्वभूतदमनी प्राणापहारी क्षुधा॥ १॥

विवेको ह्रीर्दया धर्मो, विद्या स्नेहश्च सौम्यता।
सत्त्वं च जायते नैव, क्षुधार्त्तस्य शरीरिणः॥ २॥
प्रतिपन्नमपि प्रायो, लुप्यते क्षुन्निपीडिते।
इत्यर्थे नीतिशास्त्रोक्तो, दृष्टान्तः श्रूयतां प्रभो॥ ३॥"

अर्थात्—"जो क्षुधा, रूपका नाश करनेवाली, स्मृतिका हरण करनेवाली, पाँचों इन्द्रियों का आकर्षण करनेवाली, आँख-कान और

आजसे उसका विश्वास न करना।" यह सुन, वह मैना अपने स्थानको लौट गयी।"

"महाराज! इस दृष्टान्तसे तो आप समझ ही गये होंगे, कि क्षुधार्त्तको कृत्य-कृत्यका विचार नहीं होता। इसलिये आप मेरे आहारका प्रवन्ध कर दीजिये, जिससे मैं मर न जाऊँ।" बाज़की यह वात सुन, राजाने कहा,—"भाई! यदि तुम भूखे हो, तो मैं तुम्हें ज़रूर अच्छेसे अच्छा भोजन दूँगा।" इसपर उस बाज़ने कहा,—"हे महाराज! मुझे तो माँसके सिवा और कुछ खाना अच्छा नहीं लगता।" राजाने कहा,—"अच्छा, मैं कसाईके यहाँसे माँस मँगवाये देता हूँ।" पक्षीने कहा,—"महाराज! यदि मेरी आँखोंके सामनेही किसी प्राणीके शरीरका माँस काटा जाये, तो उसी माँससे मेरी तृप्ति हो सकती है, दूसरे किसी माँससे नहीं।" राजाने कहा,—"अच्छा, इसी कबूतरको तराजूपर रखकर, मैं इसीके तोलके वरावर अपने शरीरका माँस काट कर तुमको दूँगा।" बाज़ इस वातपर राज़ी हो गया।

इसके वाद राजाने एक तराज़ू मँगवाकर उसके एक पलड़े पर उस कबूतरको रखा और दूसरे पलड़े पर एक तेज़ छुरीसे अपने शरीरका माँस काट-काट कर रखने लगे। इस प्रकार ज्यों-ज्यों वे अपने शरीरका माँस काट-काट कर पलड़े पर रखने लगे, त्यों-त्यों वह कबूतर भी अधिकाधिक तौल वाला होता गया। यह देख, वे साहसिक राजा, यह जानकर, कि वह कबूतर वहुत ज़ियादा वज़नका है, खुदही उस पलड़े पर वैठ गये। यह देख, सभी लोग हाहाकार करते हुए विषादके मारे कहने लगे,—"हे नाथ! आप प्राण-त्याग करनेका साहस क्यों कर रहे हैं? एक पक्षीके लिये आप हम सव लोगोंका अपमान क्यों कर रहे हैं? यह तो कोई माया मालूम पड़ती है। नहीं तो आपके इतने वड़े शरीरका भार इस नन्हेंसे कबूतरके वरावर कैसे हो सकता है?" लोगोंके इतना कहने पर भी, स्वयं ज्ञानी होते हुए भी, राजाने, परोपकार-प्रियताके कारण—सरलताके मारे—अपने ज्ञानका उपयोग



इसके बाद राजाने एक तराजू मँगवाकर उसके एक पलड़े पर उस कबूतरको रखा और दूसरे पलड़े पर एक तेज छुरीसे अपने शरीरका माँस काट-काट कर रखने लगे। (पृष्ठ २२२)

NARSINGH PRESS, CALCUTTA

नहीं किया। उन्होंने अपने मनमें यही सोचा,—"जो अङ्गीकार किये हुए कार्यका निर्वाह करता है, वही इस जगतमें धन्य है। मेरे ये परिजन अपने निजी स्वार्थके लिये मुझे रोक रहे हैं, परन्तु इस असार शरीरसे परोपकार कर लेना ही सार है। उसे मैं कर ही रहा हूँ। इसलिये इनके आग्रहसे मैं अपने स्वार्थका क्यों नाश करूँ? जो होना होगा, वह भले ही हुआ करे, पर मैं तो अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी करूँगा।"

राजा अपने मनमें ऐसा ही विचार कर रहे थे, कि इतनेमें कानोंमें हिलते हुए कुण्डल पहने, सब अंगोंमें सुहावने अलङ्कार धारण किये हुए एक दिव्य वेशधारी देव वहाँ प्रकट होकर बोले,—"हे राजन्! तुम धन्य हो। हे वीरजनोंमें शिरोमणि! तुम्हारे जीवनजन्म सुफल हो गये, क्योंकि आज ईशान-देवलोकमें इन्द्रने सभामें बैठे हुए तुम्हारे निर्मल गुणोंकी बडी प्रशंसा की थी। तुम्हारी यह बडाई मुझसे नहीं सही गयी और मैं तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये यहाँ चला आया। इसके बाद जंगलमें रहनेवाले इस कबूतर और इस बाज़के शरीरमें मैंने प्रवेश किया, क्योंकि इनमें पहलेसेही वैर था।" देवने इतनाही कहा था, कि राजा पूछ बैठे,—"हे देव! इन दोनों पक्षियोंमें परस्पर वैर किस लिये हुआ? मुझे यह बात जाननेका बडा कौतूहल हो रहा है, इसलिये मुझसे कह सुनाइये।" तब देवने कहा,—

"किसी जमानेमें इसी नगरमें सागर नामका एक धनियाँ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम विजयसेना था। उसके धनदत्त और नन्दर नामके दो पुत्र थे। क्रमश बढते-बढते वे जवान हो गये और बनज व्योपार करनेको तैयार हुए। एक दिन वे दोनों, माँ बापकी आज्ञा ले, बहुतसे आदमियोंका काफिला संग लेकर, व्यापार करनेके लिये नागपुर नामक नगरमें आये। वहाँ व्यापार करते हुए उन्हें दैवयोगसे किसी तरह एक बडे दामोंवाला उत्तम रत्न हाथ लग गया। इसके बाद जब वे अपने नगरकी ओर लौटने लगे, तब उस रत्नके लोभसे एक दूसरेको मार डालनेकी ताकमें लगे। रास्तेमें एक नदी पडती थी। उसीके पार

उतरते-उतरते दोनोंमें विवाद होने लगा। एकने कहा,—'यह मनोहर रत्न मेरा उपार्जन किया हुआ है। दूसरेने कहा,—"नहीं, मेरा उपार्जन किया हुआ है। तुम व्यर्थ ही लोभ क्यों करते हो ? इसी प्रकार विवाद करते हुए वे दोनों क्रोधमें आकर वहीं युद्ध करने लगे। लड़ते-लड़ते वे उसी नदीमें गिर पड़े और आर्त्तध्यानके साथ मृत्युको प्राप्त हुए। वे ही दोनों मरकर इस जंगलमें कबूतर और बाज़ हुए हैं। महाराज मैंने इन दोनोंको एक जगह इकट्ठे होकर लड़ते देखा, इसीसे इनपर अपना असर डाला।

यह कह, राजाकी प्रशंसा कर, वह देवता अपने स्थानको चले गये। राजा भी अक्षत शरीर वाले हो गये। इसके बाद सभासदोंने राजा मेघरथसे पूछा,—"हे स्वामी! ये देवता कौन थे? और इन्होंने बिना किसी प्रकारके अपराधके ही इतनी माया फैलाकर आपको प्राण-सङ्कटमें क्यों डाल रखा था?" राजा मेघरथने कहा,—हे सभासदो! अगर तुम्हारे मनमें इस बातके जाननेका कौतूहल हो, तो जी लगाकर सुनो,—

"इस भवके पूर्व, पाँचवें भवमें, मैं अनन्तवीर्य नामक वासुदेवका बड़ा भाई अपराजित नामक बलदेव था। उस भवमें दमितारि नामक प्रतिवासुदेव मेरा शत्रु था। मैंने उसकी पुत्रीका हरणकर उसे जानसे मार डाला था। इसके बाद वह संसार-रूपी अरण्यमें भ्रमण करता हुआ, इसी भरत-क्षेत्रके अष्टापद-पर्वतके पास एक तपस्वीका पुत्र हुआ। वहाँ अज्ञान-तप कर, आयुष्यका क्षय होने पर, मृत्युको प्राप्त हो कर, वह ईशान-देवलोकमें जा, सुरूप नामका देव हुआ है। जब इन्द्रने सभामें मेरी प्रशंसा की, तब पूर्व भवके वैरके कारण, इस देवको मेरी बड़ाई अच्छी न लगी और यह मेरी परीक्षा लेनेके लिये यहाँ आया। इसका जो कुछ नतीज़ा हुआ, वह तुम लोग देख ही चुके हो।"

यह सुनकर सब सभासदोंको बड़ा अचम्भा हुआ। उसी प्रकार उन दोनों पक्षियोंको अपना और उस देवताका वृत्तान्त सुनकर जाति-

स्मरण हो आया और वे अपनी भाषामें बोल उठे,—"हे स्वामिन्! हमें अपना चरित्र सुनकर वैराग्य उत्पन्न हो आया है, इसलिये अब जो कुछ हमारे करने योग्य हो, वह हमें बतलाइये।" यह सुन, राजाने कहा,—"हे पक्षियो! तुम सच्चे दिलसे समकित अङ्गीकार कर पापका नाश करनेवाला अनशन व्रत ग्रहण करो।" यह सुन, उन दोनोंने उसी प्रकार अनशन-व्रत ले लिया। इसके बाद पञ्चनमस्कारका स्मरण करते हुए, मरणको प्राप्त होकर वे भुवनपतिमें जाकर देवता हो गये। राजा मेघरथ पौषध-व्रत ग्रहण कर, उसके अन्तमें पारणा कर फिर भोग-सुख भोग करने लगे।

एक दिन राजा मेघरथ, परिषह और उपसर्गोंके विषयमें निर्भय होकर वैराग्यकी प्रेरणासे अट्ठम तप कर, शरीरको निश्चल कर, प्रतिमा धारण (काउस्सग्ग = कायोत्सर्ग) किये हुए थे, इसी समय अट्ठाईस लाख विमानोंके अधिपति ईशानेन्द्रने भक्तिके आवेशमें आकर कहा,—"अपने महात्म्यसे इन तीनों लोकोंको जीतनेवाले और पापको नाशकरनेवाले हे राजन्! आप तीर्थङ्कर होंगे, इसीलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ।" इस प्रकार ईशानेन्द्रके किये हुए नमस्कारको सुन कर, उनके पास बैठी हुई उनकी स्त्रियोंने पूछा,—"हे स्वामी! अभी किसको आपने प्रणाम किया?" देवेन्द्रने कहा,—"हे सुन्दरी! पृथ्वीमण्डलपर पुण्डरीकिणी नामक नगरीके राजा मेघनाथ इस समय अट्ठम तप कर, स्थिर-चित्त हो, शुभध्यानसहित प्रतिमा किये हुए हैं। उन्हींको मैंने प्रणाम किया है। इस प्रकार शुभध्यानमें तत्पर और धर्म कर्ममें निश्चल उन मेघरथराजाको ध्यानसे हटानेमें इन्द्रसहित सभी देवता भी असमर्थ हैं।"

इन्द्रकी यह बात सुन, उनकी दोनों स्त्रियाँ—सुरूपा और अतिरूपा—राजाको विचलित करनेके लिये वहाँ आयीं। अत्यन्त मनोहर रूप-लावण्य और कान्तिसे युक्त ये दोनों देवियाँ तरह-तरहके विलासके साथ शृंगार-रसको प्रकट करती हुई राजासे बोलीं,—"हे स्वामी! हम

नों देवाङ्गनाएँ हैं और तुमपर स्नेह हो जानेके कारण मोहित होकर तुम्हारे पास आ पहुँची हैं। इसलिये तुम हमारी इच्छा पूर्ण करो। हमारे पति देवेन्द्र हमारे वशमें हैं, तो भी हम तुम्हारे लावण्यसे मोहित हो, उन्हें छोड़कर तुम्हारे पास चली आयी हैं, इसलिये हे स्वामिन्! आपको अवश्य हमारी प्रार्थना पूरी करनी चाहिये।" यह कह, वे रात भर तरह-तरहके अनुकूल उपसर्ग कर, उनके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेकी चेष्टा करती रहीं, पर राजा ज़रा भी विचलित न हुए। वे मेरु-पर्वतकी भाँति अचल बने रहे। यह देख, हार मानकर उन दोनों देवाङ्गनाओंने मेघरथ राजाको ध्यानमें निश्चल जान, उनसे अपने अपराधकी क्षमा माँगी और उन्हें प्रणाम कर, उनके गुणोंकी प्रशंसा करती हुई अपने स्थानको चली गयीं। प्रातः काल प्रतिमा और पौषधकी समाप्ति कर, राजा मेघरथने विधिके साथ पारणा किया।

एक दिन राजा मेघरथ, अपने सब सामन्तोंके साथ, परिवार-वर्गसे घिरे हुए सभामें बैठे हुए थे। इसी समय उद्यान-पालकने आकर भक्तिपूर्वक निवेदन किया,—"हे महाराज! मैं आपको बधाई देता हूँ। आज आपके नगरके उद्यानमें आपके पिता श्रीघनरथ जिनेश्वरने समवसरण किया है।" यह सुन, राजाको बड़ा हर्ष हुआ,—उनके रोम-रोम खिल गये। उन्होंने उसी समय बाग़के रक्षकको इनाम दिया। इसके बाद वे कुमारों तथा हाथी, घोड़ों, सामन्तों और माण्डलिकों आदिके साथ बड़ी धूमधामसे श्रीजिनेश्वरकी वन्दना करने गये। वहाँ पहुँच, भगवान्की वन्दना कर, सब साधुओंको प्रणाम कर, भक्तिसे चित्तको सुवासित कर, वे उचित स्थानमें बैठ रहे। इसी समय श्रीजिनेश्वरने सबको समान रूपसे प्रतिबोध देनेवाली धर्मदेशना इस प्रकार सुनायी,—

"हे भव्य प्राणियो! श्रीजिनेश्वरकी पूजा करने, उनकी वन्दना करने तथा नवीन ज्ञान ग्रहण करनेमें लेशमात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। जो पुण्यवान् जीव, धर्म-कार्यमें प्रमाद नहीं करते, उनपर

यदि कष्ट भी आ पड़े, तो वह सूरराजकी तरह सुखका ही कारण हो जाता है ।"

जब प्रभुने ऐसी बात कही, तब गणधरने श्रीजिनेश्वरको नमस्कार कर विनयपूर्वक कहा,—"हे स्वामी ! वह सूरराज कौन था, जो धर्म कार्यमें प्रमाद नहीं करता था ।" इस पर भगवान्‌ने कहा,—"हे भद्र ! यदि तुम्हें उसका चरित्र श्रवण करनेकी इच्छा हो, तो सावधान होकर सुनो ।

सूरराज (वत्सराज) की कथा

इसी जम्बूद्वीपमें, भरतक्षेत्रके अन्तर्गत, क्षितिप्रतिष्ठित नामका एक नगर है । उसमें प्रजा-पालनमें तत्पर और गुण-रत्नोंके मन्दिर-स्वरूप धीरसिंह नामके राजा राज्य करते थे । इन राजाके शीलरूपी अलंकार को धारण करनेवाली और इनके बाँयें अङ्गकी अधिकारिणी धारिणी नामकी स्त्री थी । एक दिन रानी, स्वप्नमें अपने आगे आगे देवेन्द्र-को जाते देख, जग पड़ी । प्रात: काल रानीने इस स्वप्नकी बात अपने स्वामीसे कही । राजाने अपने मनमें इस स्वप्नका विचार कर कहा,—"इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें पुत्र होगा; परन्तु चूँ कि तुमने देवेंद्रको जाते देखा है, इसलिये वह पुत्र कुछ चंचल चित्तवाला होगा ।" इसके बाद क्रमसे गर्भका समय पूरा होने पर रानीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । माता पिताने स्वप्नके अनुसारही उसका नाम 'देवराज' रखा । वह कुमार धीरे-धीरे बड़ा हो चला । इसी समय रानीने एक दिन फिर स्वप्नमें शंखके समान उज्ज्वल, पुष्ट शरीरवाला और अपनी गोदमें बैठा हुआ एक वृषभ देखा । सवेरे ही उठकर रानीने इसका हाल राजाको सुनाया। रानीने कहा,—"हे स्वामी ! आज मैंने सुख-सेज पर सोते-सोते सपने-में कैलास-पर्वतकी तरह उज्ज्वल एक वृषभ देखा है। भला इस स्वप्न-

के प्रभावसे मुझे कौनसा फल प्राप्त होगा ?" राजाने विचार कर उत्तर दिया,—"हे देवी ! इस स्वप्नके प्रभावसे तुम्हें पुत्र होगा और वह राज्यकी धुराधारण करनेवाला तथा परम भाग्यवान् होगा।" इस प्रकार स्वप्नका फल सुनकर धारिणी देवी बड़ी प्रसन्न हुई। क्रमसे समय पूरा होने पर शुभ मुहूर्त्तमें रानीके पुत्र पैदा हुआ। बालक जब दस दिनोंका हुआ, तब राजाने अपने सब स्वजनोंको बुलवा कर, उन्हें भोजन तथा वस्त्र और ताम्बूल आदि दे, सम्मानित कर, उन लोगोंके सामनेही स्वप्नके अनुसार उस पुत्रका नाम वत्सराज रखा। वह भी धीरे-धीरे बढ़ता हुआ आठ वर्षका हो गया। तब राजाने उसको सूक्ष्म बुद्धिवाला जान कर, उसे कालाचार्यके पास पढ़नेके लिये भेजा। वहीं उसने सब कलाओंका अभ्यास कर लिया।

एक बार राजा वीरसिंह शरीरमें दाह ज्वरादि महाव्याधियाँ हो जानेके कारण बड़े दुःखित हुए। सारा राज-परिवार उन्हें इस प्रकार विषम रोगसे पीड़ित देख, परम दुःखित हो गया। उस समय सब लोग इकट्ठे होकर विचार करने लगे,—"यद्यपि राजकुमार देवराज उमरमें बड़े हैं, तथापि गुणोंके कारण यह वत्सराजही बड़े हैं। इसलिये यदि वत्सराजही राजा हों, तो बहुत अच्छा है।" लोगोंकी यह बात सुन, देवराजने एक मन्त्रीको अपने मेलमें लाकर, हाथी घोड़े और पैदल सैनिकोंको अपनी मुट्ठीमें कर लिया। लोगोंके मुँहसे यह वृत्तान्त सुन, बीमार होने पर भी, वीरसिंह राजाने कहा,—"ओह ! उस मन्त्रीने बहुत बुरा किया; क्योंकि राज्य पर बैठनेके योग्य तो वत्सराज ही है—देवराज योग्य नहीं है। पर मैं ऐसी हालतमें पड़ा हूँ, इसलिये क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता।" यही कह कर राजा, आयु क्षय होनेके कारण मृत्युको प्राप्त हो गये। इसके बाद सब लोगोंकी मर्ज़ीके खिलाफ़ देवराजने पिताकी गद्दी पर दख़ल जमा दिया। विनयादि गुणों-से युक्त वत्सराज, देवराजको पिताकी तरह मानते हुए, उन्हें प्रणाम करते और तरह-तरहसे उनका आदर-सम्मान करते। देवराजके पक्ष-

पाती उस मन्त्रीने सब लोगोंको वत्सराजकी ही तरफदारी करते देख कर अपने मनमें विचार किया,—"यह वत्सराज उम्र बडी होनेपर अवश्य ही इस राज्य पर अधिकारजमा लेगा; इसलिये इसे किसी तरह यहाँसे दूर करना चाहिये। नीतिमें कहा हुआ है, कि—

'तदस्मिन्नहिते स्वस्य, नोपेक्षा युज्यते खलु ।
कोमलोऽपि रिपुश्छेद्यो, व्याधिवद् बुद्धिशालिना ॥ १ ॥'

अर्थात्—"अपने शत्रुकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये, कि छोटीसी व्याधिकी तरह अपने नन्हे-से शत्रुको भी अवश्यही मार डाले।"

ऐसा विचार कर, उस मन्त्रीने अपना अभिप्राय राजापर प्रकट किया। देवराजने उससे पूछा,—"मन्त्री! इसके लिये कौनसा उपाय करना चाहिये?" मन्त्रीने कहा,—"हे राजन्! वत्सराजका यहाँ रहना आपके हकमें अच्छा नहीं है, इसलिये इसे किसी-न-किसी उपायसे इस नगरसे निकाल बाहर करना चाहिये। क्योंकि यद्यपि यह तुम्हारा छोटा भाई है, तथापि तुम्हारी बुराई करनेवाला है।" मन्त्रीकी यह सलाह सुन, एक दिन देवराज अपने छोटे भाईको बुलाकर कहा,—"तुम मेरा देश छोडकर कहीं और चले जाओ।" बडे भाईकी यह आज्ञा उसने झटपट स्वीकार कर ली और अपनी मातासे आकर यह हाल कहा। वह उसके मुँहसे यह सब हाल सुन, बडी दुःखित हुई और आँसू गिराने लगी। अपनी माताको दुःखित होते देख, वत्सराजने कहा,—"हे माता! तुम क्यों उदास होती हो? मेरे बडे भाई देवराज बडे विनयी हैं। मैं उनके हुक्मसे यह देश छोडकर दूसरी जगह जाता हूँ। इसलिये तुम राजी-खुशीसे मुझे जानेकी आज्ञा दे दो।" यह सुन, देवीने कहा,—"बेटा! यदि तू दूसरे देशमें जायेगा, तो मैं भी अपनी बहनके साथ तेरे साथही चलूँगी।" यह सुन, वत्सराजने कहा,—"माता! तुम्हें तो यहीं रहना चाहिये। स्त्रियोंके लिये परदेश

जाना बड़ा ही कठिन है। इसके सिवा भैया देवराज भी तो तुम्हारे ही पुत्र हैं। इसलिये तुम इन्हींके पास सुखसे पड़ी रहो।” रानीने कहा,—“बेटा! मैं तो तेरे ही साथ चलूँगी। जो देवराज तेरी बुराई करता है, उससे मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है।” यह कह, धारिणीदेवी भी वत्सराजके साथ जानेको तैयार हो गयी। देवराजने उन लोगोंके लिये रथ या और किसी सवारीका प्रबन्ध नहीं किया। इसीलिये देवी भी वत्सराजके साथ-साथ पैदल ही चल पड़ीं। उस समय राजाने लोगोंको हुक्म दिया, कि जो कोई वत्सराजके साथ जायेगा, वह मारा जायेगा। यह कह, उन्होंने उनके परिवारको भी उनके साथ जानेसे रोक दिया। उस समय सारे नगरमें हाहाकार मच गया। सारे नगरमें ऐसा एक भी मनुष्य नहीं था, जिसे वत्सराजको दूसरे देशमें जाते देख, दुःख नहीं हुआ हो। लोग वत्सराजके सौभाग्यके निमित्त कहने लगे,—“आजही यह नगर अनाथ हो गया—मानों राजा वीरसिंहकी आजही मृत्यु हुई है। अब ज़रूर यहाँकी प्रजापर आफ़त आयेगी।” प्रजावर्गकी ऐसी-ही ऐसी बातें सुनते हुए वत्सराज नगरसे बाहर हो गये।

अपनी माता और मासीके साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए वत्सराज मालवा-देशके उज्जयिनी नामक नगरीमें आ पहुँचे। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करते थे। उनकी पटरानीका नाम कमलश्री था। वहाँ नगरके बाहर, मार्गमें पैदल चलते-चलते थकी हुई धारिणी देवी, एक वृक्षकी छायामें बैठ रहीं और विचार करने लगीं,—“हा दैव! तुमने यह क्या कर डाला? मैं वीरसेन राजाकी प्राणप्रिया होकर भी ऐसी कष्टदायक अवस्थामें क्यों पड़ गयी?” वे ऐसा ही विचार कर रही थीं, कि इतनेमें उनकी बहन विमला, धारिणीकी आज्ञा ले, रहनेकी जगह ढूँढ़नेके लिये नगरमें गयीं। नगरके लोगोंको देखते-देखते वह क्रमशः सोमदत्त नामक सेठके घरका रास्ता देख, उसीमें घुस पड़ीं। वहाँ शान्तमूर्त्ति और परोपकारी सेठको बैठे देख, उन्होंने दीन-वचनोंसे कहा,—“सेठजी! मैं, मेरी बहन और उसका पुत्र—ये तीनों परदेशी यहाँ आ पहुँचे हैं। यदि

आप हमें रहनेके लिये कहीं थोडासा स्थान दे दें, तो हम आपकी शरण-में सुखसे रहें।" यह सुन, सेठने उदारता और परोपकार-बुद्धिसे प्रेरित होकर उन्हें एक छोटीसी कोठरी दिखलाते हुए कहा,—"देखो, तुम लोग यहीं रहना ; पर तुम इसका कुछ भाडा दोगी या नहीं ?" इसपर उन्होंने कहा,—"सेठजी ! मेरे पास भाडा देनेके लिये तो कुछ भी नहीं है ; परन्तु हम दोनों बहने आपके घरके सब काम-धन्धे किया करेंगी। उसके बदलेमें आप हमें खानेको दे दिया कीजियेगा। बडे-बडे घरोंमें तृण भी काममें आ जाते हैं, फिर मनुष्योंकी क्या बात है ?"

इसके बाद वे तीनों उसी सेठके आश्रयमें रहने लगे। दोनों बहनें सेठके घरके कुल काम-धन्धे करने लगीं और वत्सराज उसके बछडोंको चरानेके लिये जंगलमें ले जाने लगे। एक दिन वे इसी तरह बछडोंको चरा रहे थे, और एक वृक्षकी छायामें बैठे हुए थे। इसी समय कसरत करते हुए कुछ राजकुमारोंकी आवाज उनके कानमें पडी और वे कौतू-हलके मारे उनका खेल देखने चले गये। उन राजकुमारोंमेंसे यदि किसीका वार जरा भी खाली जाता, तो पास खडे हुए वत्सराजका मुँह मलिन हो जाता और यदि किसीका वार ठीक ठिकानेपर बैठता, तो वे खुश होकर उसकी प्रशंसा करने लगते और "क्या खूब!" कह उठते थे। उनकी इस हरकतको देख, कलाचार्यने सोचा,—"यह तो कमसिन होते हुए भी शस्त्र-कलामें निपुण सा मालूम पडता है।" ऐसा विचार कर कलाचार्यने पूछा,—"पुत्र ! तुम कहाँसे आये हो ?" वत्स-राजने कहा,—"हे तात ! मैं तो एक परदेशी हूँ।" आचार्यने कहा,—"अच्छा, एक बार अपने हाथमें शस्त्र लेकर मुझे अपनी शस्त्रकुशलता तो दिखलाओ।" यह सुन, मौका अच्छा देखकर वत्सराजने अपनी शस्त्रकला उनपर प्रकट की। इतनेमें उन राजकुमारोंके भोजनकी सामग्री वहीं आयी। सबके सब वहीं खाने बैठ गये। वत्सराजके कलाभ्यास-को देखकर सन्तुष्ट राजकुमारोंने उन्हें भी बडे आग्रहसे अपने साथ ही खिलाया।

इसके बाद वत्सराज संध्यातक वहीं रह गये। इसीलिये सब गोरू-बछरू, कोई रखवाला न होनेके कारण, आपसे आप झुण्ड बाँधे समयसे पहलेही-घर चले आये। यह देख, सेठने विमला और धारिणीसे पूछा,—"आज ये जानवर इतनी जल्दी घर कैसे चले आये? इसका क्या कारण है? तुम्हारा पुत्र अभी तक आया है या नहीं?" यह सुन, विमलाने कहा,—"इन बछरोंके इतनी सिदौसी घर चले आनेका कारण तो मैं नहीं जानती; पर वत्सराज अभी तक घर नहीं आया है।" इतनेमें साँझको वत्सराज घर लौटे। उनकी माता और मासीने पूछा,—"बेटा! आज तूने इतनी देर कहाँ लगायी?" उन्होंने कहा,—"हे माता! बछड़ोंको चरते छोड़कर मैं सो गया था। किसीने मुझे जगाया ही नहीं, इसलिये जब आपसे आप नींद खुली, तब चला आया हूँ।" इसपर वे दोनों बहनें कुछ न बोलीं। इसके बाद दूसरे दिन भी वह कलाभ्यासमें ही अटके रह गये, इसलिये उस दिन भी गोरू-बछरू जल्दीसे घर आ गये। तीसरे दिन भी यही हाल हुआ। तब सेठने विमला और धारिणीको चेतावनी देते हुए कहा,—"वत्सराज रोज़ इन गोरू-बछरुओंको छोड़कर न जाने कहाँ चला जाता है। जानवर रोज़ समयसे पहले ही घर चले आते हैं।" यह सुनकर, वे उस दिन वत्सराजके घर आतेही क्रोधके साथ बोल उठीं,—"बेटा! क्या तू यह भूल गया है, कि हम इस परदेशमें आकर परायेके घर नौकरी कर रहे हैं? हमें भोजन भी बड़ी मुश्किलोंसे मिल रहा है। ऐसी अवस्थामें तू हम लोगोंको बातें क्यों सुनवाता है?" यह सुन, वत्सराजने अपनी मासीसे कहा,—"तुम लोग सेठसे कह देना, कि अब मैं बछड़ोंको चरानेके लिये नहीं ले जाऊँगा।" यह सुन, उसकी माताने सेठसे जाकर कहा,—"मेरा पुत्र अभी बालक है, इसीलिये अल्हड़पनके कारण खेल-कूद करने लगता है। इससे जानवरोंकी चरवाही भली भाँति नहीं बन पड़ती। हम दोनोंने उससे लाख कहा, पर वह लड़कपनके मारे कुछ सुनताही नहीं।" उन दोनोंने जब यह बात रो-रोकर कही, तब दया

आ जानेके कारण उस सेठने उनसे कहा,—"बालक ऐसेही मनमौजी हुआ करते हैं!" यह सुनकर वे दोनों चुप हो रहीं।

अब तो वत्सराज रोज सवेरे उठकर उन्हीं राजकुमारोंके पास पहुँच जाते और कलाभ्यास करते। उनका खाना-पीना भी वहीं होता। एक दिन उनकी माताने उनसे पूछा,—"बेटा! तू आजकल रोज साँझ तक कहाँ रहता है? कहाँ जाता है? और क्या खाता है?" इस बार उन्होंने कहा,—"मैं वहीं जाता हूँ, जहाँ राजाके लड़के हथियार चलाना सीखते हैं। मैं भी उन्हींके साथ कलाभ्यास करता हूँ और वहीं खाता-पीता हूँ।" यह सुन, उनकी माता धारिणीने आँखोंमें आँसू भर कर कहा,—"पुत्र तू हम लोगोंकी चिन्ता क्यों नहीं करता? बेटा! इस समय अपने घरमें ईंधन भी नहीं है, इसलिये कहींसे ला दे, तो ठीक हो।" माताकी यह बात सुन, वत्सराजने कहा,—"माता! तुम सेठके यहाँसे कुल्हाड़ी और काँवर लाकर मुझे दो, तो मैं जङ्गलमें जाकर लकड़ी काट लाऊँ।" यह सुन वह कुल्हाड़ी आदि माँग लायी। दूसरे दिन सवेरे बहुत जल्दी उठकर वह कुल्हाड़ी आदि लिये हुए घने जङ्गलमें चले गये। वहाँ तरह-तरहके वृक्षोंको देखकर उन्होंने विचार किया,—"यदि कहीं चन्दनका पेड़ मिल जाये, तो उसकी लकड़ी बेंचकर मैं अपनी दरिद्रता दूर कर दूँ और माता तथा मासीकी इच्छा पूरी करूँ।" यही विचार कर वह उस जगलमें चारों ओर घूमने लगे। घूमते-घूमते उन्होंने एक देवमन्दिर देखा, जिसमें एक प्रभावशाली यक्षकी प्रतिमा थी। उसे प्रणाम कर वह खड़े ही थे, कि इतनेमें दूरसे सुगन्ध आती मालूम पड़ी। तब उन्होंने सोचा,—"अवश्य ही इस वनमें कहीं चन्दनका पेड़ है।" ऐसा विचार कर वह बड़े शौकसे उस वनके चारों ओर घूम घूमकर देखने लगे। इतनेमें उन्हें एक स्थान पर सर्पोंसे घिरा हुआ एक चन्दनका पेड़ दिखाई पड़ा। यह देख, उन्होंने बड़े साहससे उस पेड़के पास जाकर उसे हिला-हिला कर सब सर्पोंको भगा दिया। यह वन एक यक्षका था, इसलिये पहले कोई यहाँ चन्दनका पेड़ नहीं काटता था। परन्तु-चूँकि वत्सराज बड़े

ही साहसी थे, इसलिये उन्होंने उस चन्दनके पेड़की एक डाल काट गिरायी। इसके बाद उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर, काँवरमें भरकर, वे घरको लिये जाते थे, कि इसी समय नगरके पास पहुँचते-न-पहुँचते रास्तेमें ही सूर्यास्त हो गया और नगरका फाटक बन्द हो गया। उस नगरमें शाकिनीका बड़ा उपद्रव हुआ करता था। इसी डरसे सूर्यास्तके ही समय शहर-पनाहके फाटक बन्द हो जाते थे और फिर सूर्योदय होने पर ही खुलते थे। वहीं पड़े-पड़े वत्सराजने विचार किया,—"यदि मैं नगरके बाहर ही किसी घरमें रातभर रह जाऊँ, तो इस चन्दनकी गन्ध चारों तरफ़ फैल जायेगी; इसलिये अच्छा हो, यदि मैं फिर उसी जंगलमें लौट जाऊँ और रात वहीं बिता दूँ।" फिर सोचा,—"आज बड़ी कड़ाकेकी सरदी है, इसलिये अगर ठण्ड लगी, तो फिर मैं क्या करूँगा?" यही सोचते-सोचते उन्हें उस मन्दिरकी याद आ गयी और उन्होंने सोचा, कि उसी मन्दिरमें रह जाऊँगा। ऐसा विचारकर वह बहुत जल्दी-जल्दी वहीं पहुंचे और एक बड़ेसे वृक्षपर ऊँचे चढ़कर चन्दनका वह काँवर बाँधकर लटका दिया। इसके बाद वे वीर-शिरोमणि स्वयं उस मन्दिरमें चले गये और उसका दरवाज़ा बन्दकर, पासही कुल्हाड़ी रख, एक कोनेमें बेफ़िक्रीके साथ सो रहे। इतनेमें वैताढ्य-पर्वतपर रहनेवाली विद्याधरियोंका झुण्ड, विमानसे उतरकर उसी यक्षमन्दिरमें आया और उत्तम शृङ्गार किये, यक्षकी भक्तिके वशमें हो, वे नाचने-गानेको तैयार हो गयीं। इसी समय मन्दिरके बाहर वाले मण्डपमें बैठकर वे परस्पर इस प्रकार बातें करने लगीं,—"चित्रलेखा! तू बीन बजा, मानसिका! तू ताल दे। वेगवती! तू बजानेके लिये ढोलको तैयार कर ले। पवनकेतना! तू मृदङ्ग तैयार कर ले। गन्धर्विका! तू गीत गा। हम सब नृत्य करेंगी। बस आओ, हम आज इस मनोहर स्थानमें जी भरकर मौज करें।" इस प्रकार बातें करती हुई, वे विद्याधरियाँ, मौजके साथ हँसती और आनन्द मनाती हुई, क्रीड़ा करने लगीं। इस प्रकार बड़ी देरतक मौज-बहार करनेके अनन्तर उन्होंने अपने शरीरसे उतारे हुए

कपडे उतारकर, दूसरे पहन लिये और क्षणभर विश्राम कर, अपने-अपने घर चली गयीं वत्सराजने उनकी यह सारी कारखाई और नाचना-गाना उस किवाडकी सन्धसे देखा-सुना। इसके बाद जब वे चली गयीं, तब वत्सराजने उनमेंसे किसीकी सुन्दर अँगिया गिरी देखी, जिसमें तरह-तरहके विचित्र रत्न टँके हुए थे। उसे देख, उन्होंने किवाड खोलकर वह सुन्दर अँगिया ले ली और तुरतही मन्दिरके अन्दर चले गये।

थोडी ही दूर आगे बढनेपर उन विद्याधरियोंमेंसे एक जिसका नाम प्रभावती था, अपनी अँगिया भूली हुई देखकर बोली,—"हे सखियो! मेरी तो एक बडी कीमती अँगिया उसी मन्दिरमें छूट गयी है।" इसपर उन सबने कहा,—"प्रभावती! तू वेगवतीको साथ लेकर वहाँ चली जा और अपनी अँगिया लेकर जल्द चली आ। यह सुन, वे दोनों जल्दीसे वहाँ आकर अँगिया ढूँढने लगीं, पर वह कहीं नजर नहीं आयी। तब प्रभावतीने वेगवतीसे कहा,—"सखी! इतनी ही देरमें अँगिया क्या हो गयी? यहाँ तो शायद कोई आदमी भी नहीं रहता। उसपर आधीरातका समय! फिर कौन ले गया?" वेगवतीने कहा,—"शायद हवासे उडकर कहीं दूर चली गयी होगी। इसलिये हमलोगोंको आलस्य छोडकर उसकी ठीकसे तलाश करनी चाहिये।" यह कह, वे दोनों विद्याधरियाँ, मन्दिरके चारों ओर ढूँढ-खोज करने लगीं; पर अँगिया कहीं न दिखाई दी। इतनेमें उन्हें वृक्षपर लटकाया हुआ चन्दनकी लकडियोंसे भरा हुआ काँवर दिखाई पडा। यह देख, उन्होंने परस्पर विचार किया,—"इस मन्दिरके भीतर अवश्यही कोई आदमी बैठा हुआ है और उसीने अँगिया चुरायी है। इसलिये चलकर उसे डराना-धमकाना चाहिये, जिसमें वह मेरी अँगिया दे दे।" ऐसा विचार कर, दोनों मन्दिरके द्वारपर जाकर बोलीं,—"रे मनुष्य! तू मन्दिरसे बाहर निकल और हमारी अँगिया दे दे, नहीं तो हम तेरा सिर तोड डालेंगी।" यह सुनकर भी वह वीर-शिरोमणि, क्षत्रिय होनेके कारण,

ज़रा भी न डरा। वे विद्याधरियाँ भी यक्षके भयके मारे किवाड़ तोड़ कर भीतर नहीं जा सकती थीं, इसलिये बाहरसे बोलती रहीं। इसके बाद उन्होंने सोचा,—"मालूम होता है, कि यह रातभर यहीं रहेगा, इसलिये नगरमें चलकर इसके नामादिका पता लगाना चाहिये; क्योंकि इसका कोई-न-कोई सगा-सम्बन्धी तो होगा ही, जो इसे रातको न आया देख रो रहा होगा। तभी इसको बाहर बुला लानेमें आसानी होगी।" यही सोचकर वे दोनों विद्याधरियाँ आकाशमार्गसे नगरमें चली आयीं और चारों ओर जोह-टोह लेने लगीं। इतनेमें उन्हें एक स्थान पर धारिणी और विमला बैठी हुई दुःखके साथ पुत्रका नाम ले-लेकर रोती दिखाई पड़ीं। वे कह रही थीं,—"हाय! वीरसेन राजाके पुत्र पवित्र-चरित्र-वाले कुमार वत्सराज तेरी यह क्या गति हुई? पहले तो तेरा राज्य छीना गया, इसके बाद तू परदेशी बना, पराये घरमें आकर रहा, कष्टसे भोजन मिलता रहा, इतनेपर भी आज हम अभागिनियोंने तुझे न जाने क्यों ईंधन लानेके लिये भेजा? आज तू अभीतक लौटकर क्यों नहीं आया?" उनकी यह बात सुन, वे विद्याधरियाँ फिर उसी देवमन्दिरमें चली आयीं और वत्सराजकी माता तथा मासीकी सी आवाज़में बोलीं—"हे वत्सराज! हम दोनों तुझे सारे शहरमें खोजती-ढूँढ़ती तेरे वियोग-के दुःखसे दुःखी होकर यहाँ आ पहुँची हैं। इसलिये जल्द बाहर आ और हमें अपना मुखड़ा दिखला।" यह सुन, मन्दिरके भीतर बैठे हुए वत्सराजने सोचा,—"इस समय मेरी माँ और मासीका यहाँ आना कदापि सम्भव नहीं है। यह उन्हीं विद्याधरियोंकी माया है। यह कपट-रचना उन्होंने अँगियाके ही लिये की है।" ऐसा विचार कर, वे चतुराईसे चुप रह गये। उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। क्रमसे सूर्योदय हो आया और वे विद्याधरियाँ चिल्लाते-चिल्लाते हारकर घर चली गयीं।

इसके बाद किवाड़की सन्धसे उँजेला आता देख, वत्सराज किवाड़ खोलकर बाहर निकले और चन्दन-वृक्षके कोटरमें उस कंचुकी (अँगिया)

को छिपाकर, लकडीका काँवर ले, हाथमें एक मामूलीसी लकडी लिये घरकी ओर चले। क्रमश. वे नगरद्वारके पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने द्वार-रक्षकको हाथकी मामूली लकडी धरा दी और आप घरकी तरफ बढ़े। बाजारमें जहाँ-जहाँ चन्दनकी खुशबू फैली, वहाँ वहाँके लोग अचम्भेके साथ चारों ओर देखने और विचार करने लगे, कि यह खुशबू कहाँसे आ रही है ?" इसप्रकार विस्मित होकर, एक आदमीको लकडी लिये जाते देखकर भी उन्होंने सोचा, कि हवाके झोंकेसे उडकर यह सुगन्ध कहींसे यहाँ तक आ रही है। लोग इसी सोच-विचारमें रहे, तबतक वत्सराज अपने घर पहुँच गये और एक ओर लकडीका काँवर रख, उसका एक छोटासा टुकडा मासीके हाथमें देकर बोले,—"मासी ! तुम गन्धीकी दूकान पर इसे ले जाओ और इसका जो दाम मिले, वह लेती आओ।" विमला उस चन्दनके टुकडेका बहुतसा दाम ले आयी। यह देख, वत्सराजने अपनी माता और मासीसे कहा,—"अब हमें पराये घरकी नौकरी करनेकी जरूरत नहीं। जो कुछ अन्नादिकी जरूरत होगी, वह इनी द्रव्यसे खरीद लिया जायेगा। सेठके मकानका भाडा भी दिया जायेगा। यह सब चुक जाये, तो फिर दूसरा टुकडा ले जाकर बेंच आना। यह लकडी चन्दनकी है। इसके प्रतापसे अब तुम्हारे घरमें धनकी कमी नहीं रहेगी। इसलिये अब हमें पराधीन होकर रहनेका काम नहीं है। दिनभर मजेसे खाऊं-खेलूंगा। रातको सदा घर आया करूँगा, तुम किसी तरहकी फिक्र अपने मनमें न आने देना।"

यह कह, वत्सराज राजकुमारोंके पास गया। उन्होंने कहा,—"क्यों भाई ! तुम कल क्यों नहीं आये ?" वत्सराजने कहा,—"कल मेरी तबियत अच्छी नहीं थी, इसीसे नहीं आया।" राजकुमारने कहा,—"मित्र ! हमने तुम्हारा घर नहीं देखा है, नहीं तो जरूर तुमसे मिलकर तुम्हें देख आते।" यह सुनकर वत्सराजको बडी प्रसन्नता हुई। इसके बाद कलाचार्यने वत्सराजसे पूछा,—"हे सज्जन ! तुम किस कुलमें

उत्पन्न हुए हो ? तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारी जन्मभूमि कहाँ है ?" यह सुन, वत्सराजने कहा,—"अभी आप मुझसे मेरा परिचय न पूछिये, समय आनेपर मैं स्वयं सब कुछ कह दूँगा।" जब उन्होंने ऐसा कहा, तब राजकुमारोंने उनका मतलब समझकर, ऊपरसे कुछ भी ज़ाहिर न करते हुए, वत्सराजको बड़े प्रेमसे भोजन-वस्त्र आदि देना आरम्भ किया।

एक दिन आचार्य, उन सब राजकुमारोंको साथ ले, वत्सराजको भी अपनी मण्डलीमें शामिलकर, राजाके पास आये। वहाँ आ, कुमार राजाको प्रणामकर, उचित स्थानपर बैठ रहे। राजाने वत्सराजको अजनबी समझकर कुमारोंसे पूछा,—"पुत्रो! तुम्हारे साथ यह नया लड़का कौनसा है?" उन्होंने कहा,—"इनको हमलोगोंने अपना बन्धु बना रखा है।" इसके बाद राजाने कलाचार्यसे पूछा,—"यह किसका पुत्र है? इसकी कला-कुशलता कैसी है?" यह सुन, कलाचार्यने कहा,—"महाराज! मुझे इस लड़केके कुल आदिका बिलकुल पता नहीं है; परन्तु इसकी कला-कुशलता ऐसी है, कि कोई इसकी बराबरीका नहीं दिखलाई देता।" यह सुन, राजाने पहले सब राजकुमारोंकी परीक्षा ली। इसके बाद उनकी आज्ञासे वत्सराजने भी अपनी कुशलता उनपर प्रकट की। राजाने उनकी विज्ञानकला और चतुराईका चमत्कार देख, उनसे कहा,— हे पुत्र! तुम अपने कुलका मुझे परिचय दो; क्योंकि छिपे हुए मोतीका कुछ मूल्य नहीं होता। यह सुन, वत्सराजने सोचा,—"पूर्वाचार्यने कहा था, कि—

'प्रस्तावे भाषितं वाक्यं, प्रस्तावे दानमंगिनाम्।
प्रस्तावे वृष्टि रल्पाऽपि, भवेत्कोटिफलप्रदा॥ १॥'

पर्थात्—"समयपर बोला हुआ थोडासा वाक्य, समयपर किसीको दिया हुआ थोडासा दान और समयपर होनेवाली थोडीसी वर्षा भी करोडगुना फल देनेवाली होती है।"

ऐसा विचार कर, उचित समय जान, वत्सराजने निःशंक होकर, आदिसे अन्त तक अपनी सारी कथा राजाको कह सुनायी। उनके पासही बैठी हुई रानी कमलश्रीने यह हाल सुनकर अकस्मात् प्रश्न किया,—"क्या धारिणी और विमला यहाँ आयी हुई हैं?" इसपर वत्सराजने हामी भर दी। यह सुन, रानीने राजासे कहा,—"प्राणेश्वर! धारिणी और विमला मेरी बड़ी बहनोंके नाम हैं। यह लड़का मेरा बहन बेटा है। तुम्हारी आज्ञा हो, तो मैं अपनी बहनोंको यहाँ बुलवा लूँ।" यह सुन, राजाने कहा,—"तुम स्वय वहाँ जाकर अपनी दोनों बहनोंको कुमारके साथ बुला लाओ, क्योंकि वे वहाँ बड़ा दु:ख पा रही होंगी।" इसके बाद राजाका हुक्म पा, रानी कमलश्री, हाथीपर सवार हो, सिरपर छत्र लगाये, बहुतसे नौकर-चाकरोंके साथ सेठके घर पहुँची। यह देख, उस सेठको बड़ा विस्मय हुआ और रानीके पास आकर तरह-तरहके विनयोपचार करने लगा। उसे इस प्रकार खुशामद करनेसे रोककर रानीने कहा,—"सेठजी! घबराओ नहीं, मैं जिन लोगोंसे मिलने आयी हूँ, उन्हींसे मुझे मिल लेने दो।" यह कह, राजप्रिया धारिणी और विमलाके पास जानेको तैयार हुई। इतनेमें वत्सराजने पहले ही वहाँ पहुँच कर धारिणी और विमलाको प्रणाम करते हुए उनसे सारा हाल कह सुनाया और निवेदन किया,— "माता! इस नगरके राजा तुम्हारे बहनोई हैं। तुम्हारी बहन रानी कमलश्री तुमसे मिलनेके लिये इस घरके आँगन तक चली आयी हैं।" यह सुनतेही उनकी मा और मासीने कहा,—"पुत्र! हमें इस नातेदारीका पहलेसे ही पता था; पर शर्मके मारे हम इसे प्रकट नहीं करती थीं।" यह कह वह दोनों बड़े हर्षके साथ घरसे बाहर निकलीं और रानीके पास चलीं। रानी भी हाथीसे नीचे उतरकर दोनोंसे गले-गले मिली और ऊँचे स्वरसे रोती हुई बोली,—"प्यारी बहनो! तुम्हारी ऐसी भयङ्कर अवस्था क्योंकर हुई? इसमें विधाताका ही कोप मालूम पड़ता है; क्योंकि यह सत्पुरुषोंको भी दुःख देता है। कहा भी है,—

'अघटितघटितानि घटयति, सुघटितघटितानि जर्जरीकुरुते ।
विधिरेव तानि घटयति, यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥ १ ॥'

अर्थात्—"विधाता अनहोनीको होनी कर देता और होनीको अनहोनी कर देता है । वह ऐसेही काम किया करता है, जिनकी मनुष्य कभी कल्पना भी नहीं करता ।"

"प्यारी बहनो! तुम दोनों यहाँ आकर भी क्यों छिपी रहीं ? कहीं दैवयोगसे इस दुःखमे पड़ जानेके कारण लज्जाके मारे तो नहीं छिपी पड़ी रहीं ? अथवा मैं ही अभागिनी हूँ, इसीसे तुम हमारे नगरमें पुत्र सहित आकर रहीं और मैंने ज़रा भी यह हाल नहीं जाना । अब अधिक कहनेसे क्या ?

'यद्भाव्यं तद्भवत्येव, नालिकेरीफलाम्बुवत् ।
गन्तव्यं गमयत्येव, गजभुक्तकपित्थवत् ॥२॥'

अर्थात्—'जैसे नारियलके फलमें आपसे आप पानी भर जाता है, वैसेही जो होना होता है, वह तो होकर ही रहता है । और जो जानेवाला होता है, वह हाथीके खाये हुए कैथके फलकी तरह योंही चला जाता है—रहता नहीं ।"

"यही समझ कर मनुष्यको मनमें चिन्ता नहीं आने देनी चाहिये ; क्योंकि कहा है, कि—

'सुख-दुःखानां न कोऽपि, कर्त्ता हर्त्ता कस्यचित् पुंसः ।
इति चिन्तय सद्बुध्या, पुराकृतं भुज्यते कर्म ॥३॥'

अर्थात्—'इस संसारमें कोई किसीका सुख-दुख नहीं देता, न हरण कर सकता है । सुखमें या दुःखमें मनुष्य अपने पूर्वकृत् कर्मोंका ही फल भोगता है । ऐसी सद्बुद्धि रखनी चाहिये ।'

'ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे ।
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तः महासंकटे ॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः,
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥४॥'

अर्थात्—'जिसने ब्रह्माको ब्रह्माण्डरूपी भाण्डके उदरमें कुम्हार-की तरह नियमित कर रखा है, जिसने विष्णुको निरन्तर दशावतार-रूपी गहन सकटमें डाल रखा है, जिसने महादेवको हाथमें खप्पर लेकर भीख माँगनको मजबूर कर रखा है और जिसके करते सूर्य नित्य आकाशमें चक्कर लगाया करता है, उस कर्मको प्रणाम है।'

"ऐसाही विचार कर, अपने ऊपर दु ख आ पड़ने पर उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।" इतनी बातें कह कर रानीने बड़े हर्षसे अपनी दोनों बहनोंसे कहा,—"प्यारी बहनो! तुम पुत्र सहित इसी हाथी पर सवार हो, मेरे घर चलो।" रानीकी यह बात सुन, उन दोनोंने सेठसे कहा,—"सेठजी! यदि आपके घर रहते हुए हमलोगोंने आपका कुछ अपराध किया हो, तो उसे क्षमा करना।" सेठने कहा,—"मैंने महज मामूली बनिये होकर आप लोगोंसे सेवा करवायी, इसके लिये आपही लोग मुझे क्षमा करें।" यह कह, वह उनके पैरों पर गिर पड़ा। इसके बाद वे दोनों वत्सराजके साथही रानीके आग्रहसे राजमन्दिरमें आयीं। उस समय राजाने उन लोगोंके रहनेके लिये एक अच्छासा मकान दे दिया जिसमें सब सामग्री भरी हुई थी। इसके बाद उन्होंने वत्सराजसे कहा,—"बेटा! अबमैं तुम्हे क्या दूँ?" वत्सराजने कहा,—"हे स्वामी! मैं दिन भर आपकी सेवा करूँगा। रातको आप मुझे घर चले जानेकी आज्ञा दे दीजियेगा। बस मैं आपसे इतनी ही प्रार्थना करता हूँ और कुछ मुझे नहीं चाहिये।" यह सुन, राजाने उनकी बात मान ली। इसके बाद वत्सराज राजाकी सेवा करने लगे। राजाने उनके घरमें अनाज-पानी घी, आदि सब चीजें भरवा दीं। वे लोग सुखसे वहाँ रहने लगे।

एक दिन रातको भूलसे राजा वत्सराजको छुट्टी देना भूल गये। कायदेके मुताबिक पहरेदार राजमहलके चारों तरफ आकर बैठ गये।

वत्सराज हाथमें खड्ग लिये, राजाके शयन-मन्दिरके बाहर अदृश्यसे खड़े हो रहे। आधी रातको राजाकी नींद टूट गयी। उसी समय उन्हें दूरसे आती हुई किसी दुखिया स्त्रीके करुण-स्वरसे रोनेकी आवाज़ सुनाई दी। सुनते ही राजाने पहरेदारोंको पुकारा; पर वे नींदमें बे-ख़बर पड़े हुए थे, इसलिये किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया। वत्सराज-ने कहा,—"हे स्वामी! जो कुछ हुक्म हो, कहिये, मैं बजा लाऊँ।" राजाने कहा,—"हे वत्सराज! क्या आज मैं तुम्हें घर जानेकी छुट्टी देना भूल गया?" उन्होंने कहा,—"हाँ।" तब राजाने फिर कहा,—"वत्सराज! इस समय मुझे तुमको आज्ञा नहीं देनी चाहिये।" वत्सराजने कहा,—"स्वामी! आपकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेमें मुझे कोई लज्जा थोड़े ही है? जो कोई काम हो, कहिये, कर लाऊँ।" तब राजाने कहा,—"बेटा! सुनो—यह जो रुलाई सुनाई दे रही है, वह किसकी है और वह क्यों रो रही है, इसे जाकर देख आओ और उससे पूछ कर मुझे ख़बर दो। साथही उस रोती हुई स्त्रीको इस तरह छाती फाड़ कर रोनेसे मना कर दो।" यह सुन, राजाकी बात स्वीकार कर, वत्सराज उसी रुलाईके शब्दकी सीध पर क़िलेसे बाहर हो, नगरके बाहर स्मशान-भूमि तक चले गये। वहाँ एक स्थानमें उत्तम-वस्त्रों तथा अलङ्कारोंसे विभूषित एक स्त्रीको बैठे-बैठे रोते देख, उन्होंने उसके पास जाकर पूछा,—"हे मुग्धे! तुम कौन हो? इस स्मशानमें आकर क्यों रो रही हो। यदि बात छिपाने लायक़ न हो, तो अपने दुःखका कारण मुझसे कह सुनाओ।" इसके उत्तरमें उस स्त्रीने कहा,—"भाई! तुम जहाँसे आये हो, वहीं चले जाओ। तुमसे मेरा काम नहीं हो सकता। इसलिये तुम व्यर्थ ही क्यों मेरी चिन्तामें पड़ते हो?" वत्सराजने कहा,—"तुम्हें दुःखी देखकर भी मैं क्योंकर यहाँ-से चला जाऊँ? क्योंकि भले आदमी पराये दुःखसे दुःखित होते हैं।" यह सुन, उस स्त्रीने कहा,—"जिसी-किसीसे अपना दुःख कहना नहीं चाहिये; क्योंकि कहा है,—

'जो नवि दुक्ख पत्तो, जो नवि दुक्खस्स निग्गहसमत्थो।
जो नवि दुहिए दुहिओ, तो कीस कहिज्जए दुक्खम् ॥१॥'

अर्थात्---'जिस मनुष्यको किसी समय दुःख नहीं हुआ हो, जो दुःख छुडानेमें भी समर्थ न हो, तथा जो पराये दुःखसे दुःखित होने वाला न हो, उससे अपना दुःख क्यों कहना ?'

यह सुन, वत्सराजने कहा,—"हे भद्रे! सुनो—

'अहमवि दुक्ख पत्तो, अहमवि दुक्खस्स निग्गहसमत्थो।
अहमवि दुहिए दुहिओ, ता अम्ह कहिज्जए दुक्खम् ॥१॥'

अर्थात्—'मैं भी दुखिया हूँ और दुःख छुडानेको भी समर्थ हूँ। मैं पराये दुःखसे दुखी भी होता हूँ; इसलिये तुम मुझसे अपना दुःख अवश्य कहो।'

यह सुन वह स्त्री बोली,—"तुम अभी बालक हो, इसलिये मैं तुम्हें अपना दु:ख कैसे सुनाऊँ ? कहा है, कि—

'दुक्ख तास कहिज्जइ, जो होइ दुक्खभजणसमत्थो।
असमत्थाण कहिज्जइ, सो दुक्खं अप्पणो कहइ ॥१॥'

अर्थात्–'जो मनुष्य दुःख-भजन करनेमें समर्थ हो, उसीसे अपना दुःख कहना चाहिये। असमर्थोंसे दुःख कहना अपने आपसे कहनेके समान ही निष्फल है।'

तुम अभी बालक हो, इसलिये मेरा दुःख कैसे छुडा सकते हो ? इसीसे मैं तुमसे अपना दु:ख नहीं कहा चाहती।"

वत्सराजने कहा,—

हस्ती स्थूलतनु स चाङ्कुशवश किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो ?
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तम किं दीपमात्र तम ?
वज्रेणाभिहता पतन्ति गिरय, किं वज्रमात्रो गिरि ?
तेजो यस्य विराजते स बलवान, स्थूलेषु क प्रत्यय ?

अर्थात्–'हाथीकी देह बहुत बडी होती है; पर वह भी छोटे-

से अंकुशके वशमें रहता है। तो इससे क्या अंकुश हाथीके बराबर होगया ? जलता हुआ छोटासा चिराग घनी अँधियारीको दूरकर देता है। तो क्या दीपके बराबर ही अन्धकार होता है ? वज्रके मारसे बड़े-बड़े पर्वत भी गिर पड़ते हैं। तो क्या पर्वत वज्रकीही तरह छोटे-छोटे होते हैं ? नहीं—ऐसा नहीं है। जिसमें तेज विराजमान होता है वही बलवान् होता है। केवल मोटे-ताजे होनेसे ही उसके बलका भरोसा नहीं करना चाहिये।'

'सिंहः शिशुरपि निपतति, मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां, न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥ १ ॥'

अर्थात्—'सिंह बालक होनेपर भी, कपोल-प्रदेशसे मद चुआने-वाले हाथीपर ही पड़ता है। इससे सिद्ध होता है, कि पराक्रमी जीवों-की ऐसी प्रकृति ही होती है, इसलिए अवस्था तेजका कारण नहीं है।'

"अतएव हे मुग्धे! तुम मुझे बालक समझकर मेरी अश्रद्धा न करो। तुम्हें जो दुःख हो, वह मुझसे कहो। मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा, वहाँ तक मैं तुम्हारा दुःख दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।"

यह सुन, वह स्त्री ज़रा मुस्कराकर बोली,—"हे पुरुष! मेरे दुःखका कारण सुनो। मैं इसी नगरके रहनेवाले एक अच्छे आदमीकी स्त्री हूँ। मेरे उस युवा पतिको यहाँके राजाने निरपराध सूलीपर चढ़ा दिया है। अभीतक वे सूलीपर लटके हुए भी जी रहे हैं और घेवर खाने-की बड़ी इच्छा प्रकट कर रहे हैं। इसलिये मैं उनके वास्ते घरसे घेवर बना लायी हूँ; पर सूली इतनी ऊँची है, कि मैं वहाँतक पहुँच नहीं पाती। इसीलिये मैं अपने पतिको याद-कर-करके रो रही हूँ; क्योंकि स्त्रियोंका बल तो रोनाही है।"

यह सुन, वत्सराजने कहा,—"भद्रे! तुम मेरे कन्धेपर चढ़कर अपनी इच्छा पूरी कर लो।" यह सुनतेही वह दुष्ट अभिप्रायवाली स्त्री, वत्सराजके कन्धे पर चढ़कर सूलीपर चढ़े हुए मनुष्यकी देहसे माँस



यह सुनतेही वह दुष्ट अभिप्रायवाली स्त्री, वत्सराजके कन्धे पर चढ़कर सूलीपर चढ़े हुए मनुष्यकी देहसे माँस काट-काट कर खाने लगी (पृष्ठ २४८)

काट-काट कर खाने लगी। इतनेमें माँसका एक टुकड़ा वत्सराजके कन्धेपर आ पड़ा, इससे विस्मित होकर वत्सराजने सोचा,—"हैं! यह माँस कहाँसे आया?" ऐसा विचार कर उन्होंने ऊपरकी ओर देखा, तो उस स्त्रीकी कुल हरकत उन्हें नज़र आयी। बस, उन्होंने उसे नीचे गिरा, खड्ग खींच, क्रोधके साथ कहा,— "अरी निर्दयी स्त्री! तू यह क्या कर रही है?" वत्सराजके यह पूछते ही वह स्त्री उड़कर आसमानमें चली गयी। उस समय वत्सराजने उसकी ओढ़नी पकड़ ली थी; पर वह दुष्टा अपनी ओढ़नी छोड़कर ही भाग गयी।

इसी समय किसी श्रोताने घनरथ जिनेश्वरसे पूछा,— "प्रभो! यह स्त्री कौन थी? और ऐसा कुकर्म क्यों कर रही थी?" भगवान्‌ने कहा,— "वह पापिनी देवता थी और पुरुषोंको छलनेके ही लिये ऐसा कुकर्म करती थी।" किसीने फिर पूछा,— "स्वामी! कहीं देवता भी माँस खाते हैं?" स्वामीने कहा,— "वह खाती नहीं थी—महज़ क्रीड़ा कर रही थी!"

इधर वत्सराज उसकी ओढ़नी लिये हुए घर आये और सो रहे। थोड़ी देरमें सवेरा हो गया और वे उस वस्त्रको लिये हुए राजाके पास आ, उन्हें प्रणाम कर उचित आसनपर बैठ रहे। राजाने मौक़ा पाकर उनसे रातकी बात पूछी। वत्सराजने रातका सारा किस्सा उनसे कह सुनाया और उस देवताकी ओढ़नी उन्हें दे दी। राजाको वह रत्न-जटित बहुमूल्य वस्त्र देखकर बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने वत्सराज की कुल बातोंको सच समझा। इसके बाद राजाने वह सुन्दर ओढ़नी अपने पास बैठी हुई रानी कमलश्रीको दे दी। रानीने उसी समय राजा-का प्रेमोपहार समझकर उसे ओढ़ लिया। उससे पहलेकी पहनी हुई अँगियाकी शोभा फीकी पड़ गयी। यह देख, उन्होंने यह विचार कर, कि इसी ओढ़नीके मुक़ाबलेकी अँगिया भी होनी चाहिये, राजासे कहा,— स्वामी! यदि इसी ओढ़नीके मुक़ाबलेकी अँगिया भी मिले, तो ठीक हो।" यह सुन, राजाने वत्सराजसे कहा,—"प्यारे वत्सराज! तुम्हारी

मासीको तो उसी ओढ़नीके मुक़ाबलेकी अँगिया भी चाहिये ।" यह सुन, वत्सराजने कहा,—"स्वामिन् ! यदि आपकी कृपा होगी, तो वह भी मिल जायेगी।" यह कह, वह नगरसे बाहर जा, उसी चन्दनके वृक्षके कोटरसे वह रत्न-जटित अंगिया निकाल लाये और राजाके हवाले करते हुए उसका भी वृत्तान्त उनसे कह दिया। राजाने अँगिया रानीको दे दी। उन्होंने हर्षित होकर उसे उसी समय पहन लिया। इसके बाद ओढ़नी और अँगियाके मुकाबलेका घाँघरा न देखा, रानीका चित्त बड़ा बेचैन होने लगा। शास्त्रकारोंने ठीक ही कहा है, कि ज्यों-ज्यों लाभ होता है, त्यों-त्यों लोभ बढ़ता जाता है।"

एक दिन राजाने रानीको चेहरा उदास किये देखकर पूछा,—"प्रिये ! अब तो तुम्हें मन लायक़ अँगिया मिलही गयी, फिर क्यों मुँह उदास किये हुई हो ?" रानीने कहा,—"इसीके मुकाबिलेका घाँघरा भी तो चाहिये।" यह सुन, राजाने सोचा,—"ओह ! असन्तुष्टा स्त्रियोंको वस्त्रों तथा अलङ्कारोंसे कभी तृप्ति नहीं होती। कहा है, कि—

'अग्निर्विप्रो यमो राजा, समुद्र उदरं स्त्रियः ।
अतृप्ता नैव तृप्यन्ति, याचन्ते च दिने दिने ॥ १ ॥'

अर्थात्,—"अग्नि, ब्राह्मण, यम, राजा, समुद्र, उदर और स्त्रियाँ कदापि तृप्त नहीं होतीं। ये दिन-दिन नयी-नयी फर्मायशें करते ही रहते हैं।"

स्त्रियोंका ऐसा ही स्वभाव होता है, यही सोच कर राजाने कहा,—"विवेकहीन रानी ! जो चीज़ मौजूद नहीं है, उसके लिये व्यर्थ हाय-हाय न करो।" यह सुन, रानीकी ज़िद और ज़ोर पकड़ गयी। उन्होंने कहा,—"अब मुझे अभी ओढ़नी और अँगियाके मुक़ाबलेका घाँघरा मिलेगा, तभी मैं अन्न-जल ग्रहण करूँगी।" यह कह, रानी अपने महलमें चली गयीं। इसके बाद राजाने वत्सराजको बुलाकर कहा,—"हे साहसी तुमने तो दो उत्तम दिव्य वस्त्र लाकर बड़ा अन्धेर कर दिया। अब तुम ही किसी तरह अपनी मासीको राज़ी करो। बिना तुम्हारे और

किसीसे यह बीमारी नहीं दूर होनेकी।" राजाकी यह बात सुन, वत्सराजने अपनी मासीके पास जाकर बड़े आग्रहसे कहा,—"माता! यह व्यर्थकी हठ छोड़ो और खाओ-पियो। मैं बाँवरा ढूँढ़ कर ला दूँगा।" पर उनके ऐसा कहने पर भी स्त्री-स्वभावके कारण रानीने हठ नहीं छोड़ा। तब वत्सराजने उनके सामने ही यह कठिन प्रतिज्ञा की,—"यदि मैं छः महीनेके अन्दर तुम्हारे इच्छानुसार वस्त्र न ला दूँ, तो आगमें जल मरूँगा।" उनकी यह बात सुन, राजाने कहा,—"बेटा! ऐसी भयङ्कर प्रतिज्ञा न करो।" इसपर वत्सराजने कहा,—"आपकी दयासे सब भला ही होगा। अब मुझे जल्दीसे देशान्तर जानेकी आज्ञा दीजिये।" राजाने उनके साहससे प्रसन्न होकर उन्हें अपने हाथसे पानका बीड़ा दिया और परदेश जानेकी आज्ञा दे दी। इसके बाद वत्सराज अपने घर गये और अपनी माता तथा मासीके चरणोंमें प्रणाम कर, उनसे सारा हाल सुनाकर, उनसे भी आज्ञा माँगी। यह सुन, उन्होंने इच्छा न रहते हुए और पुत्रको कष्ट होगा, इस बातको सोचते हुए भी दीर्घबुद्धिसे विचार किया,—"पुत्र! तुम सानन्द चले जाओ। तुम्हारी विजय होगी।" इस प्रकार दोनों माताओंका आशीर्वाद सिर पर चढ़ा, राह-ख़र्चके लिये कुछ सामान साथ ले, ढाल-तलवार लगाये, वत्सराज नगरसे बाहर हुए।

इसके बाद वत्सराज, दक्षिण दिशाकी ओर गये और बहुतसे गाँवों और नगरोंको देखते हुए एक घने जङ्गलमें पहुँचे। वहाँ ऊँचे क़िलेवाले, पर निर्जनके समान एक छोटासा गाँव देख, वत्सराजने सोचा,—"क्या यह भूतोंका नगर है? अथवा यक्षराक्षसोंका नगर है? अथवा यह विचार किस लिये करना? अन्दर ही चलकर देखना चाहिये।" ऐसा विचार कर, वे ज्योंही गाँवके अन्दर गये, त्योंही उन्हें उस गाँवमें एक बड़ा भारी सुन्दर मन्दिर दिखाई दिया और उसके पासही और भी बहुतसे छोटे-छोटे घर नज़र आये। क्रमसे आगे जाते-जाते बहुतसे आदमियोंके बीचमें बैठा हुआ एक उत्तम पुरुष दूरसे ही दिखाई दिया।

उसे देख, उसके सेवकके समान मालूम पड़नेवाले एक पुरुषसे वत्स-राजने पूछा,—"हे भाई! यह कौनसा नगर है? यहाँका राजा कौन है!" उसने कहा,—"न तो यह कोई नगर है, न यहाँका कोई राजा है। परन्तु जो कुछ है, वह सुनो,—

"इस स्थानसे थोड़ी दूरपर भूतिलक नामका एक नगर है। उसमें वैरीसिंह नामका राजा राज्य करता है। उसमें दत्त नामका एक सेठ रहता है। उनकी पत्नीका नाम श्रीदेवी है। उसके गर्भसे उत्पन्न, रूप-लावण्यसे युक्त श्रीदत्ता नामकी एक पुत्री है। वह पुत्री युवावस्था-को प्राप्त हो गयी है; पर उसका शरीर भूत दोषसे ग्रस्त हो रहा है, इस-लिये जो पुरुष रातको उसके पास पहरे पर रहता है, वह मर जाता है और यदि उसके पास पहरेपर कोई नहीं रहता, तो नगरके सात आदमी मरते हैं। ऐसा होनेके कारण एक दिन राजाने उस सेठको बुलाकर पूछा,—"सेठजी! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, कि यह नगर छोड़ कर जंग-लमें चले जाओ; क्योंकि तुम्हारी लड़कीके करते हमारे नगरके लोग मरते जाते हैं।" राजाकी यह आज्ञा पाकर, सेठ अपने परिवारके साथ यहीं चला आया और चोर वग़ैरहसे अपनी रक्षा करनेके लिये क़िले सहित यह महल बनाकर यहाँ रहता है। उसीने ढेर-का-ढेर धन देकर ये पहरेदार रखे हैं। ये लोग महलके चारों ओर बने हुए छोटे छोटे घरोंमें रहते हैं। इन पहरेदारोंके नामसे गोलियाँ बनाकर रखी हैं। जिस दिन जिसके नामकी गोली निकलती है, उस दिन रातको वही पहरेदार सेठकी बेटीके पास रहता है और रातको मर जाता है। हे पथिक! यदि यह हाल सुनकर तुम्हें डर मालूम होता हो, तो तुम अभी यहाँसे कहीं और चले जाओ।"

यह बातें सुन, वत्सराज सेठके पास आये। उन्हें देख, दत्त सेठने उन्हें आसनपर बैठाते हुए पान दिया और आदरके साथ पूछा,—"वत्स! तुम कहाँसे आ रहे हो?" वत्सराजने कहा,—"मैं एक कामसे उज्जयिनी-नगरीसे चला आ रहा हूँ।" कुमार वत्सराज सेठके साथ

इसी प्रकार बातें कर रहे थे, कि इतनेमें एक श्रेष्ठ अलङ्कारोंसे सुशोभित पुरुष वहाँ आया। उसके चेहरेका रंग उड़ा हुआ था। यह देख, वत्सराजने सेठसे पूछा,—"सेठजी! इस आदमीका चेहरा इतना उदास क्यों दिखाई देता है?" यह सुन, सेठने लम्बी साँस लेकर कहा,—"हे सुन्दर! अत्यन्त गुप्त रखने लायक हो, तो भी यह वृत्तान्त मैं तुमसे कह सुनाता हूँ। मेरे एक पुत्री है। उसके पास हर रातको एक पहरेदार रहता है। वह अवश्य ही उग्र भूतदोषसे उसी रातको मारा जाता है। आज इसी बेचारेके पहरेकी बारी है, इसीसे इसका चेहरा उदास हो रहा है; क्योंकि मृत्युसे बढ़कर भयकी बात दूसरी नहीं है।" यह सुन, वत्सराजने कहा,—"सेठजी! आज इस आदमीको सानन्द घर रहने दीजिये। आज मैं ही आपकी पुत्री पर पहरा दूँगा।" यह सुन, सेठने कहा,—"हे वत्स! तुम आज अतिथिकी तरह मेरे घर आये हो। अभीतक तुमने मेरे घर भोजन भी नहीं किया। फिर व्यर्थही मृत्युको आलिंगन करने क्यों जा रहे हो?" सेठकी यह बात सुन, वत्सराजने कहा,—"सेठजी! मुझे परोपकार करनेकी लगनसी है। इसलिये मैं तो आज यह काम ज़रूर करूँगा; क्योंकि मनुष्य-जन्मका सार परोपकार ही है। शास्त्रमें भी कहा है,—

> "धन्यास्ते पशवो नून-मुपकुर्वन्ति ये त्वचा।
> परोपकारहीनस्य, धिग्मनुष्यस्य जीवितम्॥ १॥
> क्षेत्रं रक्षति चञ्चा, गेहं लोलापटी कणान् रक्षा।
> दन्तात्ततृणं प्राणान्, नरेण किं निरुपकारेण॥ २॥"

अर्थात्—"वे पशु धन्य हैं, जो अपने शरीरके चमड़ेसे परोपकार करते हैं; पर जो मनुष्य परोपकार नहीं करते हैं, उनके जीवनको धिक्कार है। चञ्चा-पुरुष (नकली आदमी) खेतकी रक्षा करता है, ध्वजाका चंचल वस्त्र घरकी रक्षा करता है, राख कणोंकी रक्षा करती है और दाँतमें दबाया हुआ तृण शत्रुओंके प्राणोंकी रक्षा करता है; पर जो मनुष्य परोपकार नहीं करता; वह भला किस कामका!'

यह कह, वत्सराज महलके उस ऊपरी हिस्सेमें चले गये, जहाँ सेठ-पुत्री श्रीदत्ता रहती थी। उस समय उस लड़कीने उस अलौकिक रूपवान् कुमारको देखकर सोचा,—"अहा! इसका कैसा सुन्दर रूप है! इसकी शरीरकी कान्ति कैसी मनोहर है! इसके शरीरका कोई अङ्ग ऐसा नहीं, जो मनोहर नहीं हो। हाय! दैवने मुझे स्त्रीके रूपमें मृत्यु-की देनेवाली क्यों बनाया? मैं ऐसे-ऐसे मनुष्य-रत्नोंको मार कर जीती हूँ।" वह ऐसा सोचही रही थी, कि वत्सराजने उसकी सेजके पास आ, मधुर वचनोंसे उसे ऐसा प्रसन्न किया, कि वह फिर विचार करने लगी,—"चाहे जो हो, मैं अपनी जान देकर भी इसकी जान बचाऊँगी।" यही सोचते-सोचते वह सो गयी। इसके बाद साहसी मनुष्योंमें शिरोमणि कुमार वत्सराजने खिड़कीकी राह, नीचे उतरकर, ज़मीनपर पड़ी हुई एक लकड़ी उठा ली और फिर उसी राहसे ऊपर चढ़कर अपनी शय्यापर वह लकड़ी रखकर उसके ऊपर एक वस्त्र डाल, हाथमें खड्ग लिये, चारों ओर नज़र दौड़ाते हुए, दीवेके उँजालेसे हटकर अँधेरेमें खड़े हो रहे। इतनेमें उसी खिड़कीके बाहर किसीको मुँह निकालते देखकर कुमार और भी सावधान हो रहे। इसके बाद उस मुखने उस घरके चारों ओर देखा। तदनन्तर मनोहर अँगूठियोंसे सोहती हुई अँगुलियोंवाला एक हाथ उसी खिड़कीमें नज़र आया। उस हाथमें दो औषधियोंके कड़े पड़े थे। उन कड़ोंमेंसे एकमेंसे धुआँ निकला। उस धुएँ से सारा घर भर गया। इसके बाद अन्दर आकर उस हाथने पहरेदारके पलँगको छुआ। इसी समय वत्सराजने तलवारका एक हाथ ऐसे ज़ोरसे उस हाथपर मारा, कि वह कट गया; परन्तु दैवशक्तिके प्रभावसे वह हाथ कटनेपर भी ज़मीनपर नहीं गिरा। तथापि पीड़ाके कारण उस हाथके दोनों कड़े नीचे गिर पड़े। उसमें एक धूम्रौषधि और दूसरी संरोहिणी-औषधि थी। इन दोनों महौषधिओंको कुमारने अपने पास रख लिया। इसके बाद वह हाथ उस घरसे बाहर निकला। उस समय "अरे बापरे!" बड़ा

दग़ा हुआ। मैंने बड़ा धोखा खाया।" यह शब्द सुन, वत्सराज यह कहते हुए उसके पीछे-पीछे दौड़े, कि अरी दासी! तू कहाँ चली जा रही है? हाथमें खड्ग लिये पुण्यसे बलवान् बने हुए वत्सराजको पीछे-पीछे आते देख, उसे परास्त करनेमें अपनेको असमर्थ समझ कर वह देवी उसी समय भाग गयी। इसके बाद पीछे लौटकर वत्सराजने उस शय्यापरसे वह लकड़ी हटा दी और आप उसीपर बैठ रहे। इतनेमें रात बीत गयी और उदयाचल-पर्वतपर सूर्यका उदय हुआ। इसी समय कुमारीकी नींद खुली और उसने अक्षत शरीरसे बैठे हुए कुमारको देखकर हर्षित हो अपने मनमें विचार किया,--"अवश्य ही यह कोई बड़ा प्रभावशाली मनुष्य-रत्न मालूम पड़ता है। इसीसे यह नहीं मरा। मेरे सोये हुए भाग्य अब जगनेही वाले हैं और मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ ही चाहता है। अब यदि यह मनुष्य स्वामी हो तो मैं इसके साथ संसारके सुख भोगूँ, नहीं तो इस जन्ममें मेरा वैराग्य ही ठीक है।" यही विचार कर उस लड़कीने मधुर वचनोंसे वत्सराजसे कहा,--"हे नाथ! आपने कैसे विपत्से छुटकारा पाया? यह कहिये।" उसके ऐसा पूछने पर वत्सराजने उससे रातका सारा हाल कह सुनाया। यह सुनते ही श्रीदत्तके रोंगटे खड़े हो गये। साथ ही उसे बड़ा हर्ष भी हुआ। वे दोनों इस प्रकार बातें कर ही रहे थे, कि उस लड़कीकी सेविका दासी उसके मुँह धोनेके लिये जल लिये हुए आयी। उसने भी कुमारको भला-चङ्गा देखकर अपने मनमें बड़ा हर्ष माना और उनको इस प्रकार क्षेमकुशलसे रहने पर बधाई दी। यह समाचार सुन, सेठको भी बड़ा अचम्भा हुआ और वह भी वहाँ आ पहुँचा। श्रीदत्ताने झटपट उठकर पिताको आसन दिया। उसपर बैठे हुए सेठने कुमारसे पूछा,--"हे धीर! तुम रातको दुःखसागरके पार कैसे उतरे?" इसपर कुमारने सेठको भी राई-रत्ती सारा हाल कह सुनाया। तब सेठने कुमारसे कहा,---"हे कुमार! मैं अपनी यह प्राणप्यारी पुत्री तुम्हारे ही हाथोंमें सौंपता हूँ।" यह सुन कुमारने कहा, "आप मेरा कुल-शील जाने